बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

द्विवेदी युगीन काव्य में चित्रित सौन्दर्य का विवेचन

(प्रिय प्रवास, साकेत और नूरजहाँ के प्रसंग में)

हिन्दी साहित्य में

वाचस्पति की उपाधि (पी-एच० डी०)

हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

२००८

निर्देशक
डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी
रीडर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
गाँधी महाविद्यालय, उरई
जनपद जालौन

शोधार्थी
प्रवीण कुमार सिंह
एम० ए० (हिन्दी साहित्य)
पुत्र श्री सुदर्शन सिंह
२७३ पटेल नगर उरई जालौन

शोध केन्द्र : दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, उरई (जालौन) उ०प्र०

अनुक्रमणिका

समर्पण

उस असीम वात्सल्यमयी जननी

माता श्रीमती विजय लक्ष्मी एवं

आदर्शों की प्रतिमूर्ति मेरे श्रद्धास्पद

परम पूज्य आदरणीय पिता

श्री सुदर्शन सिंह को

जिन्होंने अंगुली पकड़ कर चलना सिखाया,

कठिनता में भी मुस्कराते रहना

जिनका मूल स्वभाव है।

जब कभी अपने आपको अकेला पाया

आपका वात्सल्यमय आशीष

सदैव प्राप्त हुआ।

आप श्रृद्धास्पद जननि जनक के चरण कमलों में

यह कृति सादर समर्पित है।

आपका चरण किंकर

प्रवीण

प्रस्तावना

रमणीयार्थ का प्रतिपादक शब्द 'काव्य' कहा जाता है। ललित शब्दों में मंजुल भावों एवं रागात्मक विचारों के नवोन्मेष (पद्यात्मक हो या गद्यात्मक) को 'साहित्य' अथवा 'काव्य' का अभिधान प्रदान किया जाता है। साहित्यकार चराचरमयी दृष्टि में अभिव्यक्त सौन्दर्य के विविध रूपों का शब्दिक चित्रण भावना कल्पना की सहायता से करता है। औपनिषदिक ग्रन्थों मे परमात्मा (प्रजापति) 'कवि' की संज्ञा से विभूषित किया गया है तथा विश्व उसका 'महाकाव्य' कहा गया है। सृष्टि परम चेतना का अविर्भाव एवं प्रलय उसका तिरोभाव है अर्थात् विश्व के विविध पदार्थों और प्राणियों में परमसत्ता ही अनेक रूपों में अभिव्यक्त है। विश्वरूप उसी के स्वरूप का सौन्दर्य का प्रकाशन (प्राकट्य) है। चित्र विचित्रमयी सृष्टि के हर अणु–परमाणु में उसका ललित रमणीय रूप भासित है। इस रूप के दर्शन किसी ज्ञानी, योगी, भक्त एवं नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से समृद्ध साहित्यकार को ही होते हैं, हर व्यक्ति को नहीं। कवि या साहित्यकार की अन्तर्दृष्टि शुभ–अशुभ, हित–अनहित, लाभ–हानि, आलोक–अन्धकार, उषा–संध्या, बसन्त पतझड़, सौम्य–उग्र, मधुर तिक्त, आकर्षण–विकर्षण, कोमल–कठोर, फूल'शूल, सुख–दुख, जन्म–मरण, रूप–कुरूप, सुन्दर–असुन्दर के द्वन्द्व से आन्दोलित प्रतीत होने वाली सृष्टि के मूल में निहित चरम सौन्दर्य एवं परमानन्द के स्रोत या उत्स पर सहजतः जा टिकती है। साहित्य स्रष्टा का अन्तर्मन सृष्टि रूपी क्षीरोदधि के वक्ष पर क्रीड़ा करती भौतिक द्वन्द्वों की लहरों का स्पर्श करते हुए अगाध असीम आनन्द की अन्तर्धारा में मग्न हो जाता है। पार्थिव

संघर्षों, समस्याओं तथा परिस्थितियों की शत–शत परतों के नीचे प्रवहमान आनन्द की मन्दाकिनी एवं सौन्दर्य की सरस्वती के पीयूषमन सलिल की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की शक्ति से सम्पन्न व्यक्ति ही सच्चा कवि, कलाकार, स्रष्टा या साहित्यकार सिद्ध होता है।

सृष्टि क आविर्भावार्थ, विश्व के सर्जनार्थ चराचर जगत् के निर्माणार्थ परम तत्व को द्वैत–भाव की शरण ग्रहण करनी पड़ती है अर्थात् एक तत्व दो में विभक्त हो जाता है–ब्रह्म–माया, पुरुष–प्रकृति, शिव–पार्वती, राम–सीता, कृष्ण राधा, मनु श्रद्धा। द्विदलात्मक हुई (बनी) परम चेतना विविध रूपों में अभिव्यक्त हो जाती है। लाभ–हानि, जय–पराजय, ग्राह्य–अग्राह्य, अपेक्षणीय–उपेक्षणीय, सुधा–गरल, सुन्दर–असुन्दर आदि दोनों प्रतीयमान रूपों में उसी का अस्तित्व है। यह रहस्य अच्छे साहित्य स्रष्टा को ज्ञात होता है, इसलिए उसे बसन्त के साथ पतझड़, अन्धकार के साथ प्रकाश, सौम्य के साथ उग्र, नूपुर के साथ तलवार और सन्धि के साथ संघर्ष सुन्दर या रमणीय प्रतीत होता है। जिस साहित्यकार की दृष्टि एक ही रूप या पक्ष पर टिकी रह जाती है उसे आचार्य शुक्ल 'भोगालिप्सु' कहते हैं। अन्धकार क अस्तित्व से प्रकाश, विफलता ओ अस्तित्व से सफलता, वियोग के अस्तित्व से संयोग, वज्र की उपस्थिति से कुसुम और अभाव के प्रसंग में भाव, सुखद, सुन्दर लगता हैं प्रतिभा, संवेदना एवं कल्पना से समृद्ध कवि को पतझड़ कुसुमाकर का, अन्धकार प्रकाश का और प्रलय सर्ग का जनम प्रतीत होने से रमणीय अनुभूत होता है। उसे अधर्म के विनाशार्थ किए गये युद्ध में से धर्म–स्थापन की सुन्दर ज्योति दृष्टिगोचर होती है। उदारचेता साहित्यकार को सिद्धि ही नहीं, प्रत्युत साधना भी सुन्दर एवं आनन्दप्रद प्रतीत होती है।

एक ही परमतत्व वैश्विक सृष्टि से विविध रूपों में अभिव्यक्त है। उसे असीम सौन्दर्य, अक्षयानन्द तथा अपरिमित ज्ञान का शाश्वत स्रोत या कोष कहा जाता हैं हर पदार्थ एवं प्राणी उसी का अंश होने से सुन्दर कहा जा सकता है अर्थात् प्रतीयमान कुरूप वस्तु या व्यक्ति में भी रूप या सौन्दर्य निहित होता है। वैश्कि सर्ग का प्रयोजन 'आनन्द' बताया जाता है। इंगित सृष्टि परम चेतना की 'लीला' या क्रीड़ा कही जाती है। 'लीला' हर दृष्टि से ललित एवं आनन्ददायिनी प्रतीत होती है। लीला की कामना से ही निष्काम ब्रह्म एक से दो और दो से अनेक रूप धारण करता है। रमणेच्छा की पूर्ति या संतुष्टि के लिए एक (तत्व) से दो (रूप) होना पड़ता है। परम तत्व स्वयं के लिए क्रीड़ा या लीला करता रहता है। उसी की लीला का एक रूप 'सृष्टि' तो दूसरा रूप या पक्ष 'प्रलय' की संज्ञा से अभिहित होता है। जड़–चेतन, स्थावर–जंगम, शक्ति–शिव, प्रकृति–पुरुष और जननी–जनक आदि रूपों में एक ही तत्व या परमचेतना क्रियाशील हैं हर वस्तु में उसी का रूप या सौन्दर्य प्रतिबिम्बत है। साहित्यकार की कल्पना इसी रहस्य से उत्प्रेरित होकर सौन्दर्य की सर्जना विविध रूपों में करती है। साहित्यकार या कलाकार प्रभु की रहस्यमयी सृष्टि या लीला का अनुकरण भावना एवं कल्पना के माध्यम से करता है अर्थात् उसकी सृष्टि परमात्मा की रचना (भौतिक जगत्) की यथार्थ प्रतिलिपि (फोटोग्राफी) नहीं होती है। साहित्यक या कलात्मक कृति ईश्वरीय सृष्टि या प्रकृति की भाव–कल्पनात्मक पुनर्निमित कही जाती हैं कवि, कलाकार या साहित्यकार, ब्रह्म या प्रजापति की सृष्टि में अपनी रुचि, भावना, प्रतिभा या कल्पना के अनुसार परिवर्तन कर देता है।

इंगित पविर्तन में ही उसका कृतित्व झलक उठता है। उसकी कृति परमात्मा की रचना से ईषत् भिन्न हो जाती है, वह मौलिक या अभिनव प्रतीत होने लगती है।

नवीनता में ही सौन्दर्य की अस्तित्व होता है। साहित्यकार की प्रतिभा सुन्दर हो सुन्दरतर या सुन्दरतम बना देती है तथ गर्हित को आवर्जक रूप प्रदान कर देती है। वह यथार्थ को आदर्श एवं सम्भव (शक्य) रूप मे चित्रित करती है। वह वस्तु को उस ललित रमणीय रूप या पक्ष उद्‌घाटन सहजतः कर देती है, जो सामान्य दृष्टा या भोक्ता की दृष्टि से ओझल रहता है। सामान्य प्रतीत होने वाली घटनाएँ एवं क्षुद्र वस्तुएँ सर्जनात्मिका प्रतिभा (कल्पना) का रंग पाकर अभिनव, सुन्दर, मधुर एवं रम्य या हृदयावर्जन प्रतीत हो उठती है। रागात्मक या शक्तिपरक (सूचनात्मक या ज्ञानपरक नहीं) साहित्य के अंग में सौन्दर्य का पीयूष–स्रोत तरंगायित रहता है। साहित्य–स्रष्टा गोचर जगत् से गृहीत सामग्री को अपनी भाव संबलित बिम्ब–विधायिनी कल्पना से अभिराम रूप प्रदान कर देता है। वह स्थूल जगत्, भौतिक वस्तु, प्राकृतिक पदार्थ में दिखायी पड़ने वाले दोष को हटा कर उसे अभीष्ट रूप प्रदान करता है। अपूर्ण को पूर्णत्व प्रदान करने में ही रमणीय कल्पना, नवीन वस्तु निर्मात्री प्रज्ञा या साहित्यिक कला घोतित होती है। ललित कल्पना की गंगा एवं रम्य भावना की यमुना के संगम में डुबकी लगाकर आने वाली वस्तु अपने मूल या यथार्थ रूप से अधिक सुन्दर लगती है। साहित्यिक वस्तु एक साथ सत्य सुन्दर तथा मंगलकारिणी होती है।

सत्यम्–शिवम्–सौन्दर्यम् के सामंजस्य की शब्दार्थमयी अभिव्यक्ति को 'साहित्य' की संज्ञा प्रदान की जाती है। जीवन और जगत् के विकृत रूप साहित्य के क्षीरोदधि में आकर परिष्कृत हो जाते हैं द्वन्द्वात्मक प्रतीत होने वाली प्रवृतियों कया विरोधाभासी भावानुभूतियों की समन्वित प्रस्तुति का नाम 'साहित्य' या 'कला' है। ललिताभिव्यक्ति या सौन्दर्याभिव्यंजना साहित्यिक समीक्षा (कलात्मक परीक्षा) का सार्वभौम निकष

प्रतीत होती है। सौन्दर्य की कसौटी पर हर देशकाल के हर साहित्यिक रूप का आकलन सम्भव है। रस निष्पत्ति के आधार पर हर साहित्यिक विधा की समालोचना नहीं हो सकती। ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति, अलंकार तथा औचित्यादि सिद्धान्त भी देश काल की सीमाओं तथा साहित्य के विविध रूपों से मुक्त नहीं कहे जा सकते। वे सब सौन्दर्य के विविधरूप अवश्य सिद्ध होते है। हर साहित्यक रचना की गवेषणात्मक विवेचना सौन्दर्य के आधार पर की जा सकती है। सौन्दर्य का सम्बन्ध जैसे चित्र, मूर्ति, भवन एवं संगीतादि कलाओं से है, वैसे ही साहित्य से भी होता है।

अनुसन्धान तथा समीक्षा की दृष्टि से द्विवेदी युगीन साहित्य क ओर अभी तक नहीं गयी है। मैंने हिन्दी अनुसन्धान से सम्बद्ध लगभग समस्त सूचियों (विवरणिकाओं) का अध्ययन किया है। उनमें कहीं भी प्रस्तुत विषय पर किसी शोधात्मिका कृति का उल्लेख नहीं मिला है। प्रिय–प्रवास, साकेत, नूरजहाँ में से एक भी कृति में व्यक्त सौन्दर्य का विवेचन अभी तक अस्पृस्ट सा है। उक्त तीनों ग्रथ द्विवेदी युगीन सौन्दर्यबोध के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं। प्रस्तावित विषय के अनुशीलन से द्विवेदी युगीन काव्य को समीक्षा के लिए नूतन दृष्टि प्राप्त होने की सम्भावना है। प्रस्तावित कार्य हिन्दी काव्य में व्यक्त सौन्दर्य के विवेचनात्मक इतिहास का महत्वपूर्ण अध्याय सिद्ध हो सकता है। द्विवेदी सुगीन सौन्दर्य बोध रीति युग से छायावाद सौन्दर्यबोध तक की दीर्घ शृंखला की मध्यस्थ कड़ी के रूप में विशेष अनुशीलनीय प्रतीत होता है। प्रस्तावित विषय के अध्ययन से शोध एवं समीक्षा के आयामों के विस्तीर्ण होने की संभावना है। इस अध्ययन से सामान्य विद्यार्थी और साहित्यानुरागी भी द्विवेदी युगीन काव्य के अध्ययन में अधिक प्रवृत्त हो सकते हैं। प्रस्तावित शोध प्रबन्ध उनके लिए विशेष निर्देशन एवं उत्प्रेरण का स्रोत सिद्ध हो सकता है।

शोध निर्देशक परम पूज्य गुरुजी डॉ0 दिनेश चन्द्र द्विवेदी, पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गांधी महाविद्यालय उरई के स्नेह और अपनत्व को आजीवन विस्मृत नहीं कर सकूँगा, जिन्होंने अपनी अस्वस्थता के बीच भी हमेशा मेरी शंकाओं, समस्याओं का समाधान किया। मैं उनके आशीर्वाद का सदा–सदा आकांक्षी रहूँगा।

इस शोध कार्य हेतु डॉ0 दुर्गा प्रसाद श्रीवास्तव पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, दयानन्द वैदिक स्नाकोत्तर महाविद्यालय उरई के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धा निवेदित करता हूँ। उनके संकेत के आधार पर मैने इस शोध कार्य के लिये अपनी मनोभूमि सृजित की। पूज्य माता–पिता सहित बड़ी दीदी श्रीमती आशा, श्रीमती किरन, श्रीमती अनुरागिनी, श्रीमती अलेखा, श्रीमती सुलेखा के आशीर्वाद एवं धर्मपत्नी श्रीमती रेखा एवं पुत्र शौर्य के योगदान को विस्मृत नहीं कर सकूँगा जिनके सहयोग से शोधकार्य को सफलता पूर्वक सम्पन्न कर सका, इसके अतिरिक्त डॉ0 कुमारेन्द्र सिंह सेंगर, प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, गांधी महाविद्यालय, उरई एवं श्री प्रवीण कुमार सक्सेना 'उजाला' कवि श्री अश्वनी कुमार मिश्र, साहित्यकार, डॉ0 हर्षेन्द्र सिंह सेंगर (शिक्षाशास्त्री), श्री आशीष कुमार श्रीवास्तव, पुस्तकालय अधीक्षक, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर, के सहयोग एवं अपने अभिन्न मित्र नन्दराम सिंह राठौर, विजय सक्सेना, रविन्द्र परमार, राहुल समाधिया के सहयोग तथा विभिन्न विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों के पुस्तकालयों, जिला पुस्तकालय, उरई (जालौन) के पुस्तकालयाध्यक्षों और कर्मचारियों को विस्मृत नहीं कर सकूँगा, जिन्होंने अपने व्यस्ततम समय के बीच भी मुझे विचारात्मक सहयोग प्रदान किया। मैं हमेशा उन लोगों के प्रति कृतज्ञ रहूँगा, जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में मुझे सहायता प्रदान की।

मैं आभारी रहूँगा, 'दद्दा कम्प्यूटर्स' उरई का जिनके अथक प्रयासों और

सहयोग से, विशेष रूप से अंजनी कुमार चतुर्वेदी की जिनके द्वारा, अत्यन्त अल्पसमय में मेरी हस्तलिखित प्रति को पुस्तकीय स्वरूप प्राप्त हुआ।

मेरे इस प्रयास से भविष्य में विद्यार्थियों, शोधार्थियों को यदि किसी भी प्रकार की सहायता प्राप्त होती है तो मैं स्वयं को कृतकृत्य समझूँगा। मेरी आकांक्षा है कि मेरा यह प्रयास सफल सिद्ध हो।

प्रवीण कुमार सिंह

एम. ए. (हिन्दी साहित्य)

निर्देशक का प्रमाण पत्र

प्रमाण पत्र

मुझे प्रमाणित करते हुए हर्ष है कि प्रवीण कुमार सिंह ने मेरे निर्देशन में "द्विवेदी युगीन काव्य में सौन्दर्य का विविचेन (प्रिय प्रवास, साकेत और नूरजहाँ के प्रंसग में)" शीर्षक शोध प्रबन्ध सम्पन्न कर लिया है। इस उपक्रम में प्रवीण कुमार सिंह ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी की शोध परिनियमावली के समस्त उपबन्धों का पालन किया है। अनुसंधान कार्य को ध्रुवान्त तक पहुँचाने के लिए जिन उपजीव्य, उपस्कारक ग्रन्थों और पत्र पत्रिकाओं का सहयोग लिया है– उसके सादर उल्लेख का विनम्र शिष्टाचार और शोधकार्य की श्रेष्ठ परम्परा का निर्वाह अनुसंधित्सु ने किया है। शोधार्थी ने 200 दिन शोध केन्द्र पर रहकर शोधकार्य किया है। मैं अनुसंधित्सु के मंगलमय भविष्य की कामना करता हूँ और इस शोध प्रबन्ध को विषय विशेषज्ञों के समक्ष प्रस्तुत करने की अनुशंसा करता हूँ।

डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी
रीडर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय उरई

शोधार्थी का घोषणा पत्र

घोषणा पत्र

मैं प्रवीण कुमार सिंह शपथ पूर्वक यह घोषणा करता हूँ कि मेरे द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध ''द्विवेदी युगीन काव्य में चित्रित सौन्दर्य का विवेचन (प्रिय प्रवास, साकेत और नूरजहाँ के प्रसंग में)'' मेरा मौलिक कार्य है।

प्रस्तुतकर्ता

प्रवीण कुमार सिंह

प्रवीण कुमार सिंह

प्रथम

अध्याय

सौन्दर्य का तात्त्विक विवेचन

(क) सौन्दर्य का तात्पर्य

(ख) सौन्दर्य विवेचन की परम्परा : भारतीय एवं पाश्चात्य

(ग) सौन्दर्य का आधार : द्रष्टा और दृश्य

(घ) साहित्य में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति

(च) मानवीय सौन्दर्य : पुरुष, नारी एवं बाल

(छ) बाह्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य

प्रथम अध्याय

सौन्दर्य का तात्विक विवेचन

मानव सौन्दर्योपासक प्राणी है। उसे अपने आसपास की वस्तुओं में, प्रकृति में, मानव में, स्थावर में, नदियों में, पहाड़ों में, सागर में, आसमान में, रंगों में, खुशबू में, फूलों में, कांटों में.................सर्वत्र सौन्दर्य की चाह रही है। सृष्टि के आविर्भाव से लेकर सर्जन तक सौन्दर्य की खोज करना, सौन्दर्य की लालसा रखना मानव का कर्म भी रहा है। नदियों की कल–कल में, पंछियों की चहचहाहट में, भौरों की गुंजन में, शेर की दहाड़ में, मधुर समीर की रवानी में, घंटों की टनटनाहट में, शंखों के निनाद में मानव मन ने सहजता से सौन्दर्य का आभास किया है। सौन्दर्यवृत्ति का सम्बन्ध मानवीय संवेदनों, संवेगों एवं अनुभूतियों से होता है। सौन्दर्यानुभूति के सत्वोद्रेक से द्रष्टा या प्रमाता को आत्मविश्रांति एवं विशुद्ध अन्तःचेतना की उपलब्धि होती है। आतुर हृदय, अतृप्त अधर, विकल नेत्र, जिज्ञासु वृत्ति और कर्मठता से मानव को सौन्दर्य की दिव्यता का बोध होता है तथा माध्यम से सत्यं, शिवं, सुन्दरं की आधारभूत (सार्वभौम) सत्ता का आभास संकेत मिलता है।

सौन्दर्य–बोध का क्षेत्र व्यापक है। इसकी सीमा में धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक, राजनीतिक, सामाजिक सभी प्रकार के विचारों का समावेश हो जाता है। सौन्दर्य बोधात्मक मानक मानव संस्कृति के लक्ष्य और क्रिया कलापों के आदर्श होते हैं। कला, मानव के सौन्दर्य–बोध की अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम माध्यम हैं। युगों–युगों से विकास की परम्परा के साथ–साथ कला के नैतिक मूल्यों में भी विकास देखा गया

हैं। आज कला उन्हीं मूल्यों को अपनाना चाहती हैं जो वैश्विक हों और सौन्दर्यबोध की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हों। कला के विविध प्रयोजनों में सौन्दर्य या रस की अभिव्यक्ति को प्राथमिकता प्रदान की जाती है और शिक्षा या उपदेश की अभिव्यंजना को द्वितीय स्थान पर रखा जाता है। उसके माध्यम से मनुष्य में सामाजिक गुणों का विकास भी होता है। पार्थिव संघर्षों में आनन्द की मंदाकिनी और सरस्वती की पीयूषमय सलिल की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति से सम्पन्न व्यक्ति ही सच्चा कलाकार, कवि, स्रष्टा या साहित्यकार सिद्ध होता है। सृष्टि के आविर्भाव से द्विदलात्मक परम चेतना विविध रूपों में अभिव्यक्त होजाती है। लाभ–हानि जय–पराजय, अपेक्षणीय–उपेक्षणीय, सुधा–गरल, सुन्दर–असुन्दर, आदि दोनों प्रतीयमान रूपों में उसी का अस्तित्त्व है। यह रहस्य अच्छे साहित्य सृष्टा को ज्ञात होता है, इसलिए उसे बसंत के साथ पतझड़ अंधकार के साथ प्रकाश, सौम्य के साथ उग्र, नुपूर के साथ तलवार और सन्धि के साथ संघर्ष सुन्दर अथवा रमणीय प्रतीत होता है।

वैश्विक सृष्टि के विविध रूपों में एक ही परमतत्त्व की सत्ता व्याप्त है। उसी के आनन्ददायक, असीम सौन्दर्य, अपरिमित ज्ञान के स्रोत सर्वत्र विद्यमान हैं। प्रत्येक प्राणी अथवा पदार्थ उसी परम तत्त्व का अंश होने के कारण सौन्दर्य की सीमा रेखा के भीतर समाहित है। जड़–चेतन, स्थावर–जंगम, जननी–जनक, स्त्री–पुरुष आदि रूपों में परम चेतना क्रियाशील है। प्रत्येक तत्त्व उसी के सौन्दर्य से अभिभूत है। उसी के सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब है। साहित्यकार की कल्पना इसी रहस्य से उत्प्रेरित होकर सौन्दर्य की सर्जना विविध रूपों में करती हैं। साहित्यकार अथवा कलाकार ब्रह्म की सृष्टि में अपनी कल्पना, भावना के अनुसार परिवर्तन भी कर देता है। सामान्य प्रतीत होने वाली घटनाएं या वस्तुयें सर्जनात्मक प्रतिभा का स्पर्श प्राप्त कर

या कल्पना का रंग पाकर सुन्दर, मधुर एवं रम्य प्रतीत हो उठती है। रागात्मक साहित्य के अंग–अंग में सौन्दर्य का स्रोत तरंगायित होने लगता है। ललित कल्पना गंगा एवं रम्य भावना की यमुना के संगम में डुबकी लगा कर आने वाली प्रत्येक वस्तु अपने मूल की उपेक्षा अधिक सुन्दर प्रतीत होती है। इसी कारण साहित्यिक या कलात्मक वस्तु एक साथ सत्य, सुन्दर एवं मंगलकारिणी होती है।

सत्यम्–शिवम्–सौन्दर्यम के सामंजस्य की शब्दार्थमयी अभिव्यक्ति को साहित्य की संज्ञा प्रदान की जाती है। ललिताभिव्यक्ति या सौन्दर्याभिव्यंजना साहित्यिक समीक्षा का सार्वभौम निकष प्रतीत होती है। सौन्दर्य की कसौटी पर हर देशकाल के हर साहित्यिक रूप का आकलन सम्भव है। रस–निष्पत्ति के आधार पर साहित्यिक विद्या की समालोचन नहीं हो सकती। ध्वनि,वक्रोक्ति, रीति, अलंकार भी देशकाल की सीमाओं तथा साहित्य के विविध रूपों से मुक्त नहीं कहे जा सकते हैं। वे सब सौन्दर्य के विविध रूप अवश्य सिद्ध होते हैं। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक साहित्यिक कृति में किसी न किसी रूप में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है। प्रत्येक साहित्यिक कृति की गवेष्णात्मक विवेचना सौन्दर्य के आधार पर की जा सकती है। सौन्दर्य का सम्बन्ध जैसे चित्र, मूर्ति, भवन एवं संगीतादि कलाओं से हैं वैसे ही साहित्य से भी है। उक्त सम्बन्ध सामान्यतः काव्य या कविता से माना जाता है, साहित्य की अन्य विधाओं से नहीं। साहित्यकार का सौन्दर्य–बोध काव्य या कविता के माध्यम से व्यक्त होता है। इंगित तत्त्व का आकलन या अनुसंधान अद्यावधि तीन काव्य–रचनाओं के प्रसंग में ही हुआ है।

(क) सौन्दर्य का तात्पर्य

सौन्दर्य मानव–मन की एक सहज वृत्ति है और इसकी अनुभूति सार्वजनीन है। जीवन के प्रमुख प्राण–तत्त्वों में से एक होने के कारण यह अनादि–काल से देश काल की सीमाओं से परे मनुष्य हृदय को आकर्षित, प्रभावित और स्पंदित करता रहा है। वास्तव में सौन्दर्य आनन्द का पूँजीभूत निष्कर्ष है। मानव–जीवन से इतर सृष्टि में भी सौन्दर्य की सत्ता सार्वजनीन एवं सार्वभौमिक स्वीकार की गयी है। इसे केवल मानवीय सौन्दर्य तक ही सीमित नहीं किया जा सकता, वरन इसके वर्त्य में दृश्य तथा दृश्येतर सत्ताओं का भी विनियोग है। वस्तुतः मानव–मन जिस भी रूप, जिस वस्तु तथा जिस भाव से आनन्द का अनुभव करे, वही सौन्दर्य है।

भारतीय साहित्य, कला और सांस्कृति के परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय वाङ्मय में सौन्दर्य शब्द बहुत पुराना नहीं है। वेदों और उपनिषदों में उक्त शब्द अपने मौलिक रूप में प्राप्त नहीं होता । इस शब्द के स्थान पर सौन्दर्य व्यंजक शब्दों की तथा इससे सम्बनित सूक्तियों का कथन हुआ है। ''सौन्दर्य'' शब्द के प्रयोग के सन्दर्भ में डॉ0 हरद्वारीलाल शर्मा ने लिखा है कि सुन्दर शब्द के इतिहास से यह ज्ञात होता है कि यह वैदिक शब्द नहीं हैं जैसा कि ''रूप'' शब्द है।

''सौन्दर्य'' शब्द चाहे जिन स्रोतों अथवा कारणों से आगत रहा हो, किन्तु संस्कृत वाङ्मय में इसके अधोलिखित पर्यायवाची शब्द व्यवहृत होते रहे है।

सुन्दरं रूचिरं चारु सुषमं साधु शोभनम्।

कन्तं मनोरमं रुच्यं, मनोज्ञं मंजु मंजुलम।

अभीष्टेड भीप्सितं, हृदयदधिंत वल्लभं प्रियम्।

"सौन्दर्य" शब्द का प्रयोग भारतीय वाड्मय में आधुनिक ही है। यद्यपि सौन्दर्य की अवधारणा वेदों तथा उपनिषदों में पायी जाती है और सौन्दर्य वाचक तथा सौन्दर्य व्यंजक शब्दों का प्रयोग भी मिलता है, पर सौन्दर्य शब्द नहीं प्राप्त होता। "सुन्दर" शब्द के अनेक पर्याय संस्कृत वाड्मय में मिलते हैं सुन्दर रूचिर, चारू, सुषमा, साधु, शोभन,कांत मनोरम रूच्य, मनोज्ञ, मंजु और मंजुल शब्द अमर कोष में उद्धत हैं। सौन्दर्य "सुन्दर" शब्द की भाव वाचक संज्ञा है। इसकी व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से की गई है। वाचस्पत्य कोश के अनुसार "सु" उपसर्ग पूर्वक "उन्द" धातु में "अरन" प्रत्यय जोड़कर सुन्दर शब्द की सिद्धि हुई है।"[1] इसका अर्थ है अच्छी तरह आर्द्र करने वाला। इसीलिए सौन्दर्य शब्द का अर्थ हुआ –"सुष्ठु उनन्ति आर्द्रो करोति चित्तमिति।"[2] मनोहारि, सौम्यम्, भुद्रकम्, रमणीयम्, रामणीयकम्, बन्धुरम, पेशलम्, वामम्, रामम्, अभिरामम्, नंदितम्, सुभनम्, वल्गु, हरि, स्वरूपम्, अभिरूपम्, दिव्यम्, ललित, सुष्ठु, काम्य, कमनीय आदि शब्द भी सुन्दरता के व्यंजक शब्द हैं।

इसके अतिरिक्त 'सौन्दर्य शब्द की एक और व्युत्पत्ति हो सकती है –'सुन्दराति इति सुन्दरम्, तस्य भाव सौन्दर्यम्। सुंद को जो लाता है वह सुन्दर और उसका भाव जहाँ हो वह सौन्दर्य कहलाता है।'[3] इसी प्रकार 'गुण वचन ब्रह्मणादिभ्यःष्यज इस पाणिनि सूत्र से 'ष्यज्' प्रत्यायो–परंत सौन्दर्य शब्द व्युत्पन्न हुआ है। 'सुन्द' का अर्थ है 'कर्तनी' अर्थात जो कैंची की तरह कतरने वाला हो, उसको जो लाता हो वह सुन्दर हुआ, सौन्दर्य हृदय पर, नेत्र के द्वारा कैंची सा काटने वाला प्रभाव करता ही

है यह कौन नहीं जानता है।'[4]

इन शब्दों से सौन्दर्य की इन अवधारणाओं के संकेत मिलते हैं – सौन्दर्य एक गोचर तत्त्व है; सुन्दर में 'सुदर्शन' या 'नयनाभिराम' का भाव निहित है। शोभन में गोचर आभा का आकर्षण प्रमुख है। सौन्दर्य वस्तु या आलम्बन का गुण है, किन्तु उसकी सत्ता सर्वथा निरपेक्ष नहीं है। प्रमात् सापेक्ष है। 'रुचिर' और 'चारु' में प्रमाता की चेतना व्यंजित है। सौन्दर्य के मूल में अंग–साम्य अथवा सामंजस्य की धारणा निहित है। 'सुष्ठु' शब्द इसका प्रमाण है। ललितम् के दो अर्थ हैं – श्रृंगारिक हावभाव से युक्त और अभिलाषित। अतः सौन्दर्य का श्रृंगार के साथ संबंध है। ललित शब्द इसका प्रमाण है। 'लावण्य' में सौन्दर्य के प्रतीयमान स्वरूप पर अधिक बल है।''[5]

ऋग्वेद में वाणी के सौन्दर्य से सौन्दर्य शास्त्र के प्रायः सभी अंगों का सूत्रबद्ध किंतु मार्मिक विवेचन मिलता है –वाणी के सौन्दर्य का स्वरूप मानस और चाक्षुष, दिव्य और लौकिक, प्रेरणा स्रोत, सौन्दयानुभूति का विवेचन, प्रयोजन और सार्थकता, उपकरण –शब्द अर्थ,अलंकार, लय छंद आदि। वेदों में संगीत (नाद ब्रह्म) का भी विस्तार से विवेचन किया गया है।– जिसके आधार पर बाद में संगीत और संगीत शास्त्र का विकास हुआ है। उधर रूप विधायक कलाओं (प्लास्टिक आर्ट) अर्थात स्थापत्य (वास्तुब्रह्म) मूर्ति चित्र का भी यथा स्थान उल्लेख है।

अंग्रेजी में सौन्दर्य शब्द का वाचक शब्द है 'ब्यूटी' । ब्यूटी की एक व्युत्पत्ति इस प्रकार है – 'ब्यू+टी' 'बी' का अर्थ है प्रिय अथवा रसिक श्रृंगारी पुरुष। तथा 'टी' भाववाचक प्रत्यय है। अतः ब्यूटी का अर्थ है रसिक का भाव या रसिकता अथवा श्रृंगारी पुरुष का गुण। इसी प्रकार 'ब्यूटी' का कोषगत अर्थ है – 'वह गुण या

गुणों का संश्लेष जो इन्द्रियों को तीव्र आनन्द प्रदान करता है, प्रधानतः चाक्षुष आनंद अथवा जो बौद्धिक या नैतिक शक्तियों को मोहित करता है। शाब्दिक और कोषगत् अर्थ के अतिरिक्त 'ब्यूटी' शब्द का सौन्दर्य शास्त्रीय दृष्टि से भी विश्लेषण किया गया है। सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन के अनुसार ब्यूटी शब्द का अर्थ कुछ इस तरह दिया गया है – 'ऐन्द्रिय क्रम में तथा विस्तृत रूप में आध्यात्मिक क्रम में पूर्णता जो स्वयं अपने लिए आनन्द या परिशंसाा प्रोत्तेजित करती है, वह गुण या गुणों का संश्लेष जो अपने आप में पूर्ण हो और जो त्वरित तथा निसग आनंद उत्पन्न करता हो। अतः वह सौन्दर्य जो सुन्दर है उसका गुण है प्रत्यय है या आदर्श है, कलाकृतियों के लिए विशेषतः प्रयुक्त होता है।

वस्तुतः सौन्दर्य शब्द की अनुभूति जितनी सहज, सरल एवं आनन्ददायिनी है उसको परिभाषित करना उतनी ही जटिल समस्या है। सौन्दर्य के लालित्य में मन को पर्याप्त प्रसन्नता होती है। जीवन को क्रमबद्ध और व्यवस्थित करना सौन्दर्य का ही कार्य होता है। सौन्दर्य की चेतना जीवन में नवस्फूर्ति का संचरण करती है। मन का सौन्दर्य तन को भी प्रभावित करता है। सौन्दर्य की इतनी तीव्र अनुभूति के बाद भी सौन्दर्य की परिभाषा को आसानी से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। अलग–अलग भाषा के विद्वानों ने, विचारकों ने अपने अनुभव विश्लेषण और अनुभूति के आधार पर ही सौन्दर्य शब्द को परिभाषित किया है।

अंग्रेजी और हिन्दी भाषी विद्वानों के अतिरिक्त संस्कृत भाषा के विद्वानों ने सुखद विभागों के सम्पर्क में आकर अपने मन में जिस अनुभूति को पाया उसके लिए उन्होंने 'सुम' 'उम' और 'तुम' नाम दिया, परन्तु संस्कृत में उक्त आनन्दानुभूति के लिए 'सुम' शब्द का प्रयोग अधिक व्यापक रहा, जिसके फलस्वरूप

जिस वस्तु के साथ इन्द्रिय सन्नितार्थ होने पर उक्त 'सुम' नामक आनन्दानुभूति होती थी उसको सुन्दर कहा जाता था।"[6]

सौन्दर्य शब्द का निर्वाचन करते हुए एक स्थान पर कहा गया है – सुन्दराति इति सुन्दरम् तस्य भावः सौन्दर्य। "सुन्द" जो लाता है वह सुन्दर है और उसका भाव जहाँ हो वह सौन्दर्य है। "सुन्दर" पूर्वक "स" धातु अर्थात आदाने (लाना) धातु से औपादिक "अच्" प्रत्यय के योग से सुन्दर शब्द तथा "गुणवचन – ब्राह्मणदिभ्यः ष्यज" इस पाणिनी सूत्र पाणिनी सूत्र से "ष्यजू" प्रत्ययो परान्त "सौन्दर्य" शब्द निष्पन्न होता है। कोशकारों ने "सुन्द" का एक अर्थ कैंची भी माना है। इस प्रकार सौन्दर्य का व्युत्पत्ति – लभ्य अर्थ हुआ जो कैंची की तरह काटने वाला हो अर्थात् सौन्दर्य वह है जो मानव – मन पर नयनों के माध्यम से कैंची सी काट बाला अमिट प्रभाव डालता हो।

सौन्दर्य के विशिष्ट बोधात्मक वृत्ति होने के कारण इसको सर्वमान्य रूप से परिभाषित करना संभव भी नहीं होता है। इस सौन्दर्य का आनन्द स्वतंत्र कोटि का होता है। सौन्दर्य की अनुभूति आंतरिक अथवा बाह्य कारणों से है अथवा दोनों के मेल से यह कहना भी कठिन होता है। यह तो सर्वमान्य मत है कि सुन्दरता में, सौन्दर्य में आकर्षण, सम्मोहन और सुख की अनुभूति होती है परन्तु न तो सभी समय सभी वस्तुओं में और न सभी समय एक ही वस्तु में सौन्दर्य की अनुभूति होती है। सौन्दर्य में आकर्षण होते हुए भी रुचि भेद रहता है । इसी रुचि भेदादि के कारण 'मुण्डे–मुण्डे मतिर्भिन्नः' के अनुसार सौन्दर्य को अलग–अलग विद्वानों ने अलग–अलग तरह से परिभाषित किया है।

गेटे के अनुसार – "सौन्दर्य वह आदिम विषय है जो स्वयं कभी प्रकट

नहीं होता है परन्तु जिसका प्रतिबिम्ब सृजनशील मत का सहस्रों विविध उक्तियों में उद्‌भाषित होता रहता है और जो जितना वैविध्यपूर्ण है जितनी स्वयं प्रकृति।''[7] जबकि काण्ट ने अपनी परिभाषा में सौन्दर्य का निरूपण कुछ इस तरह किया है– ''वही वस्तु सुन्दर कही जाती है जो बिना किसी प्रयोजन के प्रसन्नता प्रदान करे।'' (That is Beauty which pleases without interest)।''[8] कुछ इसी तरह के भावार्थ की बात रवीन्द्र जी ने की थी। वे भी सौन्दर्य के पीछे स्वार्थ की भावना को निषेध मानते हैं। उनके अनुसार – ''जल में तैरने वाली मछली के सौन्दर्य का साक्षात्कार उसको पकड़ने वाला मछुआरा नहीं कर सकता है। स्वार्थ में लिप्त निजत्व की भावना रखने वाला व्यक्ति सच्चे सौन्दर्य का आत्म साक्षात्कार नहीं कर सकता।''[9]

सुन्दर शब्द की विभिन्न व्युत्पत्तियों में एक व्युत्पत्ति यह भी है –सु + उन्द + अरन् जिसका शब्दार्थ है – नयनों को सिक्त कर देने वाला अर्थात सुख देने वाला। चारू तथा रूचिर का अर्थ है प्रिय या प्रीतिकर और कांत में भी काम्यता का भाव ही प्रमुख है। अभीष्ट के बाचक सभी शब्दों में प्रमाता की अभिलाषा ही प्रमुख है। उपर्युक्त पर्यायों के अर्थ विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनमें कुछ तो वस्तुपरक सौन्दर्य का द्योतन करते हैं, कुछ आत्मपरक सौन्दर्य का। सुषम, शोभन, मंजु, मंजुल में आलम्बन के विभिन्न गुणों को लक्षित किया गया है, चारू और रूचिर में भी गुण पर अवधान हैं। ललित की व्युत्पत्ति ''लाल्'' धातु से हुई है, जिसके दो अर्थ हैं – क्रीड़ा करना, लक्षणा से – श्रृंगांर करना, हाव–भाव का प्रदर्शन करना, और कामना करना। इस प्रकार ललित के दो अर्थ होते हैं–श्रृंगारिक हाव–भाव से युक्त और अभिलषित या दयित, जिसमें पहला अर्थ ही अधिक प्रचलित है। मनोरम, मनोज्ञ, मनोहर, रमणीय हृद्य आदि में प्रमातृ भावना का प्रामुख्य है प्रिय दयित और

अभिप्सित में आलम्बन की अपनी सत्ता नहीं रह जाती।

इस प्रकार ये पर्याय विभिन्न अनुपातों में सौन्दर्य की वस्तुपरक और भावपरक अर्थच्छायाओं की व्यंजना करते हैं। इनके द्वारा सौन्दर्य की निम्नोक्त अवधारणाओं के संकेत मिलते हैं।

सौन्दर्य एक गोरच तत्त्व है, ''सुन्दर'' में ''सुदर्शन'' या नयनाभिराम का भाव निहित है, ''शोभन'' में गोचर आभा. का आकर्षण प्रमुख है।

सौन्दर्य वस्तु या आलम्बन का गुण है, किन्तु वह प्रतीयमान गुण है अर्थात उसकी सत्ता सर्वथा निरपेक्ष न होकर प्रमातृ सापेक्ष हैः ''रूचिर'' और ''चारू'' में प्रमाता की चेतता काप्रसादन व्यंजित है।

सौन्दर्य के मूल में प्रेम की भावना अथवा कामना, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से रहतीहै, ''मनोज्ञ'' ''मनोरम'' और ''कांत'' ''काम्य'' ''कमनीय'' आदि पर्याय इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं।

सौन्दर्य के अंग – समय अथवा सामंजस्य की धारणा निहित है – ''सुष्ठु'' शब्द इसका प्रमाण है।

सौन्दर्य का श्रृंगार के साथ भी सम्बन्ध है इसका संकेत ''ललित'' शब्द से मिलता है।

सौन्दर्य की अनुभूति की जा सकती है उसे शब्दों में बाँधना सम्भव नहीं होता है। शास्त्रीय विवेचना द्वारा भी अनुभूति दूसरे को नहीं कराई जा सकती है। कहा जा सकता है कि सौन्दर्य वस्तु में होता है। सौन्दर्य का बोध साधारण व्यवहारिक दृष्टि से नहीं हो सकता है। इसके लिए निर्विकार, विकसित सौन्दर्य चेतना चाहिए। सौन्दर्य का भाव सदा आनन्ददायक होता है। कतिपय सौन्दर्य

शास्त्रियों ने 'सुन्दर' शब्द को एक भ्रमक शब्द के रूप में प्रयोग किया है। इसका प्रयोग दार्शनिक एवं सौन्दर्य शास्त्री दो अर्थों में करते आये हैं, कभी वस्तु के लिए, कभी विशेषण के लिए। वास्तव में सौन्दर्य रागात्मक अनुभूति की प्रतीति का बोध कराने वाले संज्ञा है। यह किसी न किसी वस्तु स्थिति में निहित रहता है। इसके भावन के लिए कोई न कोई द्रष्टा, सहृदय प्रेक्षक अवश्य चाहिए होता है। कहा जा सकता है कि "सौन्दर्य जिज्ञासा तृप्ति का विषय नहीं है, यह आनन्द प्रधान अनुभूति है जिसका स्रोत इन्द्रिय संवेदनाएँ हैं।"[10]

चिरकाल से सौन्दर्य को परिभाषित करने का प्रयास विद्वानों द्वारा किया जाता रहा है। भारतीय विचारक हों अथवा पाश्चात्य सभी ने अपनी–अपनी दृष्टि में सौन्दर्य को परिभाषित किया है। सौन्दर्य एक रागात्मक अनुभूति है, अतः इसकी परिभाषा गणित के अनुरूप नहीं की जा सकती है। यह मनुष्य की मूल और सरलतम अनुभूति हैं, जिसे शब्दों में प्रकट करना संभव नहीं है। यही कारण है कि सौन्दर्य विषयक मान्यताओं, परिभाषाओं में हमेशा मतभेद रहा है। भारतीय विचारकों और पाश्चात्य विचारकों ने अपनी–अपनी मान्याताओं और सांस्कृतियों के अनुसार सौन्दर्य को परिभाषित किया है।

(ख) सौन्दर्य विवेचन की परम्परा

मनुष्य आरम्भ से ही सौन्दर्य प्रेमी रहा है। सौन्दर्य के अन्वेषण में वह हमेशा लगा रहा है। सौन्दर्य के विभिन्न रूपों को वह आत्मसात करता हुआ उनका विवेचना करता रहा है। सौन्दर्यानुभूति जीवन की विशिष्टि अनुभूति होती है। इसका

प्रभाव अमिट और उन्मादकारी होता है। सौन्दर्य की भावना से हमारी वृत्तियों और चेतना का विकास होता है। सौन्दर्य बोध की प्रक्रिया में द्रष्टा, दृश्य, दृष्टि और दर्शन तत्त्वों का योगदान होता है। सौन्दर्य स्वयं सुन्दर होता है और दूसरे को भी सुन्दर बना देता है। सौन्दर्य शब्द की व्यापकता के कारण ही विभिन्न विद्वानों ने इसे अलग–अलग ढंग से परिभाषित किया है। सौन्दर्य के मानव से अधिक निकट सम्बन्ध होने तथा समय और देश काल के अनुसार सौन्दर्य विषयक मान्यताओं में अन्तर होने के कारण भी विभिन्न विद्वानों की सौन्दर्य सम्बन्धी व्युत्पत्तियों में मतैक्य का अभाव रहा है।

सौन्दर्य विषयक परिभाषा में कठिनाई के बाद भी भारतीय और पाश्चात्य विचारकों ने सौन्दर्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है। इस कारण भारतीय और पाश्चात्य विचारकों के सौन्दर्य सम्बन्धी दृष्टिकोण का संक्षिप्त दिग्दर्शन आवश्यक है।

भारतीय और पाश्चात्य

पश्चिम में सौन्दर्य शास्त्र विद्वानों का अत्यन्त प्रिय विषय रहा है। वहाँ इस विषय की विशद् विवेचना की गई है। वहाँ इस विषय को स्वतंत्र विषय बनाने का श्रेय 16वीं सदी के जर्मन दार्शनिक बामगार्टन को है। जिन्होंने इस विषय पर एक विशाल ग्रंथ की रचना लेटिन भाषा में की थी जिसका अन्य भाषाओं में रूपान्तरण होकर प्रकाशन नहीं हो सका। पाश्चात्य विचारकों ने सौन्दर्य पर अनेक दृष्टियों से विचार किया है। कुछ विचारकों ने सौन्दर्य को वस्तु के बाह्य आकार में

निहित माना है तो कतिपय विचारकों की दृष्टि में सौन्दर्य के आन्तरिक स्वरूप का महत्त्व है। इसी कारण से पाश्चात्य विचारकों में अनेक वर्ग बन गये हैं। 'एक ओर चेर्नीशेबस्की जैसे वस्तुनिष्ठ विचारक ने सौन्दर्य की परिभाषा इस प्रकार दी है – "Beauty is Life" तो दूसरी ओर शेफ्ट्सवसी जैसे आत्मनिष्ठ चिन्तक ने कहा है – "Beauty and God are one and the same"। इस तरह सौन्दर्य (विचारकों के हाथों में) दो अतिबिन्दुओं के बीच दोलक की तरह झूलता रहा है और कोई भी दो विचारक एक मत नहीं पहुंच सके हैं। फलतः सौन्दर्य की अनेक परिभाषाएँ हैं।

पाश्चात्य वाङ्मय में सौन्दर्य तत्त्व का विश्लेषण विवेचन आरंभ से ही होता आया है और यह परम्परा निरंतर आज भी चल रही है। प्लेटो ने काफी विस्तार से अपने ग्रंथों में सौन्दर्य के विषय में विचार किया है। अपने एक ग्रंथ हिप्पिअस मेजर के संवादों में वे सुकरात के मन्तव्य से विषय का विवेचन आरम्भ करते हैं। सुकरात सौन्दर्य के विषय में तीन विकल्प प्रस्तुत करते हैं।

(1) सौन्दर्य का अर्थ है कृतित्त्व की सफलता।

(2) सौन्दर्य श्रेयस् का पर्याय है।

(3) सौन्दर्य का लक्षण है प्रीति आह्लाद जो नेत्र और श्रवण के माध्यम से प्रीतिकार हो वही सुन्दर है ये तीनोंधारणायें सीमित एवं सदोष है और सुकरात इन्हें स्वीकार नही करते इनका खण्डन करने के बाद परिसंवाद के अंत में प्लेटो ने सौन्दर्य का अत्यंत मनोयोग के सशक्त शब्दावली में व्याख्यान किया है।

प्लेटो के अनुसार सौन्दर्य सृष्टि का मूल तत्त्व है और इसका संधान करना ही तत्त्व दृष्टा का चरम लक्ष्य है। वह सत् का पर्याय है और श्रेय से अभिन्न है।

हीगेल के विचारानुसार सौन्दर्य ऐन्द्रिय प्रतीति है जिसमें परम तत्त्व की गोचर अभिव्यक्ति होती है। यह दिव्य या परम चेतना परम सत्ता का हीप्रतिरूप है, जो सम्पूर्ण सृष्टि की प्रेरक शक्ति है।इसी गोचर अथवा ऐन्द्रिय रूप में प्रस्तुति कला है और सौन्दर्य वस्तुतः कला नहीं मिलता। प्रमाता प्रकृति सौन्दर्य का सोपान है, परिणति नहीं। अर्थात उसमें सौन्दर्य का पूर्ण रूप नहीं मिलता। प्रमाता प्रकृति के दर्शन से सौन्दर्य की ओर अग्रसर होता है परन्तु उसे सिद्ध नहीं कर पाता। सौन्दर्य की सिद्धि कला में ही है। प्राकृतिक रूपों में जो सामञ्जस्य अथवा उसके विभिन्न तत्व अनुक्रम अनुपात सममिति आदि दृष्टिगत होते हैं वे सौन्दर्य की ओर संकेत करते हैं वाह्य पदार्थों का गोचर सामञ्जस्य आन्तरिक सामञ्जस्य अथवा भावनागत सामञ्जस्य का प्रतिबिम्ब मात्र है। आंतरिक रूप या चित्र रूप ही वास्तविक रूप है, वहीं सौन्दर्य है।

पाश्चात्य दार्शनिक प्लोटिनस के अनुसार जो हमारे अनुराग का विषय है अन्ततः वही सुन्दर है। मानव आत्मा अपने मूल उद्गम – उस परम् तत्त्व से मिलने के लिए व्यग्र रहती है जो शिव और सुन्दर का आधार स्रोत है उस परम सुन्दर के साथ तादात्म्य की यही अभिलाषा सौन्दर्य चेतना का रहस्य है अर्थात सौन्दर्य की भावना मूलतः एक अध्यात्मिक अनूभूति या रहस्यानुभूति है। मूर्ति अथवा वास्तु कला का सौन्दर्य उसके मूर्त आधार में न होकर कलाकार की चेतना में सक्रिय मूल विचार या भावना में ही रहताहै।परवर्ती पाश्चात्य विद्वानों में से अनेक ने सुकरात और प्लेटो के सौन्दर्य सम्बन्धी विचारों का खण्डन किया है।

प्लॉटिनस – "ऊँची धारणा और तर्क का सम्मिश्रण सौन्दर्य है। पुनः ऊँची धारणा और तर्क के सम्मिश्रण को " सौन्दर्य ही रूप–विधान प्रदान करता है

अर्थात सौन्दर्य पूर्णतः भावगत है, अल्पॉश में भी वस्तुगत नहीं। इसलिए सौन्दर्य एक रहस्यात्मक सहजानुभूति है।''

उपर्युक्त पाश्चात्य विचारकों के अतिरिक्त कुछ अन्य विचारक भी हैं जिन्होंने सौन्दर्य के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं। उनकी परिभाषाओं को हम यहां वर्गगत रूप में न प्रस्तुत कर मिले–जुले रूप में ही प्रस्तुत कर रहे हैं।

यथा – डेविड ह्यूम के विचारानुसार सौन्दर्य वस्तुओं का कोई स्वतंत्र गुण नहीं है वह तो केवल उस मन में रहने वाला एक धर्म है जो वस्तुओं को देखता है और प्रत्येक मन को भिन्न–भिन्न सौन्दर्य दिखाई पड़ता है। ऐसा भी हो सकता है कि किसी व्यक्ति को वहाँ भद्दापन दिखाईपड़े जहाँ दूसरा सौन्दर्य देखता हो। वास्तविक सौन्दर्य या वास्तविक असौन्दर्य की खोज करना वैसा ही बेकार है जैसा वास्तविक मधुरता तथा वास्तविक कटुता का निश्चय करने का प्रयास। एक अन्य स्थान पर और भी वे सौन्दर्य की आत्मपरक व्याख्या करते हुए कहते हैं कि सौन्दर्य की एक निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती , वह विदग्धता की तरह ही अवर्णनीय है।

क्रोचे अभिव्यंजना वादी विचारक हो गये हैं। उन्होंने सौन्दर्य की परिसंदर्भ में अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि सौन्दर्य का दर्शन नहीं कर सकता है जिसमें अनुभव करने तथा अभिव्यक्त करने की सहज आत्म सत्ता विद्यमान है। सौन्दर्य वस्तुओं का गुण नहीं है। एक अन्य स्थान पर और लिखते हुए उन्होंने अभिव्यंजना में ही सौन्दर्य का अस्तित्त्व.

जर्मन महाकवि गेटे के मतानुसार सौन्दर्य को समझना कठिन है वह तरल भंगुर भाषात्मक छाया सा कुछ है।वही रचना सुन्दर हो जाती है जो अपने

स्वाभाविक विकास की पराकष्ठा पर होती है। शेफ्ट सवरी ने सौन्दर्य में आध्यात्मिकता को इतना महत्व दिया है कि उसने ईश्वर तथा सौन्दर्य का अभेद सम्बन्ध स्वीकार किया है। अंग्रेजी कवि कीट्स ने सत्य और सौन्दर्य का तादात्म्य करते हुए लिखा है कि सौन्दर्य ही सत्य है और सत्य ही सौन्दर्य आगे उन्होंने फिर लिखा है कि शाश्वत आनन्द का विधान करने वाली वस्तु ही सौन्दर्य है।

कैंट ने सौन्दर्य सौन्दर्य को एक चित्तावस्था मात्रमाना है। कोई भी बाह्य रूप जब जाना अपने से बाहर रहने वाले विचार कार्य या व्यक्ति में रहने वाले सौन्दर्य से अपना तादाम्य करना है।

वाशिंगटन डरविन सौन्दर्य के आंतरिक पक्ष को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि आंतरिक सौन्दर्य की बाह्य सौन्दर्य का विधायक होता है। मैं गुण सम्पन्न महिला से कही अधिक प्रभावित होता हूँ उस रूपवती महिला की अपेक्षा जिसमें गुण नहीं होती है।

कालिंगवुड सुप्रसिद्ध समालोचक हैं वे कला–सृष्टि मेंअनुभव को सर्वाधिक महत्व देते हैं। उनका कहना है कि जिस गुण का हम अनुभव करते हैं वही सौन्दर्य है अर्थात अनुभव के आलोक में ही वस्तु की विशेषतायें चमकती हैं।

अरस्तू के अनुसार – सौन्दर्य सम्मात्रा, क्रम व्यवस्था, निश्चित विधान अनुपात तथा अंगी व अंगों के सहज तथा सुष्ठु सामंजस्य में है। प्रसिद्ध समीक्षक डा0 नगेन्द्र ने उनकी वस्तुवादी दृष्टि की समीक्षा करते हुए लिखा है कि अरस्तु की काव्य परिभाषा वस्तुपरक है। प्रकृति (जीवन) और अनुकरण दोनों ही वस्तु तत्त्व के अनिवार्य महत्व का द्योतन करते हैं। अनुकरण का अर्थ पुनः सृजन कर लेने पर भी वस्तु का महत्व बना रहता है। अतएव यह परिभाषा अनुकर्ता कवि के सामने जीवन

और जगत के रूप में वस्तु की सत्ता अनिवार्यतः प्रतिष्ठित कर उसकी स्वानुभूति को गौण स्थान देती है।

काडवैल के अनुसार सुख–दुख भले ही आंतरिक अनुभूति हो लेकिन सौन्दर्य को मापने का दण्ड समाज में है।वस्तु में है। सौन्दर्य सामाजिक है, वस्तुनिष्ठ है,, व्यक्ति के अन्दर की नहीं बाहर की चीज है। जिस प्रकार एक वक्तव्य या वाक्य में सत्य निहित रहता है उसी प्रकार वस्तु में व्यापार में अपनी सामाजिक मर्यादा के अनुसार सौन्दर्य वही रहता है, सत्य किसी कथन का और सौन्दर्य किसी वस्तु का विशिष्ट और आवश्यक गुण है।

समाज व्यक्ति और सौन्दर्य का माध्यम पक्ष (मिडिल वर्ग) हे। वे ही चीजे सुन्दर हैं जो हमारे लिए सामाजिक उपयोग की हैं जो हमें सामाजिक श्रृंखला या संतुलन (सोशल आर्डरिंग) बताती हैं और मन में राग उत्पन्न करती है। सौन्दर्य समाज द्वारा अभिजात वस्तुओं का भावात्मक तत्त्व है। एडमंड वर्क भी इसी प्रकार सौन्दर्य को सामाजिक गुण मानता है।

जार्ज सान्तायना के अनुसार सौन्दर्य सुख का मूर्त रूप (प्लीजर आब्जेक्टीफाइड) हैं। अपने मन के आनन्द को जब हम किसी मूर्त रूप में दखेना चाहते हैं तब उसे जिस वस्तु पर प्रक्षिप्त वह सुन्दर हो जायेगी। व्यक्ति के आनन्द का प्रक्षेपण उस वस्तु को सुन्दर बनाती है।

पाश्चात्य विचारकों में हीगेल और क्रोचे का विशेष महत्व है। इन दोनों विचारकों ने पाश्चात्य सौन्दर्य चिंतन के तात्त्विक पक्ष को प्रभावित किया है इन दोनों की मान्यताओं से पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्र का आधुनिक स्वरूप प्रभावित हुआ है। हीगेल का सौन्दर्य दर्शन प्रत्यय जगत पर निर्भर है। उसके अनुसार दृश्यमान

जगत् आभास मात्र है। क्रोचे ने अभिव्यंजनावाद के माध्यम से पाश्चात्य सौन्दर्य विधान को साधारण सहज ज्ञान न मानकर एन इण्टयूशन ऑव एन इण्टयूशन कहा है। इसी तरह क्रोचे ने उत्कृष्ट सौन्दर्य –विधान का सम्बन्ध सहज ज्ञान के उस पक्ष से किया है जिसमें प्रभाव और संवेदन संचित रहते हैं। अतः उत्कृष्ट सौन्दर्य विधान अभिव्यक्ति की अभिव्यक्ति न होकर प्रभावों की अभिव्यक्ति हुआ करता है।

इस प्रकार पाश्चात्य विचारकों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से सौन्दर्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है। कोई सौन्दर्य के आंतरिक गुण से प्रभावित है तो कोई उसके नैतिक पक्ष से कोई उसके बाह्य रूप को परिभाषित कर रहा है। कोई उसमें शिव रूप की व्याख्या कर रहा है। अतः रूचि विविधता पूर्ण एवं सौन्दर्य की विलक्षणता के कारण उसकी परिभाषाओं में पूर्णता का प्रायः अभाव सा ही परिलाक्षित होता है। भी एक स्वतंत्र कोटि का है जो अनुभववेद्य है। न तो वह प्रत्यक्ष अनुमति हो सकता है न प्रमाणित। लेकिनं सौन्दर्य की उपलब्धि होती है।

पौर्वात्र्य सौन्दर्य विचारकों में वेदों उपनिषदों रामायण महाभारत के बाद संस्कृत के कव्य मनीषियों द्वारा सौन्दर्य पर पर्याप्त व्यापक दृष्टि से विचार किया गया है। इन कवियों ने सौन्दर्य की नैसर्गिक शोभा के निरूपण के साथ सौन्दर्य विधायक तत्त्वों की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया है और सौन्दर्य तथा प्रभावान्विति को सौन्दर्य की सम्पूर्णता में ही देखने और उसका भावन करने का संकेत किया है। इस परिसंदर्भ में अपने लब्ध प्रतिष्ठित ग्रंथ भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका में डा0 नगेन्द्र ने लिखा है।

संस्कृत कवियों का सौन्दर्य वर्णन तो उनके गौरव के अनुरूप अत्यंत समृद्ध एवं परिष्कृत है ही उनका सौन्दर्य विवेचन भी कारयित्री प्रतिभा के उन्मेष के

कारण अत्यंत मार्मिक बन गया है। इनमें मूर्धन्य है कालिदास जो मूलतः सौन्दर्य के कवि हैं उन्होंने स्थान–स्थान पर कलात्मक सौन्दर्य के स्वरूप, सृजन प्रक्रिया एवं आस्वादन आदि का मार्मिक विवेचन किया है।

कालिदास के बाद वाण, भवभूति और माघ का नाम सौन्दर्य विध ाायकों में लिया जाता है। वाण की कृतियों में यथा कादम्बरी तथा हर्ष चरित में विविध वर्णों से भास्वर चित्रों का अपूर्व संकलन मिलता है। भवभूति मूलतः भावना के कलाकार हैं उनके द्वारा अंकित भौतिक सौन्दर्य के चित्र भव्य हैं किन्तु उनकी प्रतिभा वास्तव में भाव सौन्दर्य के अंकन में ही अधिक रमती है। करूण रस के महत्व के विषय में उनका यह प्रसिद्ध उद्धरण – एको रसः करूणएव – वस्तुतः हृदय सौन्दर्य अथवाभाव सौन्दर्य का ही कीर्तन है। इसका वास्तविक अर्थ यही है कि मानवीय भावना रस अर्थात काव्य सौन्दर्य का मूल आधार है।

अर्थात जो क्षण–क्षण नवीनता को प्राप्त करता रहता है वही रूप सुन्दर है। जब सौन्दर्यानुभूति प्रभाता के अंतरीण संसकारों पर आधारित होती है। तभी उसमें क्षण–क्षण परिवर्तन का नर्तन संभव हो पाता है। क्षण–क्षण परिवर्तन पदार्थ का स्वभाव नहीं है, यह तो मानव मन की सहज प्रकृति है।
इसी प्रकार श्री हर्ष आदि कतिपय अन्य कवियों की रचनाओं में भी सौन्दर्य विषयक संकते यत्र–तत्र विखरे मिलते हैं।

परन्तु भारतीय सौन्दर्य शास्त्र का वास्तविक एवं विकसित रूप काव्य शास्त्र में ही उपलब्ध होता है। यद्यपि यहाँ सौन्दर्य शास्त्र की एक स्वतंत्र शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठा नहीं हुई है। फिर भी उसके मूल तत्त्वों और विविध पक्षों एवं अंगों का विवेचन विश्लेषण अत्यंत सूक्ष्म गहन स्तर पर किया गया है। रस के भाव पक्ष

तथा अनुभूतयात्मक रूप का निर्वचन रस और ध्वनि सिद्धांतों के अंतर्गत और वस्तुनिष्ठ रूप का रीति तथा अलंकार सिद्धांतों में विस्तार से विवेचन मिलता है। कुंतक ने अपने वक्रोक्ति सिद्धांत में उसके उभयष्ठि रूप का विषयि विषयगत रूप का विश्लेषण किया है और क्षेमेन्द्र ने औचित्य की प्रतिष्ठा कर कृति के स्तर पर सौन्दर्य के नैतिक पक्ष का उद्घाटन किया है। इधर नाट्यशास्त्र के ग्रंथों में सौन्दर्य के प्रायोगिक रूप की विवेचना भी अत्यन्त संगोपांग रीति से की गई है।

प्रसिद्ध दार्शनिक डा0दास गुप्त का मत है कि भारतीय काव्य शास्त्र में परिभाषिक अर्थ में इसका प्रयोग किया है उनमें प्रमुख है वामन अभिनव गुप्त और सबसे अधिक कुंतक।

वामन–"काव्य का सारत्व है अलंकार और अलंकार का अर्थ है सौन्दर्य अर्थात सौन्दर्य काव्य का प्राण है।" (का0सू0वृ0,1–1–1)।

अभिनव गुप्त "अन्ये तु काव्येऽपि गुणांलकर सौन्दर्य्यातिशय कृतं रसचर्वण माहुः।" अन्य व्याख्याता यह कहते हैं कि काव्य में भी गुण तथा अलंकार के सौन्दर्य्यातिशय के कारण रसचर्वणा होती है। (हिन्दी अभिनव भारती अ0 6 पृ0 504)

"अत्रं च विभावकृतं तत्सौन्दर्य्य प्राधंन्येन भाति।" यहाँ विभाव की प्रधानता के कारण उसका (रचना का) सौन्दर्य प्रीतत होता है। (हिन्दी अभिनव भारती अ0 6 पृ0 490)

सौन्दर्य प्रतीयमान है इसका अर्थ यही हुआ कि वह सहृदय संवेद्य है। वस्तुगत नहीं है। जिस प्रकार लावण्य शरीर का अंग न होकर प्रमाता की चेतना का विषय होता है, उसी प्रकार सौन्छर्य भी काव्यगत शब्दार्थ में निहित न होकर सहृदय

की प्रतीति का ही विषय होता है। अलंकार और रीतिमत के अनुयायी सौन्दर्य को वस्तुगत अर्थात् शब्दार्थ गत मानते हैं। इन सिद्धांतों के अनुसार अलंकार ही सौन्दर्य है और अलंकार शब्द—अर्थ का धर्म है।

विचारकों का जो वर्ग रूपवादी है वह इसका विरोध करता है। ऐसे विचारकों में उन्नीसवीं शदी के पूर्वाद्ध में हरबर्ट नामक दार्शनिक का नाम विशेष रूप से उल्लिखित किया जाता है। उसका कथन है कि सौन्दर्य अपने अतिरिक्त किसी ऊपर तत्त्व का प्रतीक नहीं है। अपने रूप के अतिरिक्त उसका कोई अर्थ नहीं है। बस्तु के रूप आकार की रचना अनुक्रम अनुपात सममिति, समन्विति, वर्ण योजना, दीप्ति आदि तत्त्वों से होती है।ये ही सौन्दर्य के तत्त्व हैं आत्मवादी विचारकों ने इस दृष्टिकोण को नहीं माना है।

(ग) सौन्दर्य का आधार : दृष्टा और दृश्य

सौन्दर्य लालसा मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है, इसलिए कहा जाता है कि सौन्दर्य का शास्त्रीय विश्लेषण हमे सौन्दर्य की अनुभूति नही करा सकता है। इसके लिए हमें देखना होगा कि अपने आस—पास की वस्तुओं के प्रति हम कितने सजग है। क्या वे हमारे सौन्दर्यबोध को बढ़ाती है या हमारी सौन्दर्याभिरुचि को सन्तुष्ट कर सकती हैं इस पर आगे विवाद होता है कि एक वस्तु किसी के लिए आनन्ददायक है तो किसी अन्य के लिए वही वस्तु रुचिकर नहीं है। क्या इस प्रकार रुचि का कोई सामान्य मानदण्ड स्थिर किया जा सकता है? डॉ0 आनन्द कुमार

स्वामी ने इस रुचि वैचित्र्य पर विस्तार से विचार करते हुए कहा है कि "रुचि पर आधारित सुन्दर का निर्णय पूर्वाग्रहों से युक्त होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही रुचि को मान्यता देता है। सौन्दर्य निर्णय में वही उसका सर्वोच्च निष्कर्ष है। जब मजनू से लोगों ने कहा कि संसार तुम्हारी लैला को बदसूरत मानता है तो उसने उत्तर दिया कि लैला की सुन्दरता देखने के लिए मजनूं की आंखे चाहिए।"[11]

सौन्दर्य की परिभाषाओं के विवाद के बाद रुचि आधारित एक विवाद और सामने आता है, वह है सौन्दर्य का वस्तुनिष्ठ अथवा व्यक्तिनिष्ठ होने को लेकर। कुछ विद्वान वस्तु को बाह्य रूपाकार में उसका अस्तित्त्व मानते है, जबकि कुछ उसकी स्थिति मन में मानते है। इस प्रकार सौन्दर्य शास्त्रियों के इस आधार पर वर्ग बन गये हैं—एक तो वे जो वस्तुवादी अर्थात् दृश्य या वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य को स्वीकारते हैं जिनके अनुसार सौन्दर्य वस्तु के बाह्य रूप में होता है। दूसरे वे जो व्यक्तिवादी अर्थात् दृष्टा या वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य को महत्व देते हैं इनके लिए सौन्दर्य मन से ग्रहण करने वाली स्थिति है और आनन्द इसका प्रमुख गुण है। इसके अतिरिक्त तीसरे वर्ग में वे विद्वान आते हैं जो कि सौन्दर्य को किसी वर्ग विशेष में शामिल न कर उभयनिष्ठ मानते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने समन्यवादी विचारधारा का प्रबल समर्थन किया है। उन्होंने सामंजस्य में ही सौन्दर्य स्वीकारा है। "सुन्दरता सामंजस्य में होती है सांमजस्य का अर्थ होता है किसी चीज का बहुत अधिक और किसी का बहुत कम न होना। इसमे संयम की बड़ी जरूरत है इसलिए सौन्दर्य प्रेम में संयम होता है। उच्छृंखलता नहीं।" सौन्दर्य की व्यक्तिनिष्ठा और वस्तुनिष्ठा पर विचारपूर्वक चर्चा करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते है— "हम जो कुछ देखते है वह

मानवगृहीत सत्य है, मानव निरपेक्ष सत्य हमारी पहुँच के बाहर है। ठीक यही बात सौन्दर्य के विषय में कही जा सकती है। कोई वस्तु अपने आप में कितनी सुन्दर है अथवा उसका वस्तुनिष्ठ वास्तव स्वरूप क्या है, यह हमारी पहुँच के बाहर की चीज है। जो वस्तु हमे सुन्दर लगती है वह मानवगृहीत रूप में हमारी मानस को चालित आन्दोलित करती है। वह भी एक मानवगृहीत सौन्दर्य है सीधी भाषा में ऐसा समझिए कि एक प्रकार का व्यापक मानवचित्त है जो विश्वसनीय है जो वस्तु इस समष्टि मानव चित्त को सुन्दर लगती है, वही सुन्दर है।"[12]

सौन्दर्य की व्यक्तिनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ धारणाओं को डॉ0 आनन्द कुमार स्वामी ने और स्पष्टता से विवेचित किया है। वे कहते हैं कि "सौन्दर्य का अस्तित्त्व सौन्दर्य की अनुभूति में है जैसे प्रेम, प्रेम की क्रिया पर निर्भर है। वे वस्तु और व्यक्तिवादी दृष्टियों को एक दूसरे से पृथक नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि सत्य का वही अस्तित्त्व होता है जहाँ ज्ञेय और वैद्य का, ज्ञान और संवेदन की क्रिया से तादाम्य हो जाता है और दोनों को अलग कर नहीं सोचा जा सकता।"[13]

समन्वय तादाम्य के स्थापित होने के कारण को लेकर ही समन्वयवादी विचारक विषय और विषयी के समन्वय में सौन्दर्य का अस्तित्त्व मानते हैं। विषयी के गुण रूप दोनों पर ही विषय के गुण की परख होती है। हीरे के गुण की परख के लिए जौहरी की आँख चाहिए। स्वाति की बूँदो की गुणवत्ता का ज्ञान पपीहा को होता है। चन्द्रमा की किरणों का माधुर्य चकोर से पूछा जा सकता है। सौन्दर्य की परख सरल और सहृदय कर सकते है। महाकवि बिहारी ने इसी बात को कुछ इस तरह समझाया है–

"समय–समय सुन्दर सबै, रूप कुरुप न कोई।

मन की गति जैती जिते, तित तेती रुचि होय।''

भारतीय एवं पाश्चात्य समन्वयकारियों ने अपने अपने दृष्टिकाणों से अन्तः एवं बाह्य का समन्वय स्थापित किया है। यद्यपि यह सत्य भी हो सकता है फिर भी विवेचन के लिए पाश्चात्य व भारतीय विचारको के वस्तुगत और व्यक्तिगत, दृष्टा और दृश्य सम्बन्धी विचारों को जानना आवश्यक होगा। किस कारण से विचारकों ने सौन्दर्य को दृष्टा का आधार बनाया और क्यों दृश्य की बात कही है? इसकी जानकारी के लिए वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ अथवा दृश्य और दृष्टा को आध ाार बनाकर सौन्दर्य को लेकर भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों के विचारों को संक्षिप्त रूप में संज्ञान में लेना भी आवश्यक हो जाता है।

वस्तुगत सौन्दर्य (दृष्टा)

सौन्दर्यशास्त्रियों का एक वर्ग सौन्दर्य को व्यक्तिगत, मानसिक, आध यात्मिक, आत्मनिष्ठ, विषयीगत मानता है। वे सौन्दर्य को भौतिक एवं वस्तुगत न मानकर पूर्णतः मानसिक अथवा आध्यात्मिक जगत की वस्तु मानते है। इन विचारकों का मानना है कि सौन्दर्य की सत्ता सुन्दर वस्तु से पृथक है।

पाश्चात्य दृष्टिकोण

पश्चिम में सौन्दर्य की इस व्यक्तिवादी अथवा आत्मवादी विचारधारा को मानने की लम्बी परम्परा रही है। उनके विचारों की आधार भूमि अत्यन्त सूक्ष्म नहीं है। उन्होंने किसी न किसी रूप में सौन्दर्य को आध्यात्म से सम्बन्धित कर उसको परिभाषित किया है। इन विचारकों का मानना है कि आध्यात्म की पृष्ठ भूमि

पर प्रतिष्ठित किए बिना वास्तविक सौन्दर्य की अनुभूति नहीं होती है। 'इस वर्ग के विचारकों में प्लेटो, प्लॉटेनिस, वामगार्टन, शैक्टशबरी, ह्यूज, आस्कर, बाइल्ड, काण्ट, क्रोंचे, शैली एवं कीट्स आदि मुख्य है।'[14]

वामगर्टन सौन्दर्य को हमारी वृत्तियों का आदर्श लक्ष्य मानते हैं। उन्होंने कहा है कि ''सौन्दर्यशास्त्र हमारी चेतना, अनुभूतियों अथवा वृत्तियों का धर्म है।''

प्लोटेनिस के अनुसार–''सौन्दर्य भौतिक पदार्थो में नहीं होता यह शाश्वत भावों में होता है जो भौतिक पदार्थों के माध्यम से प्रतिबिम्बति होता है, उसके दर्शन बाहरी नेत्रों से नही होते, उसके लिए आन्तरिक नेत्र चाहिए।''[15]

काण्ट सौन्दर्य के भौतिक अस्तित्त्व को अस्वीकार करता है। इसी अनुभूति वास्तविक जगत की वस्तुओं से परे की वस्तु है। काण्ट के लेखों में इस बात का सूत्रपात हुआ है कि सौन्दर्य मन की वस्तु है। वह मानव मन के विशिष्ट अंश को प्रभावित करता है। उसके अनुसार मस्तिष्क की अस्त–व्यस्त अनुभूतियों को बुद्धि एवं कल्पना एकत्रित एवं समन्वित करके, एक रूप प्रदान करती है। यही सौन्दर्य होता है। सौन्दर्यमय रूप वही है जिससे आनन्द की उपलब्धि होती है।'[16]

पाश्चात्य विचारकों में आई0 ए0 रिचर्डस, जार्ज सत्याना आदि ने अपने पूववर्ती सौन्दर्यशास्त्रियों से अलग एक नई मौलिक विचारधारा प्रस्तुत की। सौन्दर्य को जीवन से अलग न मानकर सौन्दर्य और आनन्द मे सम्बन्ध स्वीकारा है। इस प्रकार पाश्चात्य विचारकों ने सौन्दर्य को आत्मगत मानकर उसे मानव–मानस की क्रियाओं का फल बताते हुए अपने–अपने सौन्दर्यपरक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।

भारतीय दृष्टिकोण

सौन्दर्य के प्रति भारतीय दृष्टिकोण आध्यात्मिक रहा है। भारतीय सौन्दर्य साधना का विकास सत्यं, शिवं, सुन्दर की विशाल, व्यापक और पावन भावना के साथ हुआ है। इसकी आध्यात्मिक दृष्टि की ओर संकेत करते हुए रामेश्वरदयाल खण्डेलवाल लिखते है–"वस्तुतः भारतीय विचारधारा में कोरा बाहरी सौन्दर्य अपने आप में क्षुद्र है। वह ब्रह्मभावना से युक्त होकर ही रमणीय व आकर्षक होता है।"[17]

सामान्य भारतीय विचारधारा के अनुसार रवीन्द्रनाथ भी सौन्दर्य को स्वानाभूतिमूलक मानते है। किसी भी चीज को इसका माध्यम बनाया जा सकता है। भद्दी चीज भी इस दृष्टि से निरर्थक नहीं है। कला में मनुष्य अपने को प्रकाशित करता है न कि अपने वर्ण्य विषयों को। उनका कहना है "सौन्दर्य विश्व की प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है इसलिए प्रत्येक वस्तु हमारे आनन्द का स्रोत बन सकती है।"[18]

कालिदास हिमालय की प्रशंसा करते है तो अन्य कवियों ने भी उसके वस्तुगत सौन्दर्य को न उभार कर उसके मनोभावों को चित्रित किया है। वास्तविक रूप में भारतीय सौन्दर्य विचारकों ने अपनी दृष्टि को सामंजस्य पूर्ण बनाये रखा है। उन्होंने सौन्दर्य के आत्मगत और वस्तुगत–दृष्टा एवं दृश्य दोनों स्वरूपों को दृष्टि में रखते हुए अपने विचार प्रस्तुत किये है। उनकी सामंजस्यपूर्ण दृष्टि यकीनन अवलोकनीय कही जा सकती है।

वस्तुगत सौन्दर्य (दृश्य)

वस्तुवादी विचारकों ने सौन्दर्य बोध कराने वाली वस्तु के बाह्य रूप को अपनी विवेचना का आधार बनाया है। कुछ विद्वानों का मत है कि सौन्दर्य किसी सुसंगठित पदार्थ में ही विद्यमान रहता है, वह दर्शक को प्रभावित भी करता है इस प्रकार वह भौतिक जगत की ही वस्तु है न कि किसी आध्यात्मिक जगत की।

पाश्चात्य दृष्टिकोण

पश्चिम में सौन्दर्यशास्त्रियों की एक लम्बी परम्परा रही है परन्तु उनमें भी मतैक्य का अभाव रहा है। यूनान की प्राचीन मूर्तिकला देवी देवताओं से सम्बद्ध है उन्हें यह रूप पूर्ण मानव के आदर्श स्वरूप से प्राप्त हुआ है। वहाँ ईश्वर की कल्पना श्रेष्ठ मानव के रूप में स्वीकारी गई है। अपोलो और डायना की मूर्तियाँ इसी मान्यता पर आधारित हैं। अरस्तु ने कला को प्रकृति का अनुकरण मानकर सौन्दर्य के बाह्य रूप को प्रमुखता प्रदान की है।

पश्चिमी विचारकों में सौन्दर्य को वस्तुगत मानने वाले विचारक सौन्दर्य के बाहरी रूप, संगठन, आकृति और सुडौलता आदि गुणों को अधिक महत्व देते है। इस वर्ग में वहाँ सुकरात, अरस्तु, लेसिंग, होगार्ल, बर्क, एलिसन, रिचर्ड, प्राइस, हरबर्ट, स्पेन्सर, गेरार्ड, स्टुअर्ट आदि प्रमुख हैं।

'हागार्थ ने सौन्दर्य को सम्माता, स्पष्टता एवं आयतन में देखा है। वर्क ने वस्तु की लघुता, स्निग्धता, कोमलता, मसृणता, पवित्रता और वर्णदीप्ति में

सौन्दर्य का अवलोकन किया है। रस्किन ने सौन्दर्य के अन्तर्गत एकता, स्थिरता, सम्मत्रा, शुद्धता आदि को परिगणित किया है.। लेसिंग को मूर्ति की असुन्दरता सहन नहीं थी। अतः उसने समानता एवं सुडौलता में सौन्दर्य देखा है।'[19]

इसी तरह अन्य पाश्चात्य विचारकों में 'प्लेटो ने समता में ही सौन्दर्य की अवधारणा स्वीकार की है। ह्यूम अंगो की सुसंगठित रचना सौन्दर्य मानते है जो हमारी संस्कार जन्य आत्मा को सुख शान्ति प्रदान कर सके।'[20]

इस वर्ग को मानने वाले पाश्चात्य विचारकों ने सौन्दर्य को वस्तुगत मान कर उसके बाह्य रूप को परिभाषित किया है। अन्य सौन्दर्यशास्त्रियों ने सामंजस्य, लय, एकान्विति, सम्मात्रा आदि में सौन्दर्य के दर्शन कर अपने वस्तुगत सौन्दर्य के मत को पुष्ट किया है।

भारतीय दृष्टिकोण

भारतीय विचारकों का मत है कि इस सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में उस सत्यं, शिवं, सुन्दर का सौन्दर्य आभासित होता है। उनके लिए हिमालय एवं विंध्यगिरि की पर्वत श्रेणियाँ भी उतनी सुन्दर हैं जितनी मानव हृदय में उठने वाली उदात्त एवं मधुर भावनाएँ।

भारतीय सौन्दर्यशास्त्रियों ने सौन्दर्य के बाह्य पक्ष के विषय में इतना अधिक चिन्तन नहीं किया है जितना कि उसके आन्तरिक पक्ष के विषय में। उनका ध्यान सौन्दर्य के आह्लादाकत्व की ओर अधिक रहा है न कि उसके बाह्य आकर्षण की ओर। रसवादी और ध्वनिवादी आचार्यों के अतिरिक्त प्रायः अन्य आचार्य वस्तुवादी ही है। 'अलंकारवादियों ने सौन्दर्य को अलंकारों में ही समाहित माना है। वामन ने

अलंकारों के द्वारा काव्य को ग्राह्य बताते हुए सौन्दर्य एवं अलंकार का तादाम्य स्थापित किया है। उनके अनुसार सौन्दर्य ही अलंकार है।'[21]

भामह और उद्‌भट तो शुद्ध अलंकारवादी अथवा वस्तुवादी हैं। वे तो अलंकारों के बिना काव्य को स्वीकार ही नहीं करते। उनके अनुसार अलंकार अथवा वक्रोक्ति ही काव्य का सर्वस्य है। इस प्रकार रीति, अलंकार, औचित्य, वक्रोक्ति आदि सम्प्रदाय वालों ने सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता को स्वीकारा है।

(घ) साहित्य में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति

किसी साहित्यकार की दृष्टि साधारण जन की अपेक्षा कुछ भिन्न होती है। वह विश्व की प्रत्येक वस्तु को अपनी कल्पना के नेत्रों से देखता है। किसी भी वस्तु का स्वरूप उसकी कल्पना के द्वारा रूप धारण करता है। उस कल्पनात्मक अतीन्द्रिय स्वरूप की रसात्मकता एवं रागात्मकता के कारण हृदय में प्रेम एवं आनन्द की अनुभूति होती है। कालिदास ने सौन्दर्य की व्यापक विवेचना प्रस्तुत की है; वहीं जयशंकर प्रसाद ने सौन्दर्य को चेतना का उज्ज्वल वरदान मानकर साहित्य में उसकी प्रतिष्ठा की है। साहित्य की सौन्दर्य के प्रति दृष्टि की विवेचना परमानन्द शर्मा की इस बात से स्पष्ट हो जाती है ''यथार्थ का चित्रण यदि यथार्थ की सीमा में ही घेर कर किया जायेगा तो साहित्य की ऐसी इतिवृत्तात्मक क्रिया हमें खींचकर बहुत पीछे कर देगी।

सौन्दर्य में मुख्यतः तीन तत्त्व कार्य करते हैं – भोग तत्त्व, रूप तत्त्व और अभिव्यक्ति तत्त्व। इन्हीं तीनों तत्त्वों को आपसी सामंजस्य से ही सौन्दर्य के रूप

को परिभाषित किया जाता है। इन्हीं तत्त्वों के कारण हमें सुन्दर अथवा असुन्दर का संज्ञान होता है। सौन्दर्य की अनुभूति की जा सकती है। इसी अनुभूति को मुर्त रूप देने के लिए किसी वस्तु का आश्रय लेना पड़ता है। अतः 'वे पदार्थ, जिनके माध्य से सौन्दर्य अपनी आभा का प्रसार करता है, भोग तत्त्व कहलाते हैं। सौन्दर्य चेतना भोग तत्त्व का आधार लेकर ही मूर्त रूप में प्रकट होता है।'[22] 'ये अंश वस्तु के विशिष्ट रंग, रस, स्पर्श, गन्ध आदि है तो स्वभावतः ही हमें प्रिय लगते है और व्यक्ति में भोग की भावना उत्पन्न करते हैं।'[23]

रूप तत्त्व सौन्दर्य का दूसरा तत्त्व है। भोग तत्त्व ही रूप तत्त्व में आकार ग्रहण करता है। वस्तु की उचित संरचना द्वारा ही रूप का निर्माण होता है। इसी रूप के उचित संघटन द्वारा सौन्दर्य की सृष्टि सम्भव होती है। शरीर के अंगों का स्थान परिवर्तन कर देने से रूप सौन्दर्य से आनन्द की प्राप्ति नहीं होती है। अन्तिम तत्त्व के रूप में अभिव्यक्ति तत्त्व को परिभाषित किया जाता है। इसके द्वारा भोग और रूप तत्त्वों द्वारा उद्भूत भावों की व्यंजना का आभास होता है। साहित्यकार अथवा कलाकार अपनी सौन्दर्यानुभूति को जिस रूप में प्रकट करता है वही अभिव्यक्ति तत्त्व है। साहित्यिक अनुभव भी इसी अभिव्यक्ति तत्त्व का एक रूप है।

साहित्य में भी सौन्दर्य की प्रभाव–व्यंजनाओं का ही सर्वोपरि महत्त्व है। ''शब्द और अर्थ की एक दूसरे से होड़ मचाने वाली सुन्दरता को ही, जिसे प्राचीन पण्डित 'परस्पर स्पर्द्धिचारूता कहा करते थे, हम साहित्य नहीं कहते, बल्कि उस सुन्दरता से उत्पन्न होने वाले प्रभावों की बात सोचते हैं।''[24] मानव की सौन्दर्य–पिपासा को शांत करने वाले सौन्दर्य के दो रूप हैं साहित्येतर एवं साहित्यिक। प्रथम में व्याप्त इन्द्रियानुभूत रूप, रस, स्पर्श एवं गंध द्वारा आस्वादनीय सौन्दर्य की संज्ञा हैं, द्वितीय

में वे विशिष्ट रूप है जो साहित्य एवं अन्य कलाओं से प्राप्त है।

साहित्य में अंकित सौन्दर्य पाठक के मन पर गहरा प्रभाव छोड़ता है। सहृदय पाठक न केवल पतझड़ के द्वारा प्रकृति के दृश्य का आनन्द लेता है अपितु उसके मानवीय सुषमा से ओतप्रोत सौन्दर्य से अभिभूत भी हो उठता है। वह पुनः–पुनः इस सौन्दर्य का रसास्वादन करना चाहता है, क्योंकि इसमें कलाकार के अध्यात्मक लोक का आलोक तथा माधुर्य, संगीत और सजीवता रहती है। साहित्य में अभिव्यक्त सौन्दर्य का कोई नैतिक अथवा अनैतिक पक्ष नहीं होता है।

साहित्य आत्मा की कला है, अतः साहितय और उसका सौन्दर्य आत्मा का सौन्दर्य कहलाता है। काव्य जिन मानस प्रत्ययों द्वारा अथवा चित्रों के माध यम से सहृदय पाठक को सौन्दर्यानुभूति कराता है वे चक्षु, कर्ण, जिव्हा, नासिका द्वारा प्रदत्त रूप शब्द, रस गंध आदि मानस प्रत्यय अथवा चित्र ही तो हैं। इन्हीं चित्रों या प्रत्ययों के द्वारा मानव को सौन्दर्यानुभूति प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ–

"हिलते द्रुम दल कल किसलय,
देती गल बाँही डाली
फूलों का चुम्बन, छिड़ती–
मधुपों को तान निराली।"[25]

यही सौन्दर्यानुभूति साहित्य का अभीष्ट है। सौन्दर्य को कतिपय शब्दों द्वारा मूर्त स्वरूप प्रदान करना ही साहित्य कला है। कला के रूप की अभिव्यक्ति साहित्य से होती है। साहित्य और सौन्दर्य में साधन–साध्य सम्बन्ध है। सौन्दर्य साहित्य निर्माण का साधन है। साहित्य में जीवन की अनुभूतियों का उसी परिवेश में आदर्श स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है। इसी आदर्श रूप से प्रेरणा प्राप्त

करके उसके अनुकरण द्वारा जीवन के उच्चतम मूल्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। साहित्य के इस उद्देश्य की प्राप्ति सौन्दर्य द्वारा ही संभव होती है।

"साहित्य का सौन्दर्य शाश्वत तथा अनिश्वर है। उस पर देशफल का प्रायः प्रभाव नहीं पड़ता है। आत्मा अजर–अमर है और उसका सौन्दर्य ही साहित्य में प्रतिष्ठित है अतः साहित्यिक सौन्दर्य अमर है। साहित्य आत्मा का आत्मा से सम्बन्ध स्थापित करवाता है। यही कारण है कि तुलसी के राम, कालिदास की शकुंतला, शेक्सपियर की पोर्सिया, प्रसाद की देवसेना व कामायनी आज भी उनती सुन्दर एवं प्रिय है जितनी कि वे उस समय थीं, जबकि उनका साहित्य में आगमन हुआ था।"[26]

इस प्रकार साहित्यिक सौन्दर्य से उत्पन्न आनन्द रूप, रस, स्पर्श आदि भौतिक अनभूतियों के आनन्द से ऊपर एक ऐसी अनुभूति है जिसमें हृदय की समस्त, शुभ वृत्तियाँ सजग हो उठती हैं। उसमें किसी तरह की वासनात्मकता नहीं होती। पाठक एक ऐसे लोक में पहुँच जाता है जहाँ विशुद्ध आनन्द के और कुछ नहीं होता है। सौन्दर्य के प्रभाव से मृत्यु भी जीवन के आनन्द से परिपूर्ण प्रतीत होती है।

जीवन और सृष्टि के विभिन्न रूप सुन्दर हैं और साहित्य में समाहित हैं। साहित्य सौन्दर्य–निर्माता भी है और सौन्दर्य की सृष्टि भी है। सारे समाज को सुन्दर बनाने की साधना का नाम ही साहित्य है। इस प्रकार सौन्दर्य द्वारा साहित्य का निर्माण होता है और साहित्य द्वारा सौन्दर्य की सृष्टि।[27] साहित्य और सौन्दर्य उसी प्रकार एक दूसरे के पूरक हैं जिस प्रकार शरीर और आत्मा।

साहित्य में सौन्दर्य को लेकर भी विद्वानों में मतैक्य की स्थिति नहीं रही है। कलावादियों का विचार 'कला के लिए कला' अर्थात सौन्दर्य सृजन केवल

सौन्दर्य सृष्टि के लिए ही है, किसी अन्य उद्देश्य के लिए नहीं है। इसका निषेधन करते हुए जैनेन्द्र ने स्पष्ट शब्दों में कहा है–"हमारे यहाँ कला एक आनन्दमय साधना मानी गई है। आनन्दहीन साधना इतनी ही निरर्थक है जितना साधनहीता आनन्द निष्फल है।"[28] देखा जाये तो साहित्यकार आम आदमी की श्रेणी से ऊपर उठा हुआ सर्वाधिक संवेदनशील प्राणी है। उसकी आत्मा अनुभूति के सौन्दर्य से मण्डित होती है। वह प्रत्येक परिस्थिति में सृष्टि के प्रत्येक उस बिन्दु से भी सौन्दर्य को खोज लेता है जहाँ साधारण मनुष्य की दृष्टि नहीं पहुँचती है। वह इधर–उधर बिखरे हुए, सामंजस्य विहीन, असन्तुलित सौन्दर्य को भी खोज लेता है। वह अनुराग विह्वल प्राणियों की प्रणय लीलाओं में आकण्ठ डूब जाता है तो उनकी वियोग वेदना की आग में भी झुलसता है।

भारतीय और पाश्चात्य मनीषियों ने सौन्दर्य को ही साहित्य का सर्वस्व स्वीकार कर उसके महत्त्व को प्रतिपादित किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'भला–बुरा, शुभ–अशुभ, मंगल–अमंगल, पाप–पुण्य आदि शब्दों को काव्य क्षेत्र के बाहर का माना है। उनके अनुसार उपयोगी, अनुपयोगी, भली–बुरी बातें काव्य में नहीं होती हैं। सब बातें केवल दो रूपों में दिखाई पड़ती हैं–सुन्दर, असुन्दर।"[29]

रामेश्वर लाल खण्डेलवाल साहित्य में सौन्दर्य को चिरकाल से स्थित मानते हैं। वे कहते हैं कि यदि संसार के सब देशों और सब कालों के साहित्य का मंथन करके यदि उसमें से कोई शाश्वत तत्त्व निकाला जाये तो वह तत्त्व होगा प्रेम और सौन्दर्य को भावनाएँ।"[30]

जयशंकर प्रसाद साहित्य में सौन्दर्य एवं सत्य का समन्वय स्वीकारते हुए लिखते हैं कि "काव्य अथवा साहित्य एक द्रष्टा कवि का सुन्दर दर्शन है।"

हिन्दी साहित्यकारों का सौन्दर्य विषयक अभिमत

सौन्दर्य एक अखण्ड वृत्ति है और उसकी अनुभूति एवं अभिव्यक्ति भी तद्वत सकल एवं सम्पूर्ण होती है। उसे खण्डशः न अनुभव किया जाता है और न ही अभिव्यक्त। व्यक्ति–व्यक्ति की दृष्टि अनुभूति और अभिव्यक्ति में स्वाभाविक भिन्नता होती है। यही कारण है कि अभिव्यक्ति के तल पर भी विद्वानों में कभी मतैक्य व एकरूपता नहीं हो पायी। जिसकी जैसी रुचि और ग्राह्य क्षमता रही है उसके अनुरूप उसमें वैसी सौन्दर्य विषयक अवधारणा बनी है।

सौन्दर्य सभी प्राणियों के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है। कवियों का तो सौन्दर्य में एक प्रकार से प्राण ही बसता है। उनके काव्य का बहुलांश सौन्दर्य प्रेरित और सौन्दर्यनुस्यूत है हिन्दी साहित्यकारों में शायद ही कोई ऐसा कवि हो जो सौन्दर्य से अभिभूत व सृजन प्रेरित न हुआ हो। आदिकाल से लेकर आज तक प्रायः सभी कवियों ने अपने अपने ढंग से सौन्दर्य को निहारा और अभिव्यक्त किया वीरगाथा काल में जो काव्य लिखे गये उनमें भी पुरुष, नारी और प्रकृति सौन्दर्य की पर्याप्त रचना देखने को मिलती है। कालान्तर में भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल में व्यापक परिवृत्त में सौन्दर्य का अनुभावन और निरूपण हुआ है।

कविवर बिहारी

रीतिकाल के कविवर बिहारी ने बड़ी सूक्ष्म से सौन्दर्य को देखा और उसे अनुभव किया था, परन्तु वे इस निष्कर्ष पर आये कि सौन्दर्य की कोई सर्वसम्मति अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। हर व्यक्ति अपनी रुचि संस्कार तथा परिवेश

के आधार पर सुन्दर वस्तु का निर्धारण करता है।

"समै समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोय।
मन की रूचि जेती जितै, तित तेती रूचि हाय।"

विद्यापति

बिहारी से भी पूर्व कवि कोकिल विद्यापति ने रूप को अनिवर्चनीय तथा प्रतिपल विकसित होने वाला माना है। "जनम–जनम हम रूप निहारल तदपि न तिरपति भेल रे" से यही बात ध्वनित होती है।

जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी ने सौन्दर्य में आध्यात्मिकता की प्रतिष्ठा की है। आध्यात्मिक सौन्दर्य के द्वारा अज्ञान का तिमिर विदीर्ण होकर ज्ञान का आलोक प्राप्त होता है। निम्नलिखित पंक्तियों से यह भाव स्पष्ट हो जाता है।

"देखि मानसर रूप सुहावा। हिय हुलास पुरइन हुई छावा।।
गा अंधियार रैनमसि छूटी। भा भिनसऱ किरन् रवि फूटी।।
अस्ति–अस्ति सब साथी बोले। अन्ध जो अहे नैन विधि खोले।"

जयशंकर प्रसाद

प्रसाद जी चेतना के उज्ज्वल वरदान को सौन्दर्य मानते हैं। उज्ज्वल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं। जिसमें अनन्त अभिलाषा के सपने जगते रहते हैं। सौन्दर्योपासक प्रसाद जी सौन्दर्य की अवस्थिति समरता में मानते थे यही भावात्मकता सौन्दर्य है। कामायनी के "आनन्द सर्ग" में उनका मत स्पष्टतः इसी रूप में प्रकट हुआ है।

"समरस थे जड़ या चेतन,

सुन्दर साकार बना था।

चेतनता एक विलसती,

आनन्द अखण्ड घना था।''

सुमित्रानन्दन पंत

पंत जी मूलतः सुन्दरम् के ही कवि हैं। प्रकृति सौन्दर्य के उस सुकुमार कवि ने सौन्दर्य में सत्य औरशिव के लोक मंगल की भव प्रतिष्ठा करते हुए सौन्दर्य के उस सुकुमार कवि ने सौन्दर्य में सत्य और शिव के लोक मंगल की भव प्रतिष्ठा करते हुए सौन्दर्य की व्यापक परिभाषा प्रस्तुत की है–

''वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप हृदय में बनता प्रणय अपार,

लोचनों में लावण्य अनूप, लोक सेवा में शिव अविकार,

स्वरों में ध्वनित मधुर, सुकुमार सत्य ही प्रेमोद्गार,

दिव्य सौन्दर्य स्नेह, साकार भावना भय संसार।''

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

निराला का व्यक्तित्त्व अभिव्यक्ति, अनुभूति किंवा अखिल निखिल निराला था। निराला का अभिमत है कि स्नेह, लज्जा, वैदुष्य, मंगल भावना से मिलकर सुन्दर छवि की सृष्टि होती है–

''स्नेह की सरिता के तट पर,

चल रही युगल कमल धट भर।

नयन–ज्योति में ज्ञान अकम्पित,

चली जा रही नत–मुख विकसित,

जीवन के पथ पर अविचल–चित्,

छवि अपार सुन्दर।"

निराला जी सौन्दर्यवृत्ति को एक गूढ़ अंतर्वृत्ति, रहयात्मक एवं आत्मिक चेतना का ओज तथा आलोक स्वीकारते हैं। कवि ने "रेखा" को सौन्दर्य प्रतिभा मानते हुए सौन्दर्य को एक ऐन्द्रिय अनुमति माना है–

"स्पर्श रूप में अनुभव रोमांच

हर्ष रूप में परिचय

विनोद सुख गंध में

रस में मज्जनादि

शब्दों में अलंकार।"

महादेवी वर्मा

सौन्दर्य की अनुभूति जितनी सहज है,उसकी परिभाषा उतनी ही कठिन हो जाती है सामान्यतः वह ऐसी सुखद अनुभूति है जो वस्तुओं रंगों रेखाओं आदि के विशेष सामंजस्य पूर्ण स्थिति में अनायास उत्पन्न हो जाती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

भरत मुनि के रस सूत्र की वस्तुपरक व्याख्या करने वाले आधुनिक आचार्यों में शुक्ल जी का विशिष्ट स्थान है। सौन्दर्य के वस्तुपरक रूप के संदर्भ में आचार्य शुक्ल की मान्यता है कि "जिस सौन्दर्य की भावना में मग्न होकर मनुष्य अपनी प्रथक सत्ता की प्रतीति का विसर्जन करता है, वह अवश्य ही एक दिव्य विभूति है। जैसे वीर कर्म से पृथक वीरत्व कोई पदार्थ नहीं, वैसे ही सुन्दर वस्तु से प्रथक सौन्दर्य कोई पदार्थ नहीं।"

शुक्ल जी ने अन्यत्र अपने 'चिंतामणि' में भी कहा है कि "कुछ रूप

रंग की वस्तुयें ऐसी होती हैं जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती है कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में परिणत हो जाते हैं हमारी अन्तः सत्ता की यह तदाकार सौन्दर्य की अनुभूति है। जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से तदाकर परिणति जितनी ही अधिक होगी उतनी ही वह वस्तु हमारे लिए सुन्दर कही जायेगी।''

डा० रामविलास शर्मा

डा0 रामविलास शर्मा वस्तु के आनन्ददायक धर्म को सौन्दर्य मानते हैं। प्रकृति, मानव जीवन तथा ललित कलाओं के आनन्ददायक गुण का नाम सौन्दर्य है।''

हंस कुमार तिवारी

हंस कुमार तिवारी सौन्दर्य को एक विशिष्ट बोध स्वीकारते हुए लिखते हैं –''वास्तव में सौन्दर्य एक विशेष बोध है जिसके पीछे ज्ञान, आनन्द, क्रियात्मक वृत्ति आदि का सामंजस्य है। इसलिए इसका कोई सर्वमान्य लक्षण देना संभव नहीं। इस सौन्दर्य का आनन्द भी एक स्वतंत्र कोटि का है जो कि अनुभवेय है। न तो वह प्रत्यक्ष अनुमति हो सकता है न प्रमाणित लेकिन सौन्दर्य की उपलब्धि होती है।''

डॉ० नगेन्द्र

डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार सौन्दर्यानुभूति आत्मनिष्ठ है। इनका मत है कि सौन्दर्य अनुभव पर निर्भर रहता है और अनुभव व्यक्तिगत संस्कारों पर आधारित है इसलिए व्यक्ति का परिष्कृत सौन्दर्यानुमान आत्मगत है और आनन्दप्रद भी।''

अवनीन्द्र नाथ

अवनीन्द्रनाथ आत्मपरक सौन्दर्य दृष्टि के हिमायती थे। कलाकृति कलाकार की देन है जो स्वयं व्यक्तिगत अनुभूति से अनुप्राणित है। इसलिए वस्तु तत्त्व के प्रभाव को स्वीकार करते हुए भी कलाकार अधिकतर अपने व्यक्तित्त्व के रंग में रंग कर ही कला सृष्टि कर देता है, नहीं तो कलाकार की मौलिकता कहाँ? नवीनता कहाँ? कलाकार पर समाज का जितना प्रभाव रहता है उससे बहुत अधिक प्रभाव कलाकार का समाज पर अंकित रहता है। ''इस दृष्टि से कलाओं का प्राण है कि वस्तु सौन्दर्य की प्रतीति मन या चेतना द्वारा होती है किन्तु उसके सम्पर्क के लिए वस्तु चाहिए ही। प्रतीक के रूप में वस्तु या व्यक्ति का आरोप भी किया जा सकता है। अनेक मूर्तियां देव देवियों की प्रतीक हैं। उनका सौन्दर्य काल्पनिक है, किन्तु उस सौन्दर्य की भावना कराने के लिए ही मूर्तियों की उद्‌भावना कराई गयी। उन्हीं के सम्बन्ध में मन–देव सौन्दर्य को ग्रहण करता है, आकार ग्रहण करने का साधन है। सौन्दर्य के क्षेत्र में उसका इतना मूल्य है वस्तु सम्पर्क के बिना सौन्दर्य की भावना कठिन नहीं, असंभव भी हो जाती है।''

सौन्दर्य की अनुभूति मन की सविशेष अवस्था है मन निर्विशेष या स्वस्थ दशा में वस्तु सम्बन्ध विगलित हो जाने से सहजानन्द या विशुद्धानन्द का आविर्भाव होता है। इसी आनन्द का निरूपण कबीर ने इन शब्दों में किया है।

''लाली मेरे लाल की, जित देखौ तित लाल।
लाली देखन हौ गई, मैं भी ह्वै गई लाल।''

काव्य में सौन्दर्य

सौन्दर्य प्रकृति का निर्सगजात् वरदान है। उसने चेतन में तो प्राण

स्पन्दन किया ही है, जड़ पदार्थों में भी अपनी सत्ता का विस्तार किया है, जिससे कवि कलावन्तों को नाना प्रेरणायें मिली हैं। वस्तुतः विश्व की समस्त कला का मूल उस सौन्दर्य ही है। विधाता की कला उसकी निखिल सृष्टि में सौन्दर्याभिमण्डित होकर ही अपने को अभिव्यक्त कर रही है अथवा यह कहिए कि वह अभिव्यक्ति पा रही है।

सृजन का मूल स्रष्टा की आन्तरिक अनुभूत्यात्मक सौन्दर्य में निहित होता है। मानवीय चित्त वृत्तियां सौन्दर्य की सरणि पाकर ही अभिव्यक्त होती है। विधाता की विराट कला से प्रेरणा लेकर मानव की जो विविध रूपिणी कलाभिव्यक्ति प्रकाश में आयी है, उसके मूल में सौन्दर्य दृष्टि प्रमुख है। काव्यकला समस्त मानवीय कलाओं में सर्वोत्कृष्ट कही गईहै। वह मानव मन के सर्वाधिक निकट है, अतः स्वाभाविक है कि उसमें मानव की सौन्दर्य दृष्टि अंगी रूप में प्रकट हो। कहने का आशय यह है कि काव्य और सौन्दर्य चेतना के तल पर एक रूप है उनकी अन्योन्याश्रिता को प्रथम रंग और रेखाओं में नहीं रूपायित किया जा सकता ।

जिस तरह आत्मा और शरीर के सम्बन्ध को प्रथकतावादी दृष्टि से नहीं समझाया जा सकता वैसे ही साहित्य और सौन्दर्य में किसी विभेद की कल्पना असंभव सी है। मनुष्य की समस्त भाव वृत्तियाँ यथा—दया, करुणा, ममता, प्रेम, त्याग और सहिष्णुता आदि साहित्य में ही रूपाकार ग्रहण करती है, और मानव जीवन की प्रेरक बन कर अपनी सार्थकता प्रमाणित करती है। अस्तु सौन्दर्य के सम्बन्ध काव्य से अविच्छिन्न है और काव्य का जीवन से। इस प्रकार काव्य और जीवन दोनों सौन्दर्य की सत्ता विन्यस्त है सौन्दर्य के बिना साहित्य निष्प्राण सा होगा। सौन्दर्य के सत्ता के भाव और शिल्पदोनों पक्षों में संयस्त है। सौन्दर्य काव्य को चारुता और मंत्रत ही

प्रदान करता अपितु उसमें नूतन प्राण संचार भी करता है जिससे काव्य की कमनीयता बढ़ जाती है।

किसी काव्य की कल्पना सौन्दर्य विरहित रूप में नहीं की जा सकती वे एक दूसरे में आत्मस्थ ऐसे हैं कि उनकी अविच्छिन्नता में ही, पारस्परिक संस्थिति कही जायेगी। साहित्य कल्पना प्रसूतसंवर होते हुए भी मूलतः सत्य आधारित होता है उसका उत्स कही न कहीं जीवन से जुड़ा होता है और वही से वह कल्पना के इंद्रधनुषी पंखों पर आरोहण करता हुआ मानव के भावलोक में प्रचरण करता है।

मनुष्य के भावोद्रेक की नाना सरिणियां प्रकारांतर से सौन्दर्य की ही अभिव्यंजना है, सौन्दर्य उनका निमायक और भायक हैं यही कारण है कि विश्व का सम्पूर्ण वाङ्मय सौन्दर्यजनित एवं अनुभूतिकरण है।

साहित्य और सौन्दर्य के सम्बन्धों पर दृष्टि निक्षेप करते हुए एक लेखिका ने कहा कि साहित्य का सौन्दर्य शाश्वत एवं अनिश्वर है उस पर देशकाल का प्रभाव प्रायः नहीं तथा आत्मा अजर अमर हैं और उसकी सौन्दर्य ही साहित्य में प्रतिष्ठित हैं। साहित्य आत्मा का आत्मा से सम्बन्ध स्थापित करवाता है। आज भी शकुन्तला के अनाविद्धान वाले निश्छल सौन्दर्य के दर्शन कर पाठक का हृदय पवित्र हो जाता है। राम की वियोग व्यथा से पाठक का मन भी भर आता है। देवसेना की एक करुण अलाप हृदय में सोई हुई पीड़ा व तार झंकृत कर देती हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य भौतिक एवं वासना के पंक से विलग एक सात्विक, पावन शीतल के उदात्य स्वरूप को प्रस्तुत करता है। यही सुन्दर एवं चिरन्तम भावनायें सहृदय मानस के अन्तःकरण का परिष्कार एवं हृदय की शुभ वृत्तियां जाग्रत करने के लिए पर्याप्त हैं।

साहित्य में प्रतिष्ठत सौन्दर्य प्रायः एक विशिष्ट मानवीय– संवेदना चेतना अनुभूति एवं जीवन्नति से सम्प्रक्त हैं। "कहो कौन तुम दमयंती–सी। इस तरू के नीचे सोई। क्या तुम को भी झोड़ गया। अलिनल सा निष्ठुर कोई।

घ–4 प्रसिद्ध दार्शनिक काण्ट ने अपनी पुस्तक "Critique of Jubdgement" (Translated by meridith page 15) में सत्यं, शिवं,सुन्दरं के प्रतीक रूप में ज्ञान (Knowledge) भावना (Feeling) और संकल्प (Willing) वृत्तियों का विवेचन किया है। ज्ञान सत्य का, संकल्प शिवं का और भावना सुंदर का मूल आधार है। संस्कृत के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक कवि भवभूति ने "विन्देय देवतां वाचमृताम + त्मनः कलाम्" लिखकर काव्य को आत्म की कला मानाहै, जिसमें सत्यं शिवं सुन्दरंम की प्रतीत संभव है। आत्मा सद्चिदानन्द स्वरूप है। भारतीय तत्त्व चिंतन मे ब्रह्म के तीन रूप भी सत्–चित–आनन्द स्वीकार किये गये हैं। वृहदारष्यकोपनिषद् में आत्मा को वाग्ड्मय मनोमय और प्राणमय बतलाते हुए लिखा है 'अयं आत्मा वाग्ड्मय मनोमयः प्राणमयः।' यहाँ वाग्ड्मय को शिव मनोमय को सौन्दर्य और प्राणमय को सत्य रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

सौन्दर्य का व्यावहारिक रूप शिवम् है। जिसमें मानव की अक्षय कल्यांण किवां लोक रंजनकारी सात्विक भावना अन्तर्निहित हैं। यह सत्य की दृढ़ भित्ति पर आधृत होता है जो वस्तु हमारे लिए मंगलविधायिनी होती है उसी में हमें सौन्दर्यानुभूति होती है। कल्याणकारी के प्रति साहज हृदयाकर्षण एवं अनुराग वृत्ति उत्पन्न होती है लेकिन अमंगल के प्रति विकर्षण एवं अरुचि उत्पन्न होती है।

टी0एस0 इलियट के अनुसार "कविता में व्यक्ति की अभिव्यंजनानहीं व्यक्तित्त्व का तिरोधान होता है।" मनोविश्लेषणात्मक सौन्दर्य बोध के प्रवर्तक आई0

ए0 रिचर्डस का कथन है "आधुनिक सौन्दर्यशास्त्र की यह मान्यता है कि सौन्दर्यबोध ा के समय मस्तिष्क में एक विशिष्टि प्रक्रिया होती है।" वस्तुतः सौन्दर्य बोध की यही सही स्थिति है। सौन्दर्यबोध की विशिष्टि मानसिक प्रक्रिया काव्यकेरूप में परिणति होती है।

ड्यूई भी ऐसा मानते हैं कि सौन्दर्यबोध एक प्रकार की पुनर्रचना है जिसमें चेतना जीवंत और प्रत्यग्र हो उठती है। बोध ग्रहण के लिए ग्राहक का अपने पुनर्रचना है जिसमें चेतना जीवंत और प्रत्यंग्र हो उठती है। बोध ग्रहण के लिए ग्राहक का अपने अनुभवों को रचनात्मक रूप देना आवश्यक होता है। मूल रचनाकार जिन अनुभवों से गुजरा है उनके संघटकों का ग्राहक की रचना में समावेश होना चाहिए। अतः सौन्दर्य बोध एक सहप्रयास है जिसमें बोध के विषय के प्रति स्रष्टा के समान ग्राहक का प्रयत्न भी बोध के निमित्त अपेक्षित है। यह एक प्रकार की भावयिनी प्रतिभा है, रचनाकार की कारयित्री प्रतिभा के प्रत्युत्तर में जिसकी वर्तमानता अनिवार्य है विषयी की संपूर्ण सत्ता एवं विषय के बीच निरंतर क्रिया–प्रितिक्रिया के बिना विषय कासम्यक् बोध नहीं होता और सौन्दर्य बोध की बिल्कुल नहीं। यही बोध तो काव्य की प्रेरणा है।

काव्य, सौन्दर्य की आविष्कृति और अभिव्यक्ति है। सच्चे अर्थ में सौन्दर्य का जन्म तभी होता है जब काव्य उस तत्त्व को पूर्ण रूपेण व्यक्त कर देता है जो उसका अभिष्टि हो तभी परिपूर्णता और सामंजस्य का समन्वय हो पाता है। सौन्दर्य बोध के तीन स्तर होते हैं–प्रथम तो रूपाकर सौन्दर्य जो इन्द्रियों तथा इच्छाओं को आकर्षित और सन्तुष्ट करता है। द्वितीय स्तर में विचारों की पकड़ भावों की जाग्रति तथा संगति सामंजस्य के के बोध का सौन्दर्य है। तृतीय स्तर वह जहाँ

केवल सौन्दर्य ही सौन्दर्य हैं। इन्द्रियां एवं आवेगों से पर अलौकिक अनुभूति में सौन्दर्य भावना की पूर्ण सन्तुष्टि होती है। इसी को पंडितराज ''भग्नावरणाचित्त विशेषः'' कहते हैं।

कवि की काव्य रचना की प्रक्रिया में सौन्दर्य बोध के स्तरों से गुजरना पड़ता है। बोध की तीव्रता ही भाव–प्रकाश की प्रेरक होती है। श्री अरविन्द के अनुसार आनन्द अस्तित्त्व की आत्मा है, सौन्दर्य आनन्द का तीक्ष्ण प्रभाव और घनीभूत रूप है और ये दो मूल वस्तुयें कलाकार और कवि के मन में एक हो जाने की ओर उन्मुख होती है। यद्यपि वे हमारे अनगढ़ प्राणिक और मानसिक अनुभव में प्रायः काफी अलग–अलग रहती है और कवि के लिए तो सौन्दर्य और आनन्द को चन्द्रमा सत्य के सूर्य या जीवन के प्रश्रवास से ही बड़ा देवता है। रवीन्द्रनाथ भी भाव प्रकाशन में सौन्दर्य मानते हैं तथा सौन्दर्य एवं आनन्द की प्रासंगिकता को भी।

सौन्दर्य उपासक कवियों की दृष्टि ही सौन्दर्यमयी हो जाती है। इसी विचार को इन काव्य पंक्तियो में देखिये–

''जो उपासक हैं मधुरता के परम,
या जिन्हें लावण्य से सच प्यार है
बस उन्हीं की दृष्टि के सम्मान में
लोक में रमणीयता तैयार हों।'' (देवयानीमहाकाव्य पृष्ठ 2)

प्रायः सभी चिन्तकों एवं कवियों ने सौन्दर्यबोध और कवित्व में घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकार किया है। जयशंकर प्रसाद संस्कृति को सौन्दर्यबोध की अभिव्यक्ति मानते हैं और सौन्दर्यबोध को सामूहिक अभिरुचि। उन्होंने वस्तु सत्ता के ग्रहण, भावन और अभिव्यंजन को सामुदायिक रीति के रूप में परिभाषित किताबें कहा है।

उनके अनुसार बाह्य जगत कर सौन्दर्य दृष्टा के भावों को उद्‌बुद्ध और उत्तेजित करता है तभी तो उन्होंने स्वयं लिखा है–

"मानस की तरल तरंग उठे रंग भरी,
पाइके बयार सुख सार स्वच्छ जल पर।
रूप के प्रभाव भरि आनन्द अपार खिल्यो,
हृदय स्वभाव मकरन्द है अमल पर ।107

स्रष्टा के भाव पूर्ण होने की बात बहुत बार प्रसाद साहित्य में मिलती है। कवि के संदर्भ में यही भावावेश या सौन्दर्यबोध उसकी कृति में व्यक्त होता है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कवि मानस के सौन्दर्य का रूपांतर ही काव्य सौन्दर्य होता है। अतएव काव्य के सन्दर्भ में सौन्दर्य का महत्व स्वयंसिद्ध है।

(च) मानवीय सौन्दर्य

पुरुष सौन्दर्य

प्रकृति के विकास के लिए स्त्री–पुरुष का सामंजस्य, सहयोग अपेक्षित है। पुरुष स्वभावतः कठोर है वहीं नारी मधुर और कोमल। नारी कोमल माधवी लता के समान है जो पुरुष रूपी वृक्ष का अवलम्बंन खोजती है। कोमलता और मधुरता को महत्त्व प्रदान करने वाली पुरुषता एवं दृढ़ता पुरुष की ही है। ऋग्वेद काल से ही पुरुष सौन्दर्य के आदर्श गुण–बाल, वीर्य, शौर्य, एवं तेजस्विता को महत्त्व दिया जाता रहा है। सूर्य और अग्नि के समान तजस्वी वायु के समान बलशाली पुरुष ही पोषण

और रक्षण का कार्य करता है।

हिन्दी साहित्य मे आदिकाल से लेकर वर्तमान तक नारी सौन्दर्य की भाँति पुरुष सौन्दर्य को परिभाषित किया गया है। यह और बात है कि नारी सौन्दर्य की अपेक्षा पुरुष सौन्दर्य अत्यल्प हुआ है। साहित्यकारों की दृष्टि रमणी–रूप में अधिक होने के कारण नारी सौन्दर्य का पर्याप्त विकास हुआ है। अत्यल्प सौन्दर्य चित्रण होने के बाद भी पुरुष सौन्दर्य का जितना उद्घाटन हुआ है वह अपने आप मे पूर्ण कहा जा सकता है। वीरगाथा काल में पुरुष का वीरोचित स्वभाव, दर्पपूर्ण आकृति उसके सौन्दर्य का प्रतीक है तो भक्तिकाल में दुष्ट संहारक के रूप में पुरुष सौन्दर्य की मंगलकारी, कल्याणकारी प्रतिस्थापना हुई है।

आधुनिक काल में भी साहित्य की प्रतिष्ठित पुरुषोचित विशेषताओं के साथ उसकी कमियों को भी समाहित कर उसका सौन्दर्य चित्रण किया गया है। राष्ट्र की रक्षा में बलिदान हो जाना वह अपना सौभाग्य समझता है, शत्रुओं को पराजित करने हेतु हुंकार भरता है परन्तु प्रणय–प्रसंगों मे अत्यन्त निरीह और कोमल स्वभाव का हो जाता है। पुरुष सौन्दर्य में साहित्यकारों ने उसकी दृढ़ता को दर्शाया है साथ ही उसकी कोमलभावनाओं को भी दर्शाया है। अत्यंत उदार होने के बाद भी वह प्रणय पर एकाधिकार चाहता है। ईर्ष्याग्नि में उसका रोम–रोम जल उठता है। आधुनिक साहित्य में पुरुष सौन्दर्य उसके गुणों और अवगुणों से एक साथ दीप्ति होकर और अधिक तेजमय होकर उभरा है।

नारी की तरह, पुरुष सौन्दर्य की मांसलता, शारीरिकता का चित्रण साहित्य में अत्यल्प है। कहीं–कहीं उसके बाह्य सौन्दर्य को दर्शाने के लिए उसकी शारीरिक अवयवों के सौन्दर्य को परिभाषित किया गया है, अधिकतर उसके आंतरिक

गुणों को ही विकसित करके पुरुष सौन्दर्य को सजाया–सँवारा गया है।

नारी सौन्दर्य

ममतामयी, वात्सल्य की मूर्ति, स्नेह की मंदाकिनी और अपनी शारीरिक सुषमा के सौरभ से जगत् को सुवासित करने वाली नारी का सौन्दर्य आदि काल से मानव– सौन्दर्यानुभूति का केन्द्र रहा है। सृष्टि के विकास के केन्द्र में नारी को हीरखा गया है। नारी ही पुरुष की शक्ति है, प्रेरणा है। नारी की शक्ति और प्रेरणा ले द्वारा ही पुरुष का विकास और पोषण हुआ है। स्त्री–पुरुष के आपसी समागम से ही सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ है।

भारतीय सांस्कृतिक विचारधारा के अनुसार नारी पुरुष की अर्द्धांगिनी है। ''वह सृष्टि का साधन और प्रकृति का मूर्त रूप होकर पुरुष के लिए सौन्दर्य, प्रेम, अनन्यता और आनन्द का कारण बनती है। इसीलिए वह मान्या है, पूज्या है, आराध्या है, इसीलिए उसमें देवत्व है, और इसलिए वह श्री हैं,शक्ति है, चिति है।''[31] यही कारण है कि भारतीयों ने अपनी कला की देवी का रूप नारी रूप में कल्पनामयी बनाया है।

नारी को यकीनन सौन्दर्य और कला के समन्वय का मूर्त रूप कहा जा सकता है। कला संसार की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है जो कि नारी से ही प्रेरणा, आलम्बन एवं आधार ग्रहण करती है। इसी कारण कला एवं नारी को एक दूसरे का पूरक कहा जा सकता है। नारी के सौन्दर्य को शोभा माना जाता है। उसके द्वारा ही सौन्दर्य शोभायमान होता है। तुलसीदास ने नारी को सुन्दरता को भी सुन्दर बनाने वाला कहा है। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द्र तो अपने उपन्यास गोदान के पात्र द्वारा अपनी अभिव्यक्ति कुछ इस तरह करते हैं–''संसार में जो कुछ सुन्दर है उसी

की प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूँ।"[32] पंत ने नारी हृदय में ही स्वर्ग की कल्पना की है।

"यदि स्वर्ग कहीं हैं पृथ्वी पर

तो वह नारी उर के भीतर।"[33]

साहित्य के इतिहास में आदिकाल से अद्यतन कवि की, साहित्यकार की प्रेरणा नारी ही रही है। यह और बात है कि उसके स्वरूप, उसकी छवि में परिस्थितियों और परिवेश के अनुसार परिवर्तन होता रहा है। "वैदिक काल में वह मंगलमयी उषा–सुन्दरी, विदुषी नारी के स्वरूप में प्रकट हुई है। संस्कृत काल में कालीदास की कला के सम्पर्क में यदि एक ओर वह कान्चनवर्णी तन्वंगी अंगों के बाह्य सौन्दर्य की दीप्ति फैला रही थी तो दूसरी ओर उसके हृदय में भी सुन्दर भावनाओं का सागर लहरा रहा है।"[34] वैदिक काल की मंगलमयी विदुषी नारी वीरगाथा काल में नारी सौन्दर्य के चरम रूप को प्राप्त करती है। वह वीरपत्नी, वीर प्रसविनी एव वीर भगिनी के रूप में अवतरित हुई है। सौन्दर्य का उसका उदात्त, साहसी स्वरूप अपने भाई–पिता आदि को युद्ध में वीरतापूर्ण क्रियाकलापों को प्रेरित करता है।

वीरगाथा काल की नारी साहस की प्रतिमूर्ति है, वहीं वह रीतिकाल में जीवन और जगत् से दूर वैभव और विलास में डूबी दिखाई गई हैं। रीतिकाल में नारी के मांसल सौन्दर्य को आधार उसकी शारीरिक छवि, उसकी माँसलता, उसके अंग प्रत्यंगों का वर्णन किया गया था बाद में पुनः वह अपनी श्रृंगारिकता को छिपाकर पवित्र प्रणय की पूर्णता प्राप्त करती है।

नारी का पवित्र एवं सुन्दर स्वरूप छायावाद में प्रतिष्ठित हुआ है। इस

काल की नारी में वासना की लालसा नहीं होती है वरन् वह अपने आपको प्राकृतिक सौन्दर्य की पावनता से एकाकार कर लेती है। प्रकृति का सौन्दर्य ही नारी के पवित्र सौन्दर्य में प्रतिबिम्बित हो उठता है–

"जो जगत् की स्वामिनी, भामस्विनी तुम धन्य

तुम प्रकृति के मुकुर का प्रतिबिम्ब रूप अनन्य।"

सरलता और सहजता उसका आभूषण बन जाते हैं । इसी नारी के अंग प्रत्यंग में छायावादी कवि को स्वर्गानुभूति होती है–

"स्नेहामयि, सुन्दरतामयि तुम्हारे रोम–रोम से नारि

मुझे है स्नेह अपार, तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारि,

मुझे है स्वर्गागार।"[35]

प्रसाद ने भी नारी के रूप, विलास, यौवन को उभारा है परन्तु उसमें रीतिकालीन वासनात्मकता प्रकट नहीं हुई है। तन के ही नहीं, प्रसाद जी ने नारी के मन के चित्रों को उकेरा है। वक्षस्थल में दया, ममता, मधुरिमा से पूर्ण स्पन्दन को प्रसाद जी ने अपनी नारी का सौन्दर्य बनाया है। उसके लिए नारी विश्वास की प्रतिमा है। वह साक्षात श्रद्धा है। श्रद्धा मे जिस प्रकार श्रद्धेय के सम्मान एवं मानव मांगल्य का सामंजस्य होता है, उसी प्रकार का सामंजस्य एवं समन्वय नारी में निहित है।

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पगतल में,

पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।"[36]

साहित्य में नारी का चित्रण अत्यधिक हुआ है। यद्यपि कुछ कालों में साहित्यकारों ने नारी के नख–निख वर्णन, उसकी मांसलता को ही वर्णित किया है

किन्तु ज्यादातर कवियों, साहित्यकारों ने नारी के महिमामयी, वात्सल्य, ममतामयी, करुणा के रूप को ही चित्रित किया है। नारी भावना का अलौकिक स्वरूप नारी सौन्दर्य के रूप में उभरकर सामने आया है। कहना अतिश्योक्ति न होगी कि साहित्यकारों अथवा कवियों ने नारी को श्रद्धा, गरिमा, लज्जा, करुणा, ममता, दुलार, सहिष्णुता के अप्रतिम सौन्दर्य से अलंकृत कर उसकी पावन प्रतिष्ठा की है।

बाल सौन्दर्य

पुरुष और नारी सौन्दर्य की भाँति बाल सौन्दर्य का भी साहित्य में अपना विशेष महत्व है। कवि शिरोमणि सूरदास को तो वात्सल्य का ही कवि कहा गया है। उनका बाल छवि का सौन्दर्य अभी तक हिन्दी साहित्यकारों को आलोकित करता है। बालक की सरल,सहज स्वाभाविक चेष्टाएँ, उसकी भोली मनोहर आकृति, भाव भंगिमाएँ अपना अलग अनुपम सौन्दर्य प्रकट करती हैं।

साहित्य में बाल चित्रण की परम्परा प्राचीन काल से ही चलीं आ रहीं है। बाल रूप में कृष्ण और राम का चित्रण अत्यधिक हुआ है। 'कृष्ण' के बाल रूप का माध्यम बनाकर सूरदास के अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी काव्य रचनाओं में सौन्दर्य की प्रतिस्थापना की है। आधुनिक युग में बाल रूप का वर्णन उतनी विकसित अवस्था में नहीं हुआ है जितना कि बाल कृष्ण का हुआ है। अवसरानुसार जहाँ जैसा अवकाश मिला है बाल छवि को उसी तरह वर्तमान साहित्यकारों ने प्रकट किया है। विस्तृत रूप में देखा जाये तो भक्ति काल की अपेक्षा बाल सौन्दर्य का चित्रण कम ही अथवा नहीं के बराबर हुआ।

(छ) बाह्य सौन्दर्य एवं आंतरिक सौन्दर्य

मानव का बाह्य सौन्दर्य हमेशा से साहित्यकारों को अपनी ओर आकृष्ट करता रहा है। कवियों ने मानव के विशेष रूप से नारी के, बाह्य सौन्दर्य को लेकर काव्य रचनाएँ की हैं। महाकाव्यों में नायिका के नख–शिख वर्णन, उसकी अंगों–उपांगों के सौन्दर्य का चित्रण बाह्य सौन्दर्य के अन्तर्गत ही किया गया है। बाह्य सौन्दर्य के अंतर्गत नारी अथवा पुरुष की बाह्य रूपरेखा, गठन, वर्ण दीप्ति और उसके विभिन्न अंगों का चित्रण किया जाता है। नारी पुरुष के शरीरिक चित्रण के अलावा उनके द्वारा उपयोग किये जा रहे प्रसाधनों और वस्त्राभूषणों के सौन्दर्य को भी साहित्यकार मंडित करता है।

साहित्यकार को नारी–पुरुष के बाह्य सौन्दर्य में उसके शारीरिक अंगों उपांगों–मुख, कपोल, नेत्र, केश, कटि, कर आदि में सौन्दर्य का बोध होता है और वह अपनीसौन्दर्य दृष्टि द्वारा इन अंगों की शोभा को पाठकों केसमक्ष प्रस्तुत करता है। अंगों–उपांगों के सौन्दर्य के अतिरिक्त मानव द्वारा धारण किये गये वस्त्रों और आभूषणों के द्वारा आकर्षित होने पर अथवा मानव की भाव भंमिमाओं से आकृष्ट होकर उसके सौन्दर्य को साहित्यकार अपनी लेखनी से दर्शाता है।

बाह्य सौन्दर्य में मानव की बाहरी आकृति वेशभूषा को ही चित्रित किया जाता है। बाह्य आकृति के गुण मात्र नेत्रों को ही संतप्त करते हैं परंतु व्यक्ति के गुणों के द्वारा हृदय आनन्दित होता है। हृदय के आनन्दमय होनेके कारण सारा जगत् सौन्दर्यमयी दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि धैर्य, दृढ़ता, वीरत्व, पराक्रम,

सत्यनिष्ठा आदि गुणों का सौन्दर्य व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट करता है। उक्त गुणों की मंगलकारी वृत्तियों के साथ लज्जा सहानुभूति, करुणा, प्रेम आदि वृत्तियाँ इस तरह मिल जाती है कि कभी–कभी व्यक्ति सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य अधिक सुखद प्रतीत होता है। इन वृत्तियों के आनन्द में साहित्यकार इतना निमग्न हो जाता है कि वह उसका अंकन किये बिना नहीं रहता है।

बाह्य सौन्दर्य का प्रभाव अल्प समय को अपना प्रभाव डालता है। नख–शिख, वर्णन, अंगों–उपांगों का वर्णन, मांसलता का उत्तेजक चित्रण मन मस्तिष्क को एकाएक तो उल्लासित कर देता है, उनमें एकाएक आनन्द का संचार हो जाता है परन्तु यह चिरस्थायी नहीं होता है। आंतरिक सौन्दर्य के परिचायक गुणों से व्यक्ति जब साक्षात्कार करता है तो मानवीय सौन्दर्य उसके नेत्रों के रास्ते हृदय पर अंकित हो जाता है। व्यक्ति का आंतरिक सौन्दर्य चिरकाल तक स्थायी रहता है और हृदय को, तन–मन को आनन्दित करता है। आनन्दानुभूति कराना सौन्दर्य का उद्देश्य होता है और इसमें बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आंतरिक सौन्दर्य ज्यादा सफल सिद्ध हुआ है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सौन्दर्य का सम्बन्ध हमारी इन्द्रिय ग्रहण शक्ति, रुचि, देशकाल, आत्म–संस्कार और वस्तुनिष्ठ गुणों आदि से होता है। सौन्दर्यानुभूति जितनी तीव्रता से एक सहृदय व्यक्ति में देखने को मिलती है उतनी तीव्रता से किसी वीतरागी हृदय वाले मनुष्य में देखने को नहीं मिलती है। सौन्दर्यानुभूति सभी केलिए अलग–अलग ही होती है क्योंकि सौन्दर्य देशकाल, वातावरण, परिस्थितियों पर भी निर्भर करता है। यही कारण है कि चन्द्रमा किसी को सुखद प्रतीत होता है तो किसी को उससे ताप महसूस होता है। सौन्दर्य का

साक्षात्कार मानव हृदय की संकीर्णता आदि को त्याग कर व्यापक और निरपेक्ष रूप में किया जा सकता है। हृदय की सच्ची अनुभूति के कारण सौन्दर्य भी सर्वत्र दिखलाई पड़ता है। अरुचिकर व कुरुप वस्तुएँ भी इसी कारण सर्वथा असुन्दर प्रतीत नहीं होती है। सौन्दर्य की सच्ची और सात्विक अनुभूति के कारण ही मजनू को श्यामांगी लैला में भी सौन्दर्यानुभूति प्राप्त होती थी।

साहित्य अपनी उपादेयता के पथ से सत्य और सौन्दर्य दोनों को मदद करता है। यद्यपि भारतीय साहित्य में सौन्दर्य का चित्रण पाश्चात्य सौन्दर्य चित्रण की अपेक्षा कम हुआ है फिर भी इस दिशा में संतोषजनक कार्य हुआ है। साहित्य में सौन्दर्य के आंतरिक एवं बाह्य रूपों पर दृष्टि डाली गई है। हमारे साहित्य में वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य की अपेक्षा व्यक्तिनिष्ठ सौन्दर्य चित्रण अधिक हुआ है। वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य आनन्द का व्यक्त रूप होता है जबकि व्यक्तिनिष्ठ सौन्दर्य में हृदय के मनोभावों को स्थान मिलता है। मानव हृदय में स्थित पवित्र अनुभूतियों के कारण सौन्दर्य को सत्यं, शिवं, सुंदरं का स्वरूप माना जाता है। यह सौन्दर्य का आंतरिक एवं पावन रूप है। अतः कहा जा सकता है कि सौन्दर्य का सच्चा स्वरूप वही है जिसमें वस्तुगत और व्यक्तिनिष्ठ सौन्दर्य के रूप और गुणों का मणिकांचन योग हो। कलाकार इस मणिकांचन सौन्दर्य पर अपनी प्रतिभा का आलोक डालकर उसे सहज सुलभ और आकर्षक बना देता है।

संदर्भ सूची

१. वाचस्पत्य कोश, पृ0 5, 314

2. शब्दकल्पद्रुम, पंचम खण्ड, पृ0 373 (1961)

3. जयशंकर प्रसादःवस्तु और कला, रामेश्वरदयाल खण्डेलवाल, पृ0 263

4. वही, पृ0 263

5. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका, नगेन्द्र, पृ0 32

6. कामायनी सौन्दर्य, फतेह सिंह, पृ0 36

7. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन, वीणा माथुर, पृ0 02

8. सौन्दर्य बोध एवं ललित कलाएँ, डॉ0 सरोज भार्गव, पृ0 10

9. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन, वीणा माथुर, पृ0 02–03

10. सौन्दर्य बोध एवं ललित कलाएँ, डॉ0 सरोज भार्गव, पृ0 19

11. साहित्य और सौन्दर्य बोध, डॉ0 रामशंकर द्विवेदी, पृ0 121

12. कालिदास की लालित्य योजना, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 89

13. साहित्य और सौन्दर्य बोध, डॉ0 रामशंकर द्विवेदी, पृ0 123

14. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन, वीणा माथुर, पृ0 13

15. सौन्दर्य बोध एवं ललित कलाएँ, डॉ0 सरोज भार्गव, पृ0 22

16. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन, वीणा माथुर, पृ0 13

17. आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, रामेश्वरदयाल खण्डेलवाल, पृ0 17

18. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन, वीणा माथुर, पृ0 20

19. वही, पृ0 11

20. सौन्दर्य बोध एवं ललित कलाएँ, डॉ0 सरोज भार्गव, पृ0 21

21. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन, वीणा माथुर, पृ0 17

22. वही, पृ0 25

23. सौन्दर्यशास्त्र, हरद्वारीलाल षर्मा, पृ0 12

24. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन, वीणा माथुर, पृ0 26

25. आँसू, जयशंकर प्रसाद, पृ0 26

26. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन, वीणा माथुर, पृ0 32

27. वही, पृ0 39

28. वही, पृ0 41

29. चिन्तामणि–भाग–1, रामचन्द्र षुक्ल, पृ0 167

30. आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, रामेश्वरदयाल खण्डेलवाल, पृ0 101

31. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन, वीणा माथुर, पृ0 25

32. गोदान, प्रेमचन्द, पृ0 161

33. ग्राम्या, सुमित्रानन्दन पन्त, पृ0 82

34. प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन, वीणा माथुर, पृ0 43

35. पल्लव, सुमित्रानन्दन पन्त, पृ0 81

36. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, पृ0 106

द्वितीय

अध्याय

आधुनिक काव्य में विवेच्य कृतियों का स्थान

(क) कृतित्व का संक्षिप्त परिचय

(ख) कृतित्व का प्रेरण एवं प्रयोजन

(ग) आधुनिक काव्य मं सौन्दर्य का चित्रण

(घ) इंगित कृतित्व में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति : विविध रूप

द्वितीय अध्याय

आधुनिक काव्य में विवेच्य कृतियों का स्थान

(क) कृतित्व का संक्षिप्त परिचय

(१) प्रिय प्रवास

प्रिय प्रवास ब्रजांगनाओं की करुण गाथा से सम्बन्धित महाकाव्य है, अतः कवि ने महाकाव्य का प्रारम्भ भी आशा से न करके निराशा से किया है। सूर्य का अस्ताचलगामी होना तथा कमलिनी के कुल को छोड़कर जाने का संकेत करना करुणा की इसी दिशा की ओर अभिप्रेरित करता है। संध्या के समय पक्षी अपने अपने घर को जा रहे है।

प्रातःकाल गोप तथा कृष्ण कहीं अच्छे से स्थान पर एकत्र होकर गौओं की इधर–उधर चरने के लिए छोड़ देते थे। सन्ध्या समय तक कन्हैया ग्वाल–वालों के संग लीला करते रहते और उधर गौएं चरती हुई काफी दूर निकल जाती, उस समय प्रत्येक गऊ को घेरकर लाना ग्वालबालों के लए अत्यन्त दुष्कर कार्य था। इसका निदान कृष्ण जी ने निकाल लिया वे घर लौटने का समय जानकर मुरली में स्वर फूँकते जिसे सुनकर गौए उसी दिशा में आकर्षित होकर खिंच आती, सारे ग्वाल बाल गौओं सहित अपनी–अपनी मण्डली बनाकर श्रीकृष्ण को साथ लेकर अत्यन्त सुन्दर गोकुल गाँव की ओर चल पड़ते। एक साथ ग्वालबाल तथा धेनु समूह के चलने से आकाश में धूल छा जाती जिससे उनके आने का अनुमान गोकुलवासी लगा लेते

है। उस रेले--मेले में नाना प्रकार के शब्द गुंजायमान हो रहे है। ग्वालबाल विषाण तल श्रृंग बजा रहे थे। गौओं तथा बछड़ों के गले में बंधी धंटिया मधुर शब्द का आयोजन कर रही थी। उनके रभाने की आवाज अलग से ली थी। पक्षी भी अपना कलरव गान करते हुए अपनी अपनी दिशाओं में उड़ रहे थे। गोकुल गाँव के सभी समाज के लोग ब्रज--विभूषण श्रीकृष्ण की अनुपस्थिति में सारे दिन व्याकुल रहे अब सन्ध्याकाल आते ही श्रीकृष्ण का आगमन काल जानकर उनके हृदय में कृष्ण के दर्शन की जिज्ञासा बढ़ जाती। गोकुल गाँव आते ही श्रीकृष्ण की मुरली की ध्वनि सुनकर युवतियाँ, बच्चे तथा प्रौढ़ अपने नेत्रों का वियोग रूपी दुख दूर करने के लिए परवश से होकर अपने घर से निकल पड़ते।

ब्रजवासियों के लिए श्री कृष्ण के दर्शन मंगल एवं उनके उत्तरत हृदय को शीतलता प्रदान करने वाले है। श्रीकृष्णजी का अंग प्रत्यंग अत्यन्त श्रेष्ठ, दर्पण के समान स्ताबध तथा मन को भाने वाला था। उनके अंग समूहों में जो सुकुमारता थी वह सार्वकालिक थी। उनकी कमर में पीताम्बर था शरीर पर सुन्दर वस्त्र तथा गले में वनमाला शोभित थीं कन्धे पर सुन्दर दुपट्टा अलंकृत हो रहा था। कानों में कुण्डल, मुकुट में मोर का पंख, मस्तक पर केशर का तिलक उनकी शक्तिशाली घुटनों तक लम्बी भुजाएं थी। उनका शरीर किशोरावस्था के सौन्दर्य से सुशोभित था और मुख पूर्ण खिले हुए कमल के सामन था हाथ मे अमृत की वर्षा करने वाली मुरली थी। गोकुल के नागरिक श्रीकृष्ण जी के सम्मुख जाकर खड़े होकर उनका मुख इस प्रकार जोहने लगे जैसे प्यासा चातक स्वाति नक्षत्र की बूँद के लिए बादल की उमड़ती हुई घटा को देखता है। ब्रज की गोपियाँ निर्निमेष दृष्टि से श्रीकृष्ण का सौन्दर्यपान करतीं। वे इतना ध्यानावस्थित हो गई है कि उनका शरीर का रोम मात्र

भी नही हिल रहा है। वे श्रीकृष्ण के मुख की छवि में डूबी हुई ऐसी लग रही है जैसे पत्थर की मूर्तियाँ हो। श्रीकृष्ण को सब अपना मानते है बच्चे मारे खुशी के उछल रहे है वृक्षों को तो जैसे नेत्रों का फल मिल गया हो।

ब्रज की बालिकाएँ कृष्ण के सौन्दर्यागिरि को देखकर खूब प्रसन्न होती हैं। तरुणियाँ उनके अमिट सौन्दर्य को देखकर हार मानती है उन्हें अपना सौन्दर्य कृष्ण के सामने बिलकुल फीका लगता है और प्रौढ़ा स्त्रियाँ अनेक बार बलिहारी हो जाती थी। श्रीकृष्ण जी के बिलकुल पास बलराम जी सुशोभित हो रहे थे और आस–पास का समूह खड़ा हुआ था, चारो ओर नाना रूप रंगों वाली गरिमामयी गौए खड़ी थी। श्रीकृष्ण की श्रेष्ठ मुरली बजने से विभिन्न दिशाओं में इस संगीत को सुनने वाले आनन्द विभोर हो रहे है। इस अवसर पर किसी युवती की सुन्दर तगड़ी बज उठता तब वह मन को बहुत अच्छा लगता था।

स्त्रियाँ घर की सब लडकियों एवं पुरुष बच्चों को लेकर मधुर कंठ से अर्थात् सरस भाव से ब्रज के गौरव श्रीकृष्ण का यशोगाथा का गान करते है। मृदु और मन्द रूप में ढोलक बजा रहे है बीच–बीच में खड़ताल की ध्वनि सुनाई पड़ जाती थी। सरस वादन से अमित मधु की वर्षा हो रही है। इस समय गोकुल के हर घर से संगीत की मधुर स्वर लहरी निकल रही है। एक मनुष्य पहले नगाड़ा को बहुत जोर से बजाता है और फिर बहुत ऊँची आवाज में कृष्ण के लाने को कहता है महाराज कंस ने धनुष यज्ञ देखने के लिए श्रीकृष्ण के साथ महाराज नन्द को आदर के साथ निमन्त्रित किया है। यह निमंत्रण लेकर आज ही सुफलक के बेटे अकूर जी आए है, और कल प्रातः काल होते ही मथुरा कुल जाने का निश्चय हो चुका है। यह हृदयविदारक घोषणा क्षण भर में सारे गोकुल गाँव में फैल गई। कमल के समान नेत्रों

वाले श्रीकृष्ण के वियोग के लिए यह सूचना अमंलगकारी घटना सिद्ध हुई उस अत्याचारी राजा की कुटिलताओं का स्मरण करके वे सब काँप उठे और उनके चित्त की व्यथा और भी वेगवती हो उठी। गोकुल गाँव की जिन गृहलक्ष्मियों का मधुर स्वर पहले श्रीकृष्ण का गुणगान कर रहा था वह अब अत्यन्त दारुण एवं विषादपूर्ण बन गया उनके हृदय की मधुर लालसाएँ नाना तर्क–विर्तक से युक्त हो गयी। गाँव में सब लोग यही कह रहे है कि श्रीकृष्ण कल प्रातःकाल ही मथुरा चले जायेगे। यशोदा की बड़े परिश्रम और कोशिशों के बाद इन्द्र की पूजा के फलस्वरूप इस वृद्धावस्था में बेटे का मुख दिखायी दिया है। श्रीकृष्ण के जन्म लेने के दिन से ही ब्रज में अनेक उपद्रव हुए है। महापाप की प्रतिरूपा, अत्यधिक पापात्मा 'पूतना' ने विषाक्त दूध पिलाकर मारने का प्रयास किया। एक दिन अचानक धूलि से भरी गम्भीर गर्जना युक्त आँधी आई, पत्थरों की वर्षों हुई चारो तरफ गहन अन्धकार हो गया था। तब अचानक श्रीकृष्ण जी लोप हो गए, नन्द के घर अत्यन्त भयावह रोदन हो उठा, किन्तु कुछ समय के बाद वायु का यह बवण्डर अबता तृणार्वत नामक राक्षस की यह विडम्बना शान्त हो गई प्रकृति शान्त हो गई अपने सुन्दर घर के पास हसते हुए श्री श्रीकृष्ण भी दिखाई दे गये। इसके अलावा एक बार श्रीकृष्ण गाड़ी के गिर पड़े थे, एक बार अर्जुन जैसा विशाल वृक्ष उनके पास ही गिर पड़ा, इसी प्रकार एक बार तो एक बड़े विकराल बगुले ने श्रीकृष्ण को अपनी ब्रज के समान कठोर चोच से पकड़ लिया था। अत्यधिक शक्तिशाली दुर्जेय बछड़े, अघासुर, अघु नामक सर्प, भयंकर घोड़े, घोटकासुर ने भी श्रीकृष्ण को मारने का प्रयास किया था किन्तु दुष्ट कंस ने इस बार भी बड़ा भारी षडयत्र रचा है जो कुल नन्दबाबा के साथ यज्ञ में दोनों बच्चों को निमंत्रित किया है। भगवान विष्णु से विनती करते हुए ब्रजवासी कहते है। यह भयाकुल प्राणी

समूह के श्रीकृष्ण ही अवलम्बन है ये ही सूर्य के प्रकाश के समान हमें अज्ञान से ज्ञान की दिशा में प्रशस्त करने वाले है इस कारण यदि कुछ भी अनहोनी हो गई तो ब्रज की धरती अन्धकार से आच्छादित हो जाएगी।

तृतीय सर्ग में पूर्व के ग्यारह छन्दों में महाकवि हरिऔध ने प्रकृति की जिस निपट नीरवता का संकेत किया वह वस्तुतः पृष्ठभूमि का ही द्योतक है शान्ति के बाद ही अशान्ति का स्वाभाविक ज्ञान होता हैं जिसने कभी सुख देखा ही न हो उसके लिए दुख भी सुख होता है इसलिए कवि ने मनोविज्ञान का आश्रय लेकर पहले रात्रि को अत्यन्त मौन बताया और उसमें जगतीतल के सारे प्राणी समूह को शान्ति से सोता हुआ दिखाया और उसके बाद ब्रजभूमि के कोलाहल का निदर्शन किया। यह काव्यत्व की स्वाभाविक प्रक्रिया है। बाबानन्द ने यह ढिंढोरा पिटवाया कि कल प्रातःकाल ही महाराजा कंस के निमन्त्रण पर हम सभी मथुरापुरी प्रस्थान करेंगे। गोकुल के श्रेष्ठ गोप राजा के लिये रात ही रात में अच्छे से अच्छा तैयार कर ले। अत्यन्त शंकाकुल एवं भयभीय ब्रजवासियों के चित्त में कभी–कभी अन्धकार से आवृत्त शरीर को धारण किए हुए वृक्ष समूह ऐसे लग रहे थे जेसे भयंकर दानव हो ये राजा कंस ने खड़े किये हो शमशान घाट में पड़ी मुर्दे की खोपड़ी अपने भयंकर दांत दिखाकर कलेजे को हिला देने वाला अट्टाहस कर रही थी। सुख–दुख, राग–द्वेष, लोभ–मोह, चिन्ता–व्याधि आदि भाव प्रज्ञा से उत्पन्न होतेहै निर्णयात्मक बुद्धि से काम लेते है। शिशु में निर्णयात्मक बुद्धि नहीं होती इसलिए वह भूखा होने के अतिरिक्त सदैव प्रसन्न रहता है। यदि कृष्ण को प्रज्ञावान भी माना जाय (क्योंकि उन्होंने अतीत जीवन में बड़े–बड़े महनीय कार्य किए) तो भी उनका समुद्र होना स्वाभाविक है क्योंकि उदारमना लोग सुख–दुख में धैर्य नहीं खोते बल्कि सदैव स्मित

भाव से रहते है। श्रीकृष्ण के विस्तर के पास बैठी हुई माता यशोदा की आंखों में असंयत भाव से अश्रु धारा प्रवाहित हो रही थी। इस चिन्ता से कि कन्हैया कभी जाग न जाय वह बेचारी सिसकियाँ भी नहीं ले पाती इस कारण दुख की प्रचुर प्रबलता के कारण दिल के सैकड़ो टुकडे हो रहे थे। इस एकान्त कक्ष में दीपक के प्रकाश के अतिरिक्त यशोदा माता को ढाढस देने वाला अन्य कोई नहीं था इसलिए वे और भी अधिक पीड़ित हो रही थी। दुखी प्राणी और भी अधिक दुखी जो जाता है यदि उसको कोई दिलासा देने वाला न मिले। यशोदा भी इस समय अकेली थी इस कारण उसकी वेदना और भी अधिक बढ़ गई। यशोदा, माता अपने कुल देवता इन्द्र से प्रार्थना करती है कि हे प्रभु जिस दिन मेरे स्वामी (ब्रजेश) मथुरा के प्राणियों को प्रसन्न करके और मेरे दोनों बेटो को विध्नबाधाओं से बचाकर घर वापस आ जायेगे उसी दिन में शास्त्रों में वर्णित रीति, परमपवित्र, विशाल एवं स्वर्गिक आयोजन तथा विधि विधान से युक्त आपके चरण कमलों की पूजा करूँगी माता यशोदा देवी पार्वती के समक्ष विनय करती हैं कि मेरा श्रीकृष्ण बहुत सरल और भोला है अत्यन्त डरावने हिंसक और जंगली पशुओं के बीच मेरा छोटा सा मृगछौना कैसे की जा सकता है इसी प्रकार नन्द की रानी यशोदा प्रार्थना किया करती थी, रोती थी और वात्सल्य में विभोर हो जाती थी। उनके नेत्रो से जल की धारा सदैव बहती रहती थी अतः वह अत्यधिक व्यथित होकर अपने सोते हुए श्रीकृष्ण का वस्त्र हटाकर बार–बार अपने पुत्र का मुख कमल देखती थी। यदि यह रात्रि युग के समान लंबी हो जाती तो कैसा अच्छा होता और यह कभी भी समाप्त न हो पाती क्योंकि उस भयंकर रात्रि का एक क्षण का व्यतीत होना यशोदा के धैर्य के लिए अत्यधिक भयंकर था क्योंकि दूसरे दिन श्रीकृष्ण चले जाने वाले थे जैसे जैसे रात्रि समाप्त होती जा रही थी, वैसे–वैसे

ही यशोदा का धैर्य घटता जा रहा था।

गोकुल गाँव के समीप ही बहुत से सुन्दर ग्राम बसे हुए थे। उन्हीं में से एक परम सुन्दर गाँव में वृषभानु नरेश नारायण के समान निवास करते थे। वे शक्ति और समृद्धि में नारायण के समान भाग्यशाली और अनूप थे। राजा बृषभानु सम्मानित गोपों में सर्वश्रेष्ठ थे तथा नृप नन्दं से वे बहुत अधिक आदर प्राप्त करते थे। बृषभानु नरेश के धन, मान तथा गौरव के कारण ब्रज, प्रदेश सम्पूर्ण संसार में अत्यंत प्रसिद्ध था। सम्पूर्ण संसार में प्रसिद्ध महाराज बृषभानु नरेश की एक अत्यन्त रूपवती तथा गुणशीला कन्या थी। स्त्रियों के कुल में श्रेष्ठ उस बाला का नाम राधा था, उस कन्या की कीर्ति रूपी सुगन्धि से सम्पूर्ण ब्रज प्रदेश सुगन्धित रहा करता था। उसकी कीर्ति सम्पूर्ण ब्रज प्रदेश में व्याप्त थी। राधा सौन्दयरूपी उपवन की एक ऐसी कली थी जो कि विकसित होने ही वाली थी। राधा पूर्णरूप से युवती नहीं हुई थी अपितु वह यौवन और किशोरावस्था के संगम पर खड़ी हो रही थी। उसका मुख पूर्ण धनु के समान था, उसके नयन हिरन के नेत्रों के समान विशाल तथा चंचल थे राधा के नेत्र पूर्ण विकसित कमल के समान मनोहर थे शरीर की शोभा स्वर्ण की कांति के समान थी देखने वाल मनुष्य उसको अपलक देखते ही रह जाते थे। उसकी मुस्कराहट भी अत्यन्त मधुर और अत्यन्त प्रिय थी। वह सदैव हर्ष विभोर रहती थी वह प्रेम की क्रियाओं में कटाक्ष–'पात में भी पूर्ण निपुण थी और उनकी भू–भंगिमा भी अत्यन्त कुशलता पूर्वक चलती थी वह आनन्द पूर्वक विविध बाजे बजाया करती थी और विविध प्रकार के आभूषणों से सदैव सुसज्जित रहा करती थी उनका मुख मण्डल अधिक लावण्य युक्त था तथा वह सदैव आनन्द में डूबी रहती थी। राधा के अत्यधिक कोमल चरण लाल कमल के समान सौन्दर्यवान थे जब वे भूतल पर चलती

थी तब उनके चरणों की लालिमा पृथ्वीतल को भी सुशोभित बना दिया करती थी। उसके ओंठ इतने लाल थे कि उनके आगे बिम्बाफल तथा विद्रुम भी मलिन पड़ जाया करते थे। राधा सदैव रोगियों और वृद्धों के उपकारों में लीन रहती थी तथा सत्यशास्त्रों का चिन्तन करती थी। उसका हृदय बड़ा पवित्र था तथा वह सदैव प्रसन्न रहती थी अपने इन्हीं गुणों के कारणा वह स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ थी।

वृषभानु की यह अनुपम परम लावण्यमयी सुन्दर कन्या श्रीकृष्ण से प्रेम करती थी। परम पवित्रा सुन्दर बालिका ने अपना हृदय श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिया था। बृज की भूमि के नरेश नन्द तथा राजा बृषभानु में अत्यन्त प्रेम था। जब श्रीकृष्ण बिलकुल छोटे थे तथा माता की परम पवित्र गोदी में ही खेला करते थे उसी समय से बृषभानु राजा के घर उनको अत्यधिक आदर दिया जाता था श्रीकृष्ण और राधा दोनों ही अत्यंत दिव्य थे। जिस प्रकार प्रकृति कृष्ण और राधा की आयु को अलक्षित रूप से बढ़ा रही थी वैसे-वैसे ही उनका प्रेम भी बढ़ रहा था। राधा की हृदय रूपी भूमि में कृष्ण के प्रेम की लता अत्यधिक अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर पनप रही थी और पनपते हुए एक ऐसी स्थिति आ पहुँची थी कि वही प्रेम की लता अत्यधिक शक्तिशाली हो गई थी। इसलिए राधा सोते–जागते प्रत्येक समय कृष्ण की शोभा से मस्त बनी रहती थी। प्रेम के हृदय में उदय हो जाने पर प्रत्येक वस्तु अत्यधिक कोमल बन जाती है। प्रत्येक व्यक्ति के विचारों पर एक प्रकार का लेप चढ जाता है। जिससे कि वह प्रेम के कारण अत्यधिक सहृदय प्रतीत होता है। राधा के हृदय की भी यही दशा थी। अब कृष्ण गमन की सूचना ने राधा के हृदय पर महान चट्टान जैसा प्रहार किया। ईश्वर के संसार की रचना में प्रसन्नता और अप्रसन्नता साथ–साथ चलती हैं इसी कारण संसार में सन्तुलन बना रहता है। यदि केवल एक ही वस्तु

अथवा भावना का प्राधान्य बना रहता तब तो संसार में सन्तुलन बिगड़ जाता और सृष्टि नहीं चलती। संसार में अनेक सुन्दर वस्तुएँ होती है परन्तु उनका नाशक भी उसकी छाया में पनपता है और अवसर पाते ही उस सौन्दर्य का नाश कर देता है। कमल के दल अत्यन्त कोमल होते है मोती सा स्वच्छ जल भी उसके दल पर ठहर नहीं पाता है परन्तु वे दल भी हिमपात से बच नहीं पाते और नष्ट हो जाते है। चन्द्रमा भी परम सुन्दर तथा शीतल होता है परन्तु उसे भी दुष्ट राहु ग्रस लेता है और उसे बहुत दुखी करता है। राधा परम सुन्दर पुष्प के समान एवं खिली हुई कली थी परन्तु इस दारुण समाचार को सुनते ही वह ख़िली कली एक साथ मुरझा गई। वह रोते–रोते विक्षिप्त जैसी हो गई। उसकी सखी ललिता निकट ही बैठी उसे धैर्य ध ारण को कहती है। राधा पुनः कृष्ण का स्मरण करके कह रही कि यदि हमारे परम प्यार सचमुच ही कल मथुरा जा रहे तब उनके दर्शन प्राप्त किये बिना हमारे प्राण कैसे रह सकेंगे। राधा कह रही है कि मैं तो मनुष्य को दुख देना उन्हें सताना बहुत बुरा समझती हूँ और आज तक मैंने किसी का जी नहीं दुखाया है। दूसरों के दुख को देखकर मैं कभी प्रसन्न नहीं होती मैंने कभी भी किसी से कठिन बात नहीं की और न ही किसी को पीड़ित किया है। फिर आज मुझको यह दुख क्यों सहन करना पड़ रहा है। प्रत्येक प्रेयसी यही चाहती है कि वह अपने प्रेमी को अतिशीघ्र अपने पति रूप में देखे राधा की भी मनोदशा का ऐसा चित्रण किया गया है। वह भी श्रीकृष्ण का वरण करना चाहती थी। राधा के दुख को शान्त करने के लिए ललिता अत्यन्त प्रेम से उसे विविध प्रकार की बाते सुनाया करती है। वह धीरे–धीरे राधा के आसूँ पोछ रही है वह कभी समझाती है कि हे प्यारी तू इस प्रकार इतनी व्याकुल मत हो और कभी स्वयं राधा के दुख से दुखी होकर व्याकुल हो जाती है।

पंचम सर्ग में प्रारम्भ में कवि ने वर्णन करते हुए लिखा है। आज प्रातःकाल की शोभा ब्रजवासियों के लिए मधुर नहीं थी चूँकि श्रीकृष्ण जाने वाले थे केवल मनुष्य अथवा अत्यधिक रोगयुक्त मनुष्य, नववधुएँ जो बाहर नही आ सकती थी। वही केवल ब्रज के घरों में रुके रहे, अन्यथा सभी मनुष्य नन्द के घर के आगे एकत्र ही गये थे, इनको छोड़कर और कोई ब्रज के अकेले सूने पड़े हुए घरों में न था। सभी मनुष्य अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे। चूकि प्रिय श्रीकृष्ण के विदा होते समय रोना अत्यधिक अशुभ जान पड़ रहा था अतः कोई भी मनुष्य अपने नेत्रों से आँसू नहीं ढाल सकता था उन मनुष्यों के नेत्र अश्रुओं से भरे हुए थे एक क्षण भी बिना रोये व्यतीत हो रहा था। उनमें से तब कोई व्यक्ति रो उठा क्योंकि उसकी आँखों से बहते हुए आँसू रूक न सके कोई व्यक्ति दुख की आहे भरता भरता पागल सा हो उठा और किसी व्यक्ति ने यह कहा कि हे प्रिय श्रीकृष्ण सम्पूर्ण ब्रजवासियों के जीवनधारा तुम हम लोगों को छोड़कर कहा जा रहे हो? एक वृद्ध अत्यधिक दुख कतार में अक्रूर के समीप जाकर अत्यन्त दीन वचन में बोला कि हे अक्रूर जी ऐसा उपाय बताये कि मेरे परम प्यारे श्रीकृष्ण मुझसे पृथक न हो। विरह की व्यथा कितनी दारुण दुखदायी होती है इसे तो वही जानते है जिन्होंने विरह व्यथा का अनुभव किया हो। वह अक्रूर से कहने लगा कि हे अक्रूर जी हमारा श्रीकृष्ण सम्पूर्ण ब्रज का सितारा है, वह दीन मनुष्यों का अत्यन्त प्रिय धन है तथा नेत्रहीन मनुष्यों का नेत्र है। गाँव की किशोरियों का वह मित्र है तथा अपने साथियों का वह भाई है, हम सबका प्यारा है, हे अक्रूर जी आप हमारे इतने प्यारे रत्न को ले जाना चाहते हो। इसके उपरान्त अत्यधिक श्रमपूर्वक चलती हुई एक वृद्धा प्यारे श्रीकृष्ण के समीप आई कहा कि हे पुत्र तू अपनी ब्रजभूमि भूमि को छोड़कर कही मत जा, यदि तुम्हारे न जाने से ब्रजभूमि का राजा कंस रुष्ट

हो जायेगा तो मैं इस ब्रज भूमि को सदैव के लिए त्याग दूँगी तथा ऊँचे–ऊँचे भवन त्यागकर जंगलों में रहना प्रारम्भ कर दूँगी। मैं स्वादिष्ट भोजन त्यागकर जंगल में उत्पन्न होने वाले कन्द मूल फल खाकर जीवन यापन कर दूँगी परन्तु हे मेरे लाल मैं किसी भी हालत में तुम्हें अपने से विलग नहीं होने दूँगी। तभी एक ग्वाला दौड़ता हुआ नन्द के सामने आया बोला हे नरेश आज़ तो गाये भी वन की ओर नहीं जा रही है, वे न तो आज घास खा रही है और न बच्चे को दूध पिला रही है। उनकी दशा पागलो की जैसी हो गयी है ग्वाला फूट–फूट कर रो रहा था। तभी नन्द की समस्त गाये पूछ उठाकर श्रीकृष्ण के समीप भागती आ पहुँची। उनकी अवस्था भी आज अपने श्रीकृष्ण को न पाकर अत्यधिक व्यथित हो रही थी। नन्द जी का तोता भी अत्यन्त दुखी दिखाई पड़ रहा था और अपने मीठे शब्दों को भुला न पा रहा था। श्रीकृष्ण तथा बलराम दोनों ने माता के चरणों की धूल लेकर मस्तिष्क पर चढ़ाया तथा ब्राह्मणों के निकट आकर उनकी चरण वन्दना की तथा अपने भाई सहित सब बड़ों को हाथ जोड़कर नमस्कार किया और जिस धैर्य देकर उस विशाल रथ में आकर बैठ गए। माता यशोदा नन्द से कहती है कि हे प्राण मात्र आप मार्ग में आने वाली अनेक कठिनाईयों को जानते ही है तथा मेरे परम दुलारे बालक कहीं भी इतनी दूर नहीं गए है। आप मार्ग में मेरे पुत्रों को मधुर–मधुर फल खिलाना तथा अनेक सुन्दर दृश्य दिखाना मेरे परम प्रिय बालकों को कोई किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे। एक क्षण के लिए भी मेरे प्यारे पुत्रों को आंखों से ओझल मत होने देना यदि मेरे पुत्रों के शीश पर किसी प्रकार की कोई आपदा आये तो पृथ्वी फट जाएगी और मैं उस पृथ्वी में अवश्य विलीन हो जाऊगी और मृत्यु को प्राप्त हो जाऊँगी। हे पति अपने इन परम दुलारे कुमारों की बैचेनी को दूर करने के लिए मैंने अनेक सर्दी की

राते जागकर बिताई है तथा कभी भी सर्दी का अनुभव नहीं किया मैं थर–थर काँपती रहती थी पर फिर भी पुत्र को अपनी गोदी में बिलकुल सुरक्षित रखती थी और उस पर भी यदि पुत्र सन्तुष्ट न होता था तो सारी रात खड़े खड़े तथा घूमते घूमते ही व्यतीत कर दिया करती थी, कई कई राते जागकर बिता दिया करती थी। यदि हमारे बालकों को कुछ भी दुख होगा तो मुझे अत्यन्त दारुण पीड़ा होगी। अपनी पत्नी की ऐसी परम दुखकारिणी बाते सुनकर नन्द को अपार दुख हुआ। उन्होंने तब अत्यन्त प्रिय वचन सुनाकर यशोदा को धैर्य धारण कराया फिर सारी जनता को विभिन्न प्रकार के धैर्य देकर समझाया इसके पश्चात वे अक्रूर जी के साथ रथ पर जा बैठे। मनुष्यों ने उनको जाते देख रथ को घेर लिया, व्यक्तियों ने रथ के चक्र, घोड़ो की रास पकड़ी तथा कई व्यक्ति तो इतने अधीर हुए कि रथ के आगे आकर लैट गये। सभी ब्रज के मनुष्यों को दुखावेग में इतना व्याकुल देखकर महाराज नन्द रथ से नीचे उतर आए और कहा कि हम तुम्हारे दोनों कुमारों को लेकर दो दिन में ही वापस आ जाऊगा तथा फिर तुम लोग अपने श्रीकृष्ण को यहाँ पाओंगे। राधा अपनी अवस्था पर विलप्व रही थी और कहती है कि आज अपनी दारुण विरह कथा किसको सुनाये। आज तो मुझे अपने मानव शरीर धारण करने पर घृणा हो रही है। यदि मैं आज मनुष्य न होकर अश्व होती अथवा रथ की ध्वजा होती तो आज में अवश्य श्रीकृष्ण के साथ चली जाती और फिर मुझे वियोग का इतना कष्ट नहीं होता। इसके उपरान्त अत्यन्त दुखी होती हुई तथा अपने हाथों से लोचनों में उमड़े आंसुओं को पोछती हुई मनुष्यों की विशाल भीड़ यशोदा को घर में भीतर प्रविष्ट होती देखकर अपने–अपने घरों को गई उन सबकी अवस्था अत्यन्त दुखी तथा व्याुकल थी।

षष्ट सर्ग में धीरे–धीरे दिन व्यतीत हो गया तथा फिर दूसरा दिन भी अया गया इसी प्रकार कितने दिन व्यतीत हो गए परन्तु मथुरा से कोई भी न आया किसी भी प्रकार की सूचना नहीं मिली तथा गोपाल श्रीकृष्ण स्वयं भी ना आये। जैसे–जैसे दिन व्यतीत हो रहे थे। ब्रजवासियों का दुख बढ़ता जा रहा था। खाते–पीते, उठते–बैठते चलते–फिरते, सोते हुए वनभूमि में आते जाते गौओं को चराते हुए ब्रज के सभी लोगों गोपी तथा गोपियों के हृदय में एक ही बात चुभती रहती थी कि उनके परम प्यारे श्रीकृष्ण क्यों नहीं आये। यदि किसी प्रदेश का कोई कौआ घर में आकर बैठ जाता था तो उस घर की नारी उससे अत्यन्त मृदुल और कोमल स्वर में मनुहार करती थी कि हे काग हमार कुंवर आते हो तो तू उठकर बैठ जा। यदि तू हमको उनके बारे में आने का आश्वासन देगा तो मैं तुम्हें खाने को भात तथा दूध दूँगी। माता यशोदा अपने पुत्र के मार्ग की थकावट को दूर करके के लिए नित्य ही विभिन्न प्रकार के मेवे, रसीले फल, मधुर मिठाई तथा दूध इत्यादि पकवान सजाकर रखा करती थी। जिससे वह आते ही उन्हें पान करके रास्ते की थकावट को दूर कर सके। जब सम्पूर्ण दिन समाप्त हो जाता तथा कुंवर नहीं आते तो सम्पूर्ण मिठाई छोटे–छोटे बच्चों में बंटवा देती थी यदि घर की दासियां दही मथने को बैठती तो यशोदा जी को मथने की ध्वनि तनिक भी अच्छी नहीं लगती थी क्योंकि इससे श्रीकृष्ण का वियोग और भी उत्तेजित हो जाता था तथा अत्यधिक दुखी होकर वे दासियों से कहा करती थी कि तुम सब दही मथना समाप्त कर दो अन्यथा सब मिलकर हमारे कानों को फोड़ डालोगी। इस प्रकार यशोदा को और कुछ कार्य बिलकुल भी अच्छा नहीं लगता था। राधा रो–रोकर, तड़प–तड़प कर चिन्ता में डूबी हुई अपना दिन व्यतीत करती थी उनकी आंखें सदैव आंसुओं से भीगी रहती थी तथा वे बहुत उदास दिखाई देती थी

वे श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए इस प्रकार व्याकुल रहती थी। जिस प्रकार कि चातकी मेघ के दर्शनों के लिए रहती है उनकी उत्सुकता अत्यधिक बढ़ी हुई रहती थी उनकी वेदना चरमोत्कर्ष पर थी। एक दिन राधा बहुत मलीनावस्था में अति खिन्न होकर अपने घर में अकेली बैठी थी। आंसू बार–बार अविराम बह रहे थे तथा उनके नेत्रो को सजल बना रहे थे। इसी समय प्रातःकालीन शीतल तथा सुगन्धित वायु ने वातायनों के द्वारा घर में प्रवेश किया उस वायु ने भीतर प्रवेश करके सम्पूर्ण घर को सुगन्धित बना दिया। वायु ने शीतलता के द्वारा राधा के सम्पूर्ण क्लेशों को दूर कर देना चाहा किन्तु राधा तो श्रीकृष्ण वियोग में अत्यन्त व्याकुल थी अतः वायु की यह प्यार भरी क्रियायें तनिक भी भली नहीं लगीं बल्कि वायु उनको वैरणी की भाँति दुखदायी प्रतीत हुई उसने दुखी होकर धीरे–धीरे वायु से कहा हे प्रातःकालीन वायु तू क्यों मुझे इस प्रकार सता रही हो? क्या तू भी समय की कठोरता से दूषित होकर मेरा परिहास करने आ पहुँची हो? क्या तुझे भी मेरी इतनी उद्विग्न अवस्था पर तनिक भी दया नही आती है? तुम्हें तो यमुना के किनारे पर घूमना चाहिए। तू वहाँ यमुना के किनारे पर धूमती हुई शीतल हो जाती है तथा तू मधुर फलो के गुच्छों का चुम्बन करके सुगन्धित हो जाती है। तू स्वयं तो यमुना के जल की बूँदों से शीतल और सुगन्धित हो रही है परन्तु मेरी शान्ति भंग करके मुझे ताप पहुँचा रही हो। हे वायु तू क्यों इतनी कठोर हो रही है? तथा हमारे दुख को क्यों बढ़ा रही हो? तू तो मेरी चिर परिचिता है तथा मेरी प्यारी भी है तू मेरी इन करुणार्द्र बातों को सुनकर कठोरता के परिधान को उतार फैक तथा कोमल स्वभाव वाली बन जा। तू इतना तो अवश्य जानती हे कि विनम्र व्यक्तियों को पीड़ा को खोकर बहुत पुण्य होता है अतः तू भी मेरी पीड़ा को समाप्त कर दे और कुछ पुण्योर्जन कर ले अतः तू मुझपर इतनी कृपा

करे कि मेरी आंसुओं से भी कथा को मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण को सुना दे।

कालिदास के मेघदूत के अनुसार यक्ष और यक्षिणी को एक वर्ष के लिए अगल कर दिया गया था तब यक्षिणी ने श्रावण में घिरते हुए मेघों से अपने विरह का वर्णन करते हुए प्रियतम के पास संदेश भेजा था ठीक इसी प्रकार राधा ने भी पवन को अपना दूत बनाकर श्रीकृष्ण के पास अपना संदेश भेज रही है।

वह पवन से कह रही है कि यदि तू मेरा सन्देश देने में सफल न हो सके तो मेरे रोने, बिलखने, आहें भरने इत्यादि को श्रीकृष्ण के आगे दिखा दे जिससे उन्हें मेरी स्मृति आ जायेगी। तू कृपाकर श्याम के समीप की कोई वस्तु ला दे। मैं उनके विरह में मृतक बनी जा रही हूँ अतः यदि तू इतना उपकार मुझपर कर देगी तो मेरे निकलते हुए प्राण अवश्य बच जायेगे। तेरा बड़ा पुण्य होगा। मार्ग में तू थकावट दूर करने वाले जल कणों का स्पर्श करना फूलों की सुरभि को भी ले लेना। धूल से रहित होकर तथा बड़ी शिष्टता और सौम्यता से आगे बढ़ना जिससे कि तेरे मार्ग में आने जाने वाले मनुष्यों को शान्ति प्राप्त हो सके। यदि तू अपने स्वभाव के अनुसार प्रचण्ड हो जायेगी तो पथिक भी बहुत दुखी होगा। हे वायु यदि मार्ग में तुझे कोई लज्जाशील स्त्री दिखाई दे तो उसके वस्त्रों को उड़ाने की चेष्टा न करना। यदि वह थोड़ी सी भी थकावट अनुभव कर रही हो तो उसे अपनी गोद में लेकर उसकी थकावट को दूर करने की कृपा करना उसके होठों की तथा कमल सम मुख की मलिनता को अपनी शीतलता से दूर कर देना यदि किसी स्थान पर बैठे भवरा तथा भंवरी किसी पुष्प का मधुर मकरन्द पान कर रहे हो तो तू वहाँ पहुँचकर अत्यन्त शिष्ट बन जाना और धीरे-धीरे गमन करना। तू इतना धीरे गमन करना जिससे कि वह पुष्प तनिक भी न हिल सके तथा उनकी क्रीड़ा में कोई बाधा उत्पन्न न हो। उनका

आनन्द भंग न हो जाए तथा उनकी क्रीड़ा में कैसी भी बाधा न आए। हे पवन कुंजों बगीचों जंगलो, यमुना के किनारों या घरो में रहती हुई स्त्रियों से भरी सुगन्धि से आकर्षित होकर कोई भवरा उन्हें तंग करता हो तो तू प्रेम के साथ ताड़ना देकर उस भवरे को उड़ा देना तथा किसी भी प्रकार से तू मथुरा की नारियों को कष्ट में मत होने देना। हे पवन तू भली प्रकार मेरे संदेश को सुन ले। तू कृष्ण के गृह में सीधे मत प्रवेश करना बल्कि पहले तो घर के परम मनोहर उद्यान में जाना तथा अपनी थोड़ी बहुत थकावट को दूर कर लेना तथा जल का स्पर्श करके शीतलता प्राप्त कर लेना और रास्ते की सभी धूल त्याग देना फिर फूलों के पराग को अपने आप में शोषित करके सुगन्धियुक्त बन जाना तथा बड़ी सरसता तथा कोमलता के साथ घर में प्रवेश करना। हे पवन विधाता ने तुझे स्वर तो नहीं दिया है वही अतः तू मेरी व्यथा मेरे प्यारे तक संदेश रूप में तो नहीं पहुँचा सकेगी परन्तु फिर भी तू अपने कर्मों को खूब सोच विचार कर करना अपनी सम्पूर्ण बुद्धि का उपभोग कर लेना और कोई ऐसा उपाय करना जिससे श्रीकृष्ण को मेरी स्मृति आ जाय। यदि मेघों जैसी शोभा वाले कृष्ण अपने कक्ष में सुशोभित हो तो ध्यान के साथ उस कमरे के सभी चित्रों को देख आना तथा आकर मुझको सूचनास देना। हे सखि यदि उन चित्रों में मुझे कोई विरह विदग्ध नारी का चित्र दीख पड़े तो तू तुरन्त उसके पास पहुँच जाना तथा चित्र को हिलाना आरम्भ कर देना। उसे हिलाने की क्रिया को इस प्रकार संचालित करना जिससे कि कृष्ण उसे हिलता देखकर आश्चर्यचकित हो जाए हो सकता है कि इस प्रकार ही कृष्ण को हमारी सुधि आ जाये तथा वह तुरन्त ब्रज की ओर चले आयेगे। हे सरित तू मेरे प्यारे श्रीकृष्ण के सामने धीरे–धीरे कोई कदम्ब का फूल ले जाना और मेरे प्रिय के चंचल नेत्रों के आगे डाल देना कि आपकी राधा भयंकर विरह में किस

प्रकार रोमांचित हो रही है तथा विरह व्यथा में विदग्ध होकर किस प्रकार अत्यन्त दुखपूर्वक जीवन की घड़िया काट रही हैं। मेरी परम प्यारी सखि तू भली प्रकार उपवन में भ्रमण करना और यदि वहाँ पर कोई पत्ता किसी नवीन वृक्ष में लगा हो तथा इतने पर भी पीला हो रहा हो तो तू उस पीले पत्ते को हमारे प्रियतम के नेत्रों के आगे लाकर रख देना। उनको भली प्रकार यह बताना कि आपकी प्रिया राधा भी अत्याधिक दुःखावेग में इसी प्रकार पीली पड़ती जा रही है। जिस प्रकार कि किसी नवेला का पति परदेश चला गया है और वह विरह में तड़प रही है। हे सरिता यदि तू हमारी अन्य बातों को पूर्ण न कर सके तो केवल इतना कर देना कि मेरी विनती को सुनकर चली जा तथा श्रीकृष्ण के चरणों का स्पर्श करके चली आ मैं तुझकों ही अपने हृदय से लगाकर परम शान्ति प्राप्त कर लूँगी। इस प्रकार राधा अत्यन्त दुखी भाव से सुध–बुध खोकर मन्द–मन्द बहते मृदु समीर से अथवा अन्य सखी आदि से अपनी विरह व्यथा की कहानी सुनाती थी।

सप्तम अध्याय में ब्रज में एक दिन ऐसा आया जो अत्यन्त दुखदायी और हृदय विदारक था। जिन दिनों ब्रजवासी कृष्णागमन की प्रतीक्षा करते हुए उनके मार्ग की ओर देख रहे थे कि लोागों ने नन्द तथा अन्य गोपी जनों दुख में लीन नीची आँख किये वापस आते देखा। जिस प्रकार कोई जन दुखी होता है अपनी क्रान्तिपूर्ण मणिको खोकर सर्प जितना दुखी होता है, अपने दोनों कुमारों को छोड कर गाँव आते समय नन्द को भी उससे अधिक दुख हो रहा था। जिस प्रकार भादों की घनी अन्धकारमयी अमावस्या की रात्रि मेघों के छा जाने पर बहुत ही कलिमामय हो जाती है उसी प्रकार पुत्रों वाले नन्द को अकेला ही घर आते देखकर ब्रजवासियों का दुख अत्यन्त ही भयावना तथा शूलदायी बन गया था। यशोदा ने जब यह सुना कि नन्द

जी अकेले ही आ रहे है तो वह पागलो की भाँति दौड़ती हुई द्वार पर आ गयी। उसी समय दुख में डूबे नन्द भी सामने आ गये दोनों के हृदय समान रूप से दुखी थे। जिस प्रिय श्रीकृष्ण को खोकर सम्पूर्ण नगर सूना हो गया है और घर घर में उदासी छायी हुई है जिसके चले जाने से धरती पर अन्धकार छा गया और वह दूर ही नहीं होता है वह अनुपम शोभा वाला मेरा प्रिय पुत्र श्रीकृष्ण कहाँ है? हमारा प्रिय तथा प्राणों से प्यारा पुत्र घर क्यों नहीं आया? क्या वह उस नगर की सौन्दर्य पूर्णा शोभा को देखकर उस पर मोहित हो गया है? अथवा क्या वह किसी दुष्ट के फन्दे में फस गया है? क्या वह राज्य के भोग में आसक्त होकर वहाँ रह गया है? हे प्रिय! अब तो मेरे प्राण गले तक आ चुके है मैं अब और अधिक जीवित नहीं रह सकती। मेरा प्राण प्यारा श्रीकृष्ण कहाँ है? यदि मुझे अपना जीवन आधार श्रीकृष्ण प्राप्त न हो सका तो मैं अपने इन सार रहित पापी प्राणों को कैसे धारण किये रह सकूगी? हे स्वामी तुम अपने साथ अपार धन तथा असंख्य रत्न लाये हो किन्तु यह तो बताओं कि मेरा प्रिय पुत्र श्रीकृष्ण कहाँ है? हे स्वामी मैं ये असंख्य रत्न लेकर क्या करूँगी, मुझे तो तुम मेरा पुत्र ला दो। मैं तो तुम से श्रेष्ठ धन की याचना करती हूँ जिससे वंश की लता फलती फूलती है जो सम्पूर्ण प्राणियों का मूल है और जिसे खोकर मुझे सम्पूर्ण संसार की सम्पत्ति भी तुच्छ प्रतीत होती है। राजा दशरथ का यश ही महान है जो कि अपने प्रिय पुत्र राम को बन जाते देखकर वह जीवित न रह सके। हमारा यह हृदय तो वज्र के समान कठोर बना हुआ है जो पुत्र के वियोग में पीड़ा को प्राप्त होकर टुकड़े--टुकड़े नहीं हो जाता। छोटी सी छोटी मछली भी हमारी अपेक्षा अधिक भाग्यशाली है क्योंकि वह जल से बिछुडने पर तुरन्त अपने प्राण त्याग देती है। इस धरा पर मैं अत्यन्त ही भाग्यहीन हूँ जो पुत्र के बिछुड़ जाने पर भी अभी तक जीवित

हूँ। इस प्रकार के करुणापूर्ण विलाप करती हुई तथा अविरल अश्रुधार बहाती हुई यशोदा चेतनाशून्य होने लगी। उनके समीप बैठे सभी जन उनकी इस प्रकार की दशा को देखकर भयभीत हो गये और उनको चेतना प्रदान कराने की युक्ति करने लगे। एक तो पहले ही नन्द भी श्रीकृष्ण के वियोग के कारण बहुत दुखी थे। अब जब उन्होंने अपनी पत्नी को भी यही दशा देखी तो वह और भी अधिक दुखी रूपी सागर में डूब गये अर्थात् किंकर्तव्यविमूढ हो गये। नन्द जी की प्रिय बातों को सुनकर यशोदा जी के शरीर को त्यागकर जाने वाले प्राण पुनः वापिस आ गये। यशोदा जी ने बड़े ही कष्ट के साथ अपनी आंखों को खोला और फिर उन्होंने कहा क्या वास्तव में श्रीकृष्ण दो ही दिन के अन्दर आ जायेगे। नन्द जी अपने हृदय के सम्पूर्ण दुख को छिपाते हुए बोले हाँ प्रिये! श्रीकृष्ण दो दिन के अन्दर ही घर आ जावेगा। इसी प्रकार अन्य भी अनेक बातें नन्द जी ने कहीं और बड़े ही धैर्य के साथ यशोदा के समझाया। जिस प्रकार सम्पूर्ण वर्षाकाल में अत्यन्त प्यासी चातकी को वर्षाकाल की समाप्ति पर स्वाति नक्षत्र में बरसे हुए जल की एक बूंद की प्राप्ति से कुछ थोड़ी सी तृप्ति होती है वैसे ही अपने पुत्रो का दो दिन में आना सुनकर बेहोश होती हुई यशोदा जी भी कुछ कुछ स्वस्थ्य हो गई इस प्रकार रोती हुई तथा क्लेश को प्राप्त होती हुई यशोदा जी अपने पति को लेकर अपने घर आई। सचमुच आशा एक अपूर्व एवं अनुपम वस्तु है जिसके सहारे मनुष्य एक लम्बे समय को पार कर देता है स्वर्गीया आशा धन्य है वह तो मरे हुए व्यक्ति को स्पर्श करते ही उसे भी जीवन प्रदान कर देती है।

आठवे सर्ग में नन्द मथुरा से लौटकर गोकुल वापस आये थे उनके आने पर उनके मुख तथा चाल हाल से ही ब्रजवासियों ने जान लिया था कि श्रीकृष्ण मथुरा से वापिस नहीं आये हैं। उन्हें बड़ा दुख हुआ क्योंकि वे उनके प्रवास के दिन

से ही उनके लौटने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने नन्द से अनेक प्रकार से श्रीकृष्ण के समाचार पूछे पर नन्द कोई उत्तर नहीं दे सके। वे इस प्रकार चुप बैठे रहे जैसे जुआरी अपना सब कुछ हार कर चुप बैठा रहता है वे अपना सर्वस्व हार ही तो मथुरा से लौटे थे। श्रीकृष्ण के वियोग में सभी ब्रजवासी नित्य रोते रहते थे और अत्यधिक कष्ट से दिन व्यतीत किया करते थे दुख बेग में वे विक्षिप्त से हो जाया करते थे। वे रो धोकर अत्यन्त मलीन रहकर अत्यधिक दुखी रहकर भी केवल एक आशा के सहारे जीवित थे कि शायद कभी श्रीकृष्ण के दर्शन हो जायेंगे।

नवम सर्ग में श्रीकृष्ण अपने ज्ञानवृद्ध प्रिय सखे उद्धव को अपनी ओर से विरही गोप गोपियों नन्द यशोदा तथा राधा को सान्त्वना देने के लिए भेजते है। आरम्भ में वे उद्धव को अपने दुख से तथा कार्य में व्यस्त रहने के कारण ब्रज न जा पाने की बात कहते है, फिर कहते है कि किसकी क्या किस प्रकार कहानी है। जब वे कहते कहते पूरी बात नहीं कह पाते तो उनसे वे यह कर विश्राम लेते है कि जैसे भी बने सबको समुझा बुझा कर सान्त्वना देना जिससे वे मेरे वियोग के कठिन कष्ट को भूल जाने का प्रयास करें। ऊधौ मथुरा से गमन करते हुए वृन्दावन की शोभा देखते है। उन्हें अनेक रमणीय दृश्य भी श्रीकृष्ण के वियोग में असुन्दर से प्रतीत होते है यमुना की शोभा वे देखते अवश्य है पर उसमें होने वाले सभी कार्य कलाप उन्हें श्रीकृष्ण वियोग में दुखी से ही लगते है विरह विधुरा प्रकृति भी श्याम के वियोग से अप्रभावित नहीं है। उद्धव गोकुल पहुँचते है उनके रथ को दूर से ही देखकर गोकुल के जन उन्हें घेर लेते है वे समझते है कि श्रीकृष्ण वापस लौट आये पर जब वे वहाँ आकर श्रीकृष्ण को नहीं देखते तो निराश हो जाते है श्रीकृष्ण कुशलता की तरह--तरह की बाते उद्धव से पूछते है श्रीकृंष्ण कुशल सम्बन्धी प्रश्नों को सुनकर

उद्धव हक्के बक्के से रह जाते है गोकुलवासी उद्धव की ओर से अत्यन्त चिन्तित है वे सोचते है कि ऐसा ही रथ लेकर एक बार अक्रूर जी आये थे वे दो अनूठे रत्नों श्रीकृष्ण तथा बलराम को यहाँ से ले गये। अब यह ब्रज में से कौन सा रत्न लूटने आये है? श्रीकृष्ण जी जब उद्धव को ब्रज भेज रहे थे तथा वहाँ की सभी अंगनाओं को विविधि प्रकार के संदेश दे रहे थे, वे कह रहे थे कि राजा वृषभानु की पुत्री राध ा ब्रज प्रदेश की सम्पूर्ण पृथ्वी की स्त्री जाति की तथा अपने वंश की शोभा है हाय वह वियोगाग्नि अथवा विरह के सागर डूबी हुई होगी हे मित्र यदि संकट हो सके तो तुम उसके लिये नाव बन जाना और वियोग समुद्र से उसे पार लगा देना उसकी रक्षा हो जायेगी तथा उसके दुख दूर हो जाने के कारण मुझे भी धैर्य मिल जायेगा। कवि ने उद्धव के द्वारा ब्रज की शोभा का सुन्दर प्रकृति चित्रण किया जिसमें भवन, फल, पेड़ो के माध्यम से जीवन की घटनाओं का उल्लेख किया है। जब उद्धव ने ब्रज में अथवा गोकुल गाँव में प्रवेश किया तो श्रीकृष्ण के विरह में दुखी मनुष्यों का समूह व्यग्र हो उठा उनको पुनः अपने श्रीकृष्ण याद आ गये।

दशम सर्ग में श्रीकृष्ण के मित्र उद्धव को देखने के लिए जो जनता राजा नन्द के दरवाजे पर एकत्रित हो गयी थी। शंका में डूबी वह जनता घर जा चुकी थी। अपने पति के समीप ही आंखों में आंसू भरे यशोदा बैठी थी। व्यग्रता से वे अत्यन्त दुखी थे उनका शरीर जर्जर हो रहा था, चिन्ता से वे जल रही थी। उनका दिल दुख में डूबा हुआ था अधर सूख चुके थे, अत्यन्त अधीर थी उनका मुख नीचे झुका हुआ था। वे बडी दीन और उदास थी तथा मोह डूबी थी। उस घर में कुछ दासियाँ भी थी जो अत्यधिक दुर्बल और दुखी थी। वे वृद्धावस्था से पराजित अपार चिन्ताओं में लीन व्याकुल तथा सुख रहित था वह उद्धव से पूछती कि मेरा पुत्र क्या

मेरी याद करता है? क्या उसे अपने वृद्ध पिता का ध्यान नहीं आता? मेरा पुत्र मक्खन का लालची है, वह मेरे समीप आकर विविध क्रीड़ाएँ किया करता था और धूम मचा देता था। मैं उन बातों को नहीं भुला पाती हूँ। हे उद्धव मैं प्रार्थना करती हूँ कि संसार का कोई भी वृक्ष पत्तों और फूल से रहित न हो चाहे कैसी भी नदी हो वह कभी भी जल से शून्य न हो और मोती खो देने वाली सीपी के समान कोई अभागा न हो रात्रि समाप्त होने पर आकाश श्वेत हो गया फिर भी यह विरह वेदना की कहानी समाप्त नहीं हुई। जब विद्वान उद्धव घर से चले गये तब वह दुखपूर्ण गाथा तो समाप्त हो गयी परन्तु वह सदैव के लिए उद्धव के हृदय रूपी भवन में चित्रित हो गई। उद्धव जो ज्ञान गठरी लेकर आये थे वह प्रमाद समाप्त हो गया।

एकादश सर्ग में उद्धव ने गोपों से संवाद किया तथा गोपों ने श्रीकृष्ण के अभाव में दुख का वर्णन किया। कवि ने जीवन के रहस्य को उद्घाटित किया जिसमें उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति वीरों के समान विपत्तियों से संघर्ष करने के लिए सन्नद्ध हो सकता है। उसे विजय–समृद्धि परम आनन्दपूर्वक प्राप्त होती है, जो व्यक्ति विपत्ति को देखकर भय से डर जाते है और अपने हाथ पाव शिथिल कर लेते है अर्थात् कर्म को त्याग देते है वे सब परम शीघ्र अपमानित होकर मृत्यु के मुख में चले जाते है। गोप उद्धव से कहते है कि अब हमारी जिह्वा भी श्रीकृष्ण की परम मनोरम कीर्ति का गान करके तृप्त होना चाहती है। उद्धव ने गोपो को अत्यधिक उदास रोते हुए विलखते हुए देखकर सुन्दर मृदु सुलझी हुई और शक्ति प्रदान करने वाली वाणी में उन्हें समझाना आरम्भ किया जिससे कि दुख में जलते हुए उन लोगों को शान्ति प्राप्त हो सके, यदि उनको शान्ति प्राप्त हो गई तो अवश्य वे श्रीकृष्ण के अधिक स्मरण नहीं करेगे और श्रीकृष्ण का मन लोक कल्याण में लग जायेगा और वो

लोकोपार कर पायेगे। इसके पश्चात सभी मनुष्य श्रीकृष्ण के यश का ज्ञान करते हुए घर की ओर चल दिये। मार्ग में उनको उद्धव द्वारा बताई गई बाते ज्ञात हुई जिनको सुनकर वे अधिक उदास हुए तथा कुछ तो दुखावेश में परमकातर होकर संज्ञाहीन हो गये। ब्रज की धरती श्रीकृष्ण के पावों की धूल के स्पर्श के लिए उत्कंठित है। वृक्षों का समूह श्रीकृष्ण के हाथ स्पर्श करने के लिए ब्रजवासी मनुष्यों के नयन की प्यास की बहुत बढत्र गई हम सब आज श्रीकृष्ण के दर्शनों के लिए अत्यधिक व्याकुल हो रहे है परन्तु हाय हमारा श्रीकृष्ण कन्हैया हमको दृष्टिगोचर नहीं होते।

हिन्दी साहित्य में उद्धव गोपी संवाद अपना अनूठा स्थान रखता है, भारतेन्दु, रत्नाकर, रीतिकालीन अन्य कवियों ने तथा अर्वानीय कवि गुप्त इत्यादि ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से उद्धव गोपी संवाद का चित्रण किया हैं।

एक दिन उद्धव अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में बैठे थे कि उसी समय बालाओं के एक समूह को आते हुए देखा इस मंडली में कुल भोली भाली अचचंल तथा सुन्दर बालिकायें भी थी जो कि अपनी बड़ी बहनों के साथ आ गई थी। यमुना के नीले और सुन्दर जल को देखकर एक श्यामा ने खिन्नता होकर सखियों से कहा कि यमुना का किनारा मुझे खिन्न बना रहा हे क्योंकि इसे देखकर लीलाधारी तथा मेघ जैसी कान्ति वाले श्रीकृष्ण की याद आती है। जो बालाये श्रीकृष्ण को अपना परम प्रिय भाई पुत्र अथवा सम्बन्धी के समान प्यार करती है, वे भी श्रीकृष्ण के विरह में अत्यन्त दुखी और उदास हो गई सब गोपियों ने मान से युक्त पर प्रिय बाते कहकर उद्धव जी को विनीत होकर अपने समीप बिठाया और फिर एक गोपी ने कहा कि मेरे प्यारे श्रीकृष्ण घर वापस क्यों नही आए? उद्धव कंहने लगे कि में इतना अवश्य कह सकता हूँ कि आज भी वृदावन श्रीकृष्ण को पहले के समान प्रिय है वे अपनी प्यारी माता

तथा पूज्य पिता को भी नही भूले है। संध्या, प्रातः और लगभग प्रत्येक समय उनको अपने वृन्दावन का ध्यान रहता है। सोते समय भी उनको ब्रज के ही स्वप्न आते है उनका मन तो भंवरो के समान सदैव यहाँ के कुंजों में ही विचरण करता है। उद्धव गोपियों को समझाते है कि यदि श्रीकृष्ण का हृदय शान्त और सब प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त न होगा तो वह लोक कल्याण के कार्य को भली प्रकार कैसे कर सकेगे। गोपिया उद्धव की बातों को सुनती रही फिर कहा कि हे उद्धव जिस योग मार्ग का अनुगमन करने पर महान ज्ञानी और विद्वान भी स्खलित हो जाते है उस पर हम जैसी बुद्धिहीन नारियाँ कैसे चल सकती है? हम सभी सुखों को त्याग देगे लेकिन अपने सर्वस्व मन के राजा श्रीकृष्ण को कैसे भुला सकती है? गोपी कहते कहते खीज उठी कि अनुपम सौन्दर्य युक्त कल--कल स्वर से बहने वाली यमुना का जल सूख जाय, कुंजो का समूह जल जाय, गोपियों का हृदय भी नष्ट हो जाय, सम्पूर्ण वृन्दावन उजड़ जाय जब हमारा अस्तित्व समाप्त हो जायेगा तब कहीं हम श्रीकृष्ण को भुला पायेगे। जब हम ही नहीं रहेगे तो श्रीकृष्ण अवश्य विस्मरण हो जायेगे। गोपिया उद्धव से कहती हे कि यह जो आपके समाने उदास मुख वाली बालिकाए खड़ी है ब्रज में ऐसी असंख्य बलिक़ाये है उन बलिकाओं ने कितने ही वर्षों तक कितने व्रत तथा असंख्य अनुष्ठान बड़े परिश्रम तथा भक्ति के साथ केवल इसलिए किए है कि उनका विवाह श्याम के साथ हो सके। जिनके नयनों में सुन्दर नीले बादल की शोभा वाले श्याम का प्यार बसा है वे कैसे धुए के समूह वाले अन्य मनुष्यों से प्रेम कर सकती हैं। वे श्रीकृष्ण से प्यार करती है फिर और कोई मनुष्य कैसे उनके नेत्रों में समा सकता है, ये बालिकाये कुवांरी ही रह गई तो फिर ब्रजवासियों को कितना दुख होगा। इन बालिकाओं के अंग प्रत्यंगों में जवानी के सागर की

अत्यन्त चंचल लहरे उठ रही है अनेक कामनाएं दीप्त हो रही है यह उम्र बड़ी ही दुख दायक होती है। उस यौवन के सागर का शक्तिशाली तूफान ज्ञान और बुद्धि की परम शक्तिशाली नाव को भी तोड़ देता है। ये बालायें तो बहुत सीधी तथा अत्याधिक भोली–भाली है। ये कामाग्नि की ज्वाला को किसी प्रकार भी सहन नही कर सकती है। यह काम की ज्वाला धैर्य इत्यादि सबको समाप्त कर देती है। इसकी ज्वाला अत्यन्त कठोर तप से प्राप्त सिद्धियों को भी जला देती है फिर इन अबलाओं की क्या दशा होगी वे अवश्य ही समाप्त हो जायेगी। यह उद्धव को सुनाती हुई सखी कह रही है कि जिसके प्रभाव के समक्ष विष्णु भी चकित हो जाते है, महादेव भी कम्पित हो जाते है, जो इन्द्र के हृदय में भी हलचल मचा देता है, जो सभी को अत्यधिक व्याकुल कर देता है ऐसे काम के वाणों से वे गोपिया बिना श्रीकृष्ण के अपनी रक्षा कैसे कर पायेगी? काम का वाण अत्यन्त कोमल होने पर भी बज्र जैसा कठोर हो जाता है जो फूल जैसा मधुर होने पर भी विरह मे भाले के समान पीड़ादायक हो जाता है। विरह का नशा शरीर में भंयकर विष से भी अधिक पीड़ाकारी होता है। हे उद्धव जब कामदेव प्रेम से खिली तथा प्रसन्न मुख वाली बालिकाओं को पीड़ित करेगा तो वे उसी प्रकार कान्तिहीन हो जायेगी जैसे कमलिनी वर्फ के गिरने से झड़ जाती है। आप जैसा ज्ञानी पुरुष क्या सभी विद्वानों द्वारा जनित प्रेम की अन्धता को नही जानता कि प्रेम अन्धा होता है, प्रेम हृदय की आंखों से देखता है। हे उद्धव सुनो लाखों तारिकायें एक ही सुन्दर चन्द्रमा से प्रेम करती है। लाखों कमल पुष्प एक ही सूर्य के प्रेम में लीन है। इसलिए हम सब बालिकायें भी एक ही हरि के प्रेम में लीन है तो आश्चर्य ही क्या है। प्रेम की महानता, इसकी उष्णता, इसकी गरिमा को तो केवल एक प्रेमी हृदय ही समझ सकता है। वह कहती है कि यदि विधाता ने संसार

में सौन्दर्य का निर्माण किया है तो उसे देखकर मनुष्य क्यों न आसक्त होगे। अपने ऊपर आसक्त करना तो सौन्दर्य का स्वाभाविक गुण है श्री कृष्ण ऐसा महान आकर्षण रूप देखकर बहुत ही पवित्र तथा सुन्दर बालिकाए आकर्षित क्यों न हो? हे उद्धव हम तो भोले भाले ब्रज के निवासी है हम भला योग की क्रियाओं को क्या जाने। तुम ऐसी योग की बाते करके हमकों क्यों दुखी करते हो? हमको केवल ऐसा उपाय बताओं जिससे श्रीकृष्ण का सुन्दर मुखड़ा हम एक बार और देख सके। उद्धव तुम्हारी वाणी भी तुम्हारी बातों की भाँति रहस्यमयी है। तुम कहते हो कि 'छीन करो तन को न दीन करो मन को' अर्थात् शरीर को क्षीण बना डालो परन्तु मन को तनिक मैला मत होने दो, तुम्हारी योग की बातों को हम कैसे समझ सकते है। आज यमुना भी वही है उसकी धारा तथा जल में भी वही प्रेम प्रवाहित हो रहा है, कुंजों का सौन्दर्य भी पहले जैसा ही है वन की धरती, फूल और पत्ते ब्रज भी वहीं है जो कि श्री कृष्ण के समय में था किन्तु श्याम के अभाव में अब ये कहीं नहीं दिखाई देते है। इसी प्रकार कहीं बातों में समय व्यतीत नहो गया किन्तु गोपिया उकताई नहीं। अपने हृदय की बाते कहती रही अपनी वेदनाए सुनाती रही सन्ध्याहो जाने पर श्री कृष्ण के बुद्धिमान मित्र ने सब गोपियों को समझाया बुझाया। एक दिन प्रातः काल उद्धव अत्यन्त प्रसन्न होकर कुंजों में भ्रमण कर रहे थे इसी समय उद्धव ने एक बालिका को देखा जो भावों के अतिशय बोझ से पागल सी बन गई थी। उद्धव जी को उस बालिका के विरह का उद्‌गार सुनने की इच्छा जाग्रत हो गई तथा वे उस स्थान पर छिप गए वहाँ वह बाला वाटिका में पुष्प आदि से बाते कह रही थी। वह बाला कह रही है कि है हे पुष्प आज तुम इतने शोभाशाली कैसे दिखाई पड़ रहे हो क्या मेघ जैसी शोभा वाले श्री कृष्ण आज ब्रज तो नहीं आ रहे है। ओ जूही तो आश्चर्यचकित होकर मेरी इस इन दुख

भरी बातों को सुन रही है या मेरी इस दुख भरी दशा पर हंस रही है। चमेली तू कोरी नहीं है तुम में तो अवश्य ही प्यार की लाली होनी चाहिए क्या तू मुझे प्यार की आंखों से नहीं देखोगी हे मेरी प्यारी बहिन मैं तुझ से कुछ पूछती हू तू मुझपर दया कर तथा दया करके मेरे प्रश्नों का उत्तर दे। वह बेला एवं चम्पा से बात करती है कहती है कि हाय प्रेम करने वालों को क्यों इतने कष्ट उठाने पड़ते है प्यार का मार्ग क्यों इतना बाधाओं और विपत्तियों से भरा हुआ है जो जीवन रूपी उपवन में प्यार का सुन्दर वृक्ष है वह क्यों तीव्र टेढे तथा विशाल कांटों में भरा हुआ है। प्रेम में क्यों इतनी व्यथाएं भरी पड़ी है। प्रेम पंथ कांटों से भरा है यह एक पहेली ही तो है। प्रेम की रीति निराली है भवरा काठ को काट देता है परन्तु अपने प्रेमी कमल में बंध जाता है। वह सूर्य मुखी से कहती है कि तू बड़ी भाग्यवान है तू सूर्य से प्रेम करती है तथा जिस ओर सूर्य मुड़ जाता है तू भी उसी ओर मुड़ जाया करती है तथा नित्य बड़े प्यार के साथ देखा करती है। अन्त में वह कहती है कि सब पुष्पों में अत्यन्त गर्व है। दुखी व्यक्तियों को देखकर इनका हृदय व्याकुल नहीं होता संसार में जन्म लेने वालों का प्रायः ऐसा ही स्वभाव हुआ करता है ये पुष्प भी तो संसारी जीत ही है। अतः ये भी किसी प्रकार संसार से इसकी कृतध्नता से वंचित नहीं रह सकते। वह भवरे से कहती है कि तेरी नीलिमा में उन श्याम की भाँति जैसा सौन्दर्य नहीं है पर तू श्याम है और तुझे देखते ही श्याम की स्मृति आ ही जाती है। जब बाह्य ने विरह का निर्माण किया था तो स्मृति का निर्माण क्यों किया था। स्मृति के कारण विरह और भी उदीप्त हो उठता है और यदि विधाता ने स्मृति की रचना की थी तो फिर प्राण तथा हृदय में इतनी कठोर पीड़ा का बीज बोने में क्यों इतना कुशल बना दिया था। स्मृति हो तो हृदय को अत्यन्त दारूण दुख देती रहती है और उसी के कारण मनुष्य अत्यधिक

पीड़ा का अनुभव करता रहता है। पहले राधा ने पवन को दूत बनाकर भेजा था अतः वह कोकिला से मथुरा जाने का अनुरोध कर रही है कि तू मथुरा की ओर जा तथा मेरे प्राणों के स्वामी को अपना करुण तथा प्रभावोत्पादक स्वर सुना जिससे वे वियोग की कठोरता तथा गहराई की नाव को समझ सके। राधा कह रही है कि मेरा हृदय टूट रहा है। नशा छाया जा रहा है यदि मैं रातभर विलख विलख कर न रोती यदि मेरे नयनों से जल धारा प्रवाहित न होती तो विरह की अग्नि मुझे व्यथित कर देती। मेरे शरीर को जलाकर राखकर देती विरह के गीत अत्यन्त हृदय विदारक होते है आंसू तो अपने कंठहार हो जाते है यह रास्ता अत्यन्त दुर्गम है। महादेवी के आंसू तो आते रहते है उन्होंने कहा है कि

''जन्म से ही साथ है मैंने इन्हीं का प्यार जाना।
स्वजन ही समझा दृगों के अश्रु को पानी न माना।।

राधा पहले तो पुष्पों के पास आकर विलाप करने लगी उसके उपरान्त भवरे से बाते की फिर बासुरी के भ्रंम में पड़ गई इसके उपरान्त कोयल से बहुत सी बाते की फिर उदास होकर प्रियतम के शान्तिदायक चरण चिह्न को देखा और अन्त में व्याकुल होकर यमुना के किनारे आई और यमुना से अपनी कथा कही। इसके पश्चात उद्धव जो कि कुंजो में छिपे राधा के सभी भावों एवं बातों को सुन रहे थे राधा के घर की ओर जाने पर छिपकर उसके साथ गये किन्तु उनका शास्त्र ज्ञान उस अखण्ड अपार और परम पीड़ित प्रेम के समक्ष पीड़ा पड़ गया।

सोलहवें सर्ग में बसन्त की शोभा वियोग में डूबे ब्रजवासियों के लिए बड़ी दुखदायी थी। जब राधा ने श्री कृष्ण के मित्र परम ज्ञानी उद्धव को आते हुए देखा तो वे बडे प्रेम भक्ति के साथ आदर प्रदर्शित करती हुई उठ खड़ी हुई और

भक्ति रस से आप्लावित होकर उन्हें आसन प्रदान किया। पहले तो उद्धव ने बहुत अधिक स्नेहातुर होकर राधा का कुशल क्षेप इत्यादि पूछा और फिर बड़ी नम्रता से श्रीकृष्ण का पावन दिव्य संदेश सुनाने लगे कि श्रीकृष्ण ने कहा कि भाग्य के कार्यों का रहस्य जानना बड़ा रहस्यपूर्ण है। यदि मिलन के सब साधन व्यर्थ हो जाते है तो यही सोच लेना कि इसमें भी कोई न कोई सुन्दर बात तथा लोक कल्याण की भावना निहित होगी। तप करने वाला केवल अपना भला करने वाला कहला सकता है। जिसे संसार का कल्याण और उसकी सेवा प्राणों से भी अधिक इच्छित है वह धरती में बड़ी आत्मत्यागी कहलाता है वहीं संसार की दृष्टि से महापुरुष है। राधा कहती है कि है उद्धव आप मेरे प्यारे श्रीकृष्ण की बाते परम आदर से सुनाना कि मैं स्वयं अपने दुःख से तो बिलकुल दुखी नही अपितु आपके बताए व्रत में लीन हूँ परन्तु इतना अवश्य है कि मरे ब्रजवासियों के दुख के कारण बहुत अत्यधिक दुखी रहती हूँ। उद्धव उस बाला का परम साहस धैर्य और लोक सेवा देखकर मुग्ध हो गए तथा राधा इतना कहकर शान्त हो गई उद्धव ने राधा की चरण रज अपने मस्तक पर धारण की और चल दिए। उद्धव ब्रजभूमि में केवल दो दिन के लिए आए थे किन्तु ब्रजवासियों के स्वागत तथा उनकी दारुण विरह कथा ने उद्धव को ब्रज से बांध सा लिया तथा कई महिनो उपरान्त वे मथुरा वापस लौट सके उसके उपरान्त फिर ब्रज में कोई भी न आया और न श्री कृष्ण ही आए। कुछ दिनों उपरान्त ब्रजवासियों ने समाचार सुना कि श्रीकृष्ण ने कंस को मार डाला है लेकिन जरासन्ध को झगड़ों से तंग आकर श्रीकृष्ण ने मथुरा नगरी को त्याग दिया तथा वे द्वारिका में जा बसे जो अब गुजरात में है जिस प्रकार स्वाति नक्षत्र का पानी पीने वाला अत्यन्त प्यासा पपीहा शरद ऋतु के बीत जाने पर बहुत निराश व्याकुल हो जाता है उसी प्रकार श्री कृष्ण के द्वारिका

गमन की सूचना के सभी ब्रजवासियों पर निराशा व्याप्त हो गई। धीरे–धीरे गोप गोपियों माता पिता और बालिकाओं का दुख कम होता गया तथा एक दिन समाप्त हो गया परन्तु सबके हृदय में श्याम की मनोहर पूर्ति विद्यमान थी राधा प्रतिदिन यशोदा के पास जाया करती थी तथा विविध बाते कहकर उन्हें समझाया करती थी। जब वे बहुत दुखी अथवा अस्वस्थ्य होती थी तो वह दिन रात उसकी सेवा करती रहती थी। विरही व्यक्ति को किसी प्रकार से बातों में लगा दे किसी रचनात्मक कार्य में लीन करा दे ऐसा ही राधा गोप ग्वालों के साथ करती। राधा दीन हीन व्यक्तियों तथा विधवाओं के साथ बहुत आदर और सम्मान का वर्ताव करती है। तथा उनको सभी प्रकार से प्रसन्न रखने का कार्य करती जब जीव स्वयं दुखी होता है तो वह जीवों को भी दुखी समझता है अतः उसके दुख को दूर करने का प्रयास करता है जब राह में चोटिया इधर से उधर जाती तो उनको आटा खाने को दिया करती पक्षी को अन्न जल दिया करती इस प्रकार राधा नित्य ही सब जीवों की उन्नति में लीन रहती थी।

(२) साकेत

साकेत के प्रथम सर्ग का शुभारम्भ माँ शारदे की स्तुति के साथ प्रारम्भ होता है, इसके पश्चात कवि साकेत नगरी की भव्यता का वर्णन करता है, जहाँ से कथावस्तु आरम्भ होती है अवनि की इस अमरावती (अयोध्या नगरी) में इन्द्र के समान दशरथ का शासन है। यहाँ के पौरजन स्वस्थ, शिक्षित, शिश्ट एवं उद्योगी है, एक तरु के विभिन्न समनों के समान हिल–मिलकर रहते है, वाह्य योगी होते हुए भी सभी आन्तरिक योगी है, आधि–व्याधि से युक्त होकर पूर्ण समृद्धि का लोकोत्तर

आनन्द प्राप्त करते है। राजा और प्रजा का दुर्लभ पारस्परिक प्रेम यहाँ सहज ही प्राप्त है। पुत्र रूपी चार फल (राम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुध्न) पाकर अब और कुछ पाने की इच्छा दशरथ को नही है उनकी एक मात्र अभिलाषा श्रीराम के शीघ्र अभिषेक की है।

अरुदोणय होने पर क्षितिज पर किरणे फैल जाती है उर्मिला और लक्ष्मण का हास–परिहास चलता है। उसी क्रम में उर्मिला का लक्ष्मण द्वारा सूचना मिलती है कि कल अपार आनन्द का पर्व जुड़ने वाला है, आर्य राम का राज्याभिषेक होगा तथा नवयुग का सूत्रपात्र करने वाले राम राज्य का विधान। तदुपरान्त उर्मिला हर्ष विभोर हो अपनी सधी तूलिका से अभिषेक–चित्र अंकित कर लक्ष्मण को आश्चर्याभिभूत कर देती है। फलतः वे प्रिया की उन कला कुशल उंगलियों को चूमने को प्रमत्त हो उठते है उर्मिला फिर लक्ष्मण का चित्र बनाना आरम्भ करती है किन्तु सात्विक भावों के स्फुरित हो जाने से तूलिका लक्ष्य विरत हो उठती है। दम्पत्ति आंलिग्न में डूब जाते है।

कल राम का राज्याभिषेक होना था। त्रिवेणी तुल्य तीनों रानियां सुख का अनुभव कर रही थी किन्तु सुमन के फूलने से पूर्व मंथरा का कुदृष्टि–कीट उसे कुतरने के लिये प्रस्तुत हो गया। मंथरा कैकेयी की निजी दासी थी। राम के अभिषेक के समय जब सभी पारिवारिकजन हर्ष उल्लास से विभोर हो रहे थे, वह उदास थी। कैकेयी ने जब उससे उदासी का कारण पूछा तो ईर्ष्यालु मंथरा ने संदेह जाग्रत करने वाले षड्यन्त्र का संकेत किया। कैकेयी उसकी बाते सुन क्रोधित हो उठी और उसे उसकी उस कुत्सित भावना के लिये बहुत डांटा परन्तु मंथरा ने बड़े ही भावुकता पूर्वक मर्मधाती शब्दों के माध्यम से कैकेयी को प्रभावित किया तो कैकेयी के मानस

में एक उथल–पुथल मच गयी। शुभ वृत्तियों से भरा उसका हृदय एक विचित्र रूप से संदेहादोलित हो उठा। मंथरा अपना कार्य कर चली गयी यही वह विष बिन्दु है जहां से वस्तुतः महाराज दशरथ का मरण और श्रीराम, लक्ष्मण, सीता का चौदह वर्षों का वनवास इसी का परिणाम है।

उधर राज महल में अभिषेक के साज सजाये जा रहे थे और इधर कैकेयी पर मंथरा के विषमंत्र का प्रभाव बराबर बढ़ता जा रहा था, महाराज दशरथ अपनी स्त्रैणता के शिकार होते है। कैकेयी उनसे कभी के मांगे अपने दोनों वरो की याचना करती है परन्तु जीवन के मूल्य पर भी वचन को पालन वाले रघुवंश में जन्में महाराज दशरथ उसे ठुकरा नही सके। इसी शोभनीय दशा में रात बीतती है और मृत्यु की भयावह छाया लिये नया प्रभात उदित होता है।

तीसरे सर्ग में उर्मिला से विदा लेकर वीरवर लक्ष्मण ने श्रीराम के चरणों में मस्तक झुकाया। इसके पश्चात राम और लक्ष्मण दोनों भाई पूज्य पिता के पावन चरणों की वन्दना करने महल को चले। वहाँ पिता की स्थिति देख दोनों बन्धु स्तंभित रह गये। राम ने वस्तुस्थिति जाननी चाही, परन्तु दशरथ की सूजी पलके खुली रही और वे राम को अपलक निहारते रहे कुछ कह न सके। पिता की मौनता का कारण राम ने विमाता से कारण पूछा तो उन्होंने हृदय बेधी शब्द कहे। राम ने वास्तविकता जान ली। पिता ने अपनी बाहें बढ़ा उठाने की चेष्ठा की। राम लक्ष्मण ने उन्हें संभाला, राजा दशरथ ने उनहें हृदय से लगा लिया और कहा कि 'विश्वास ने मुझको ठगाया'' राम ने स्थिति को समझ कर कहा कि भरत और मुझमें भेद ही क्या है। भरत यहाँ अपने कर्तव्य का पालन करने और मैं वन में अपना धर्म पालन करूं। लक्ष्मण को ये सारी बातें बड़ी अनुचित लग रही थी लेकिन श्रीराम ने बड़े ही

कुशलता पूर्वक उन्हें शांत कराया लेकिन लक्ष्मण वन में न जाने की बात श्रीराम की नही मानते वह अपने निश्चय पर अटल रहते है पिता को धैर्य बंधाने को सचिव वर सुमित्र को कहकर राम, लक्ष्मण माता कौशल्या के भवन में चले गये।

चतुर्थ सर्ग में ममतामयी कौशल्या देवार्चन में लगी थी। उनके पास विधुमुखी जनकसुता खड़ी थी जो पूजा की आवश्यक सामग्री जुटाने में उनकी सहायता कर रही थी। राम लक्ष्मण ने माता कौशल्या का आर्शीवाद प्राप्त किया तथा अपने वन जाने और भरत के राज्याभिषेक की बात बताई, इस पर कौशल्या विश्वास न कर सकी लेकिन लक्ष्मण द्वारा वस्तुस्थिति को सविस्तार से समझ लेने पर वे राम की भीख मांगने को तैयार हो जाती है उसी समय कक्ष में उपस्थित होती उर्मिला एवं क्षत्राणी सुमित्रा को भीख मिले वाली बात एकदम अनुचित लगती है। राम सुमित्रा को शांत करते है सुमित्रा कौशल्या को धैर्य बँधाती है और राम को वन जाने की अनुमति स्वयं भी देती है तथा लक्ष्मण को साथ ले जाने के लिये कहती है।

लक्ष्मण, राम के साथ वन जाने और उर्मिला को अयोध्या में ही छोड़ जाने का निश्चय कर लेते है, उर्मिला भी अपने को प्रियतम के धर्म में बाधक न बनने के उद्देश्य से समझा लेती है। सुमन्त्र प्रजा के विद्रोह की बात बताकर राम को रोकने का प्रयत्न करते है, परन्तु राम का निश्यच अटल रहता है। सुमन्त्र उन्हें राजाज्ञा सुनाते है जिसकी घोषणा हो जाने पर सबकों वल्कल वस्त्र दिये जाते है। सीता ने वल्कल वस्त्र धारण करने को जैसे ही हाथ बढ़ाये, कौशल्या ने बड़ी व्यग्रता से राम से कहा कि वह सीता को वन मे जाने से रोके। राम ने वन के भीशण कष्टों का उल्लेख करते हुये सीता को समझाया परन्तु सीता ने अपने निश्चय नहीं बदला। उर्मिला तो मूर्छित होकर गिर पड़ी। उन्हें गिरते देख लक्ष्मण ने दृग मींच लिये। इस

स्थिति को देख राम ने पुनः लक्ष्मण को समझाया कि वह वन न जाये घर पर ही रहे परन्तु लक्ष्मण अविचल बने रहे। अन्ततः कौशल्या ने विवश भाव से राम लक्ष्मण और सीता तीनों को अपना आशीश प्रदान करते हुये विदा किया।

पंचम सर्ग में श्रीराम ने गुरुवर वशिष्ठ को प्रणाम कर आशीर्वाद लिया। सीता, राम और लक्ष्मण सूर्य तुल्य रथ पर चढ़ गये और वन को चल पड़े, राह में दोनों ओर नर–नारी अश्रुपूरित नेत्र लिये खड़े थे और कैकेयी के इस कुटिल कर्म की निन्दा कर क्षोम प्रकट कर रहे थे। साकेत वासी वन में निवास करने का निष्चय कर रहे थे। राम ने उन्हें अपने पूर्वजों की गाथा सुनाकर प्रभावित किया, जिससे उनका मार्ग निर्विघ्न होकर आगे बढ़ा। साकेत की सीमा पर पहुँचकर जन्म भूमि का प्रेमावेग उमड़ आया फिर भी राम ने रथ से उतरकर संधैर्य उसे प्रणाम किया।

संध्या के समय वह तमसा के किनारे जा पहुँचे। पहली रात वही बीती, दूसरे दिन गोमती पार की और फिर गंगा तट पर पहुँचे। निशादराज ने तीनों वन पथिकों का स्वागत किया। रात्रि विश्राम कर प्रभात में सब लोग गंगापार हुए, तीर्थराज (प्रयाग) पहुंचकर भरद्वाज मुनिके दर्षन किये। तत्पष्चात महर्षि वाल्मीकि के दर्शनार्थ चित्रकूट के गहन अरण्य में पहुंचे। लक्ष्मण द्वारा वही विश्राम कुटी बनाई गई और वहां के वासियों के साथ हर्षोल्लास के साथ स्वागत गीत गाये।

छठे सर्ग साकेत नगरी में मूर्छिता उर्मिला को सुलक्षणा सखी बार–बार धैर्य बंधाती है क्षण भर के लिये उसे होश आता है फिर वह पूर्ववत् मूर्छित हो जाती है। उन माताओं की स्थिति तो और भी दारूण थी जो वन के अपने पुत्रों के कष्टों का स्मरण कर इसलिये नही रो सकती थी कि महाराज दशरथ की दशा सोचनीय

थी। कौशल्या ने महाराज दशरथ को समझाया कि राम, सीता और लक्ष्मण ने अपने धर्म का पालन किया है। पत्नी के इन शब्दों को सुनकर दशरथ आँखे खोल देते है, किन्तु उर्मिला और सीता का ध्यान करते ही पुनः व्यग्र हो उठते है और अपने को कोसते हुए कैकेयी की कुटिलता पर क्षोभ व्यक्त करते हुये पटरानी कौषल्या को भी कुछ मांगने को कहते है। इस पर विशाल ह्दया कौशल्या कहती है कि कैकेयी चाहे जैसी हो वह मुझ जैसी पुत्र से दूर न हो। सुमन्त्र अभी लौटे नहीं है दशरथ निरन्तर राम–राम की रट लगाये हुये है वह विश्वास नहीं कर पा रहे है कि राम सचमुच 14 वर्ष के लिए चले गये है। वह सुमन्त्र की प्रतीक्षा इस आशा से कर रहे है कि वह श्रीराम को वापस लौटा लाने में अवश्य सफ़ल हो जायेगें।

अन्ततः सुमन्त्र अकेले आते है। दशरथ से उन्होंने राम लक्ष्मण और सीता का अंतिम समाचार कहा। सुनते ही दीप बुझ गया, महाराज के प्राण स्वर्ग को उड़ गये दोनों रानियां अर्द्धमृत सी हो गई, सुमन्त्र सहित सभी अनुचर विलाप करने लगे उर्मिला असहाय सी कैकेयी के सामने जा गिरी कैकेयी की आंखे फट सी गयी वह स्तम्भ सी हो गयी मुनिबर वशिष्ठ ने सभी को धैर्य बंधाया तथा नृप के शव को सुरक्षित रखवाकर दूत को भरत को लाने को भेज दिया।

सप्तम सर्ग में भरत शत्रुघ्न के साथ आ रहे है, किन्तु नगर की ओर ज्यों–ज्यों वे बढ़ते है आह्लाद के स्थान पर उन्हे अवसाद घेरता जाता है। संध्या का समय आधी रात की तरह प्रतीत हो रहा है दोनों भाई किसी अमंगल की आशंका से काँप उठते है। सुमन्त्र मिलने पर दोनों भाई सचिव श्रेश्ठ सुमन्त्र आँसुओं को रोक उनसे राज्य भोगने की बात कहते है। किन्तु भरत उनकी सुनी अनुसुनी करते हुए शंका भरी वाणी से पूछते है पिताजी कैसे है? इस समय कहां है? मंत्री द्वारा ज्ञात

होने पर कि वो तो भव सागर को पाकर मुक्त हो चुके है कैकेयी ने उनको सांत्वना प्रदान करते हुये कहा कि है पुत्र महाराज तो उस स्थान पर चले गये है जिससे फिर लौटना नही होता भरत और शत्रुघ्न द्वारा राम लक्ष्मण के सम्बन्ध में पूछने पर कैकेयी ने कहा कि तुम्हारे राज सिंहासन हेतु दशरथ से दो वरदान मांग लिये एक राम को चौदह वर्ष का वनवास दूसरा भरत को राज्य सिंहासन। इतना सुनते ही भरत पर वज्र गिर गया, शत्रुघ्न ने पैर पटक कर ओंठ काट लिये दोनों बन्धु माता कौशल्या के पास पहुंचते है। कौशल्या भरत को राज्यभार संभालकर पिता को जलांजलि देने तथा अन्त्येष्टि करने का आदेश देती है। भरत शोक से मूर्छित हो जाते है दोनों माताएं कौशल्या सुमित्रा घबड़ाकर व्यंजन, सिचन, परस और पुकार करने लगती है गुरुजी वशिष्ठ भरत को आश्वस्त करते है और रानियों को समझाते है यह रात इसी प्रकार बीतती है।

दूसरे दिन दिवगंत महाराज दशरथ का दाह संस्कार होता हैं। सरयू तट पर चिता को भरत अग्नि देते है और प्रदक्षिणा कर हाथ जोड़ते ही अपना सारा धैर्य खो बैठते है। वशिष्ट जी समझाकर उन्हें और माताओं को लेकर घर चलने का आदेश दिया।

आठवें सर्ग में राम चित्रकूट में एक वृक्ष की छाया में पड़ी शिला पर बैठे है राम सीता से विनोदपूर्ण प्रेमालाप करते है तथा वन मे आने का अपना उद्देश्य प्रकट करते है। प्रसंग चल ही रहा था कि सीता ने देखा कि वन के खग–मृग भय से भाग रहे है कोलाहल ध्वनि हो रही है। लक्ष्मण आशंका प्रकट करते है कि शायद भरत अपने दल बल के आक्रमण करने आ रहे है, किन्तु राम का विचार है कि भरत अपनी माता का परित्याग करके सारी अयोध्या की जनता के साथ आ रहे है। पास

पहुँचते ही भरत शत्रुघन को राम हृदय से लगा लेते है इसके बाद वशिष्ट आदि मुनिवरों को प्रणाम करके जैसे ही राम की दृष्टि 'आभरण रहित सित वसना' माँ पर पड़ी, वे सिहर कर चीत्कार कर उठे वह सीता लक्ष्मण सहित रोने लगे वशिष्ट ने उन्हें सान्तवा दी राम ने स्वर्गीय पिता को श्रद्धांजलि वन्यचरों के साथ अर्पित की। इसके पश्चात सभी बैठती है। भरत अत्यन्त मार्मिक शब्दों में अपना अनुताप व्यक्त करते है और 'सिंहनी' से 'गोमुखी गंगा' बनी कैकयी भी राम ने घर लौटने का आग्रह करती है कैकयी के बाद–बार आग्रह करने पर राम अतिशय प्रभावित होते है। परन्तु अपना निश्चय नहीं बदलते है और अत्यन्त विनम्र तथा सम्मानपूर्ण शब्दों में कहते है कि तुम्हारा आदेश मेरे लिए सर्वोपरि है मैंने आपकी आज्ञा का पालन करते हुए वनवास ग्रहण किया है। मैं आपकी पहली आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। भरत राम के सम्मुख यह प्रस्ताव रखते है कि वे अयोध्या लौट जाये उनके साथ पर भरत वनवास भोग ले। भरत सीता को शासन के लिए अयोध्या ले जाने का प्रस्ताव रखते है किन्तु सीता अपने सिन्दूर बिन्दु की महिमा, राज्य से कहीं अधिक सिद्ध करकें उन्हें अपने ध र्मपालन का, माता के सामन आशीर्वाद देती हैं। अन्त में भरत को केवल राम की पादुका प्राप्त होती है। लक्ष्मण ने कोटे में बैठी हुई उर्मिजा को देखा तो वह एक रेखा की भाँति दिखाई दी। वह वियोग में इतनी क्षीण हो गई थी कि यह समझ नही आया कि यह उर्मिला का शरीर है अथवा उसकी छायामात्र। उर्मिला के त्याग और व्यथा का अनुभव करते लक्ष्मण ने कहा कि प्रिय उर्मिले मुझको बन मे थोड़ी सी तपस्या करके अपने योग्य बनने दो। उर्मिला भारतीय नारी के आदर्श का निर्वाह करते हुए पति के आनन्द में ही अपना संतोष अनुभव करती है। उसी समय सीता के पूज्य पिता जनक भी यहाँ आ पहुँचे।

नवम् सर्ग इस काव्य ग्रन्थ का सबसे महत्वपूर्ण अंश है। इसमें उर्मिला की विरह व्यथा का अत्यन्त मार्मिक चित्रण हुआ है। सर्ग का आरम्भ जानकी की वंदना से होता हैं उर्मिला एक विवेकशील युवती एवं गृह वधू के रूप में इस बात से चिंतित है कि कहीं मेरे कारण परिवार के किसी व्यक्ति का किसी प्रकार की असुविधा या अन्य कोई चिन्ता न हो। इसलिए वह राजभवन का परित्याग करके अपनी सखी सुलक्षणा के साथ उद्यान में आकर रहने लगती है। समय काटने के लिए वह अपने साथ कुछ ग्रंथ, वीणा और तूलिका ले जाती है। पति लक्ष्मण के दूर चले जाने के कारण उर्मिला का मन खाने पीने श्रृंगार या विश्राम किसी मे भी नही लगता है। उसकी सखी सुलक्षणा उसका मन बहलाने के लिए अनेक सुविधाएँ एवं विनोद–सामग्री जुटाती रहती है। किन्तु उर्मिला का मन किसी में नही लगता। इसके पीछे उसकी मूल भावना यह है कि वह किसी सुख का उपभोग अकेले कैसे करे कोई भी सच्चा प्रेमी नहीं चाहता कि वह अकेले आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करे। अतः पशु पक्षी, तृण–पुष्प, लता–कुंज, सरि–सरोवर, सूर्य–चन्द्र जिस पर भी वह दृष्टि डालती है उससे उसके मानस में लक्ष्मण की सुधि का आवेग उमड़ आता है कभी उसे वैवाहिक जीवन का स्मरण हो आता है। उर्मिला का त्याग अवर्णनीय था तो उसका विरह अगाध। जीवन यौवन की देहरी पर खड़ी उस जैसी राजवधू के लिए ही नहीं अपितु किसी भी रमणी के लिए चौदह वर्ष की अवधि, साधारण अवधि नहीं हैं नारी जीवन का सर्वोत्तम तो इसी काल में गलता है भोग्य बनता है उर्मिला उससे वंचित थी। प्रत्येक ऋतु बारी–बारी से आती है और अपना कुछ न कुछ प्रभाव उर्मिला के हृदय पर छोड़ जाती है। ऋतुओं के प्रति उर्मिला की प्रतिक्रिया एक विरहणी की प्रतिक्रिया है। उर्मिला प्रेम के मर्म को जानती है। इस प्रकार उर्मिला को कवि ने एक ऐसी नारी

के रूप में इस सर्ग में चित्रित किया है। जो बीसवी शताब्दी की रचना होकर भी कए आदर्श भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है। उर्मिला प्रणय त्याग और भारतीय नारी की सामाजिक विवशता का प्रतीक है। उसमें कवि की मधुर करुण कल्पना एवं आदर्श त्यागपूर्ण विचारावलि का समन्वय अभिव्यक्त हुआ है।

दशम् सर्ग में कवि सर्ग का आरम्भ प्रेम और सौन्दर्य के अनन्य गायक कवि सम्राट कालिदास की वंदना से करता है, तत्पश्चात वह उर्मिला की ओर उन्मुख होता है। सरयू के तट पर स्थित खिड़की खोलकर उर्मिला बाहर देखती है और विरह व्यथित स्वरों में उस नीरव रात्रि से पूछती है। "हे रजनी यह कितने शोक की बात है कि चकवा सरयू नदी के उस पार है और दुख की मारी चकवी इस पर और जहाँ इन दोंनों की 'हाय' आकर मिलती है, वहाँ लहरों की सैकड़ो ध्वनियाँ उठ रही है। अतः यह हाय एक दूसरे तक नहीं पहुँच पाती (यहाँ उर्मिला और लक्ष्मण चकवा चकवी है, जिन्हे अवधि रूपी रात ने दूर कर दिया है संसार सरयू नदी के समान है और जीवन की विषम परिस्थितियाँ कोहाहल करती लहरों के समान। स्थिति ऐसी है कि पति–पत्नी की हाय एक दूसरे तक नहीं पहुँच पाती। यही दुख का मूल कारण है।) वियोग के कारण उसका शरीर क्षीण हो गया है परन्तु लक्ष्मण की स्मृति बनी रहती है। प्रियतम के चरणों की धूल पोछने के लिए उसने अपने केशो को जटा के रूप में परिवर्तित कर लिया है। सखी सुलक्षणा उर्मिला के सादा साथ रहती है। वह उर्मिला को सात्वंना देते हुए कहती है कि आज यदि रात है तो कल दिन होगा। आज यदि कोई दुखी है तो कल वह सुखी भी होगा। अतः तारों के बीजों के समान सुख की कल्पनाओं को हम अपनी शोक की दृष्टि से नष्ट न करे जिससे भविष्य में आनन्द के सूर्य और चन्द्र उग सके। इसके साथ ही राम सीता के विवाह का प्रसंग

का भी उल्लेख किया है। जैसे महाराज दशरथ के राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न चार पुत्र थे वैसा ही जनक और उनके भाई कुशध्वज की सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति नाम की चार पुत्रिया थी। इनमें सीता कवि थी उर्मिला संगीत की प्रेमिका और श्रुतिकीर्ति नृत्य विशारदा। सरयू के समान मिथलापुर में कमला नाम की एक छोटी सी नदी थी। अयोध्या में महाराज दशरथ के पुत्रों को विश्वामित्र राक्षसों से अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राम लक्ष्मण को माँगकर ले गये। प्रभु राम ने ताड़का एवं मारीच का वध किया इसके उपरान्त अहिल्या का उद्धार कर ये लोग मिथिलापुरी आए। उस समय सीता के विवाह के लिए वहाँ धनुष–यज्ञ का अयोजन हो रहा था राम और लक्ष्मण गुरु के लिए जनक की वाटिका से पुष्प का चयन कर रहे थे। ठीक इसी समय माँ ने सीता ओर उर्मिला को गिरजा की पूजा की लिए वहाँ भेजा। दृष्टि मिलाप होते ही सीता राम के और उर्मिला लक्ष्मण के प्रति आकर्षित हो गई। सारे दिन उर्मिला का मन उदासी में डूबा रहा। रात की उसने स्वप्न मे लक्ष्मण को देखा दोनों ने एक दूसरे के प्रति आत्म निवेदन किया। सम्पूर्ण कथा को सुनाने केबाद उर्मिला को स्मरण आता है कि सुख के वे दिन बीत गए और अब तो वह लक्ष्मण से बहुत दूर है। सहसा उसकी आंखों से उमड़कर आंसू नदी मे टप–टप गिरने लगते है। सरयू से वह प्रार्थना करती है कि वह उसके इन आंसुओं का अपनी सीपियों से सुरक्षित रखे और यदि इस बीच उसकी मृत्यु हो जाए तो लक्ष्मण के लौटने पर इन्हें उनके चरणों में भेंट कर दे। रात अधिक होने पर उसकी सखी उसे खींचकर अपनी गोद में लिटा लेती है और वही पड़कर सो जाती है। स्वप्न मे लक्ष्मण को देखकर जब वह लक्ष्मण को देखने एवं उनसे बाते करने लगती है तो उसके इस काल्पनिक सुख पर सुलक्षणा की आंखों में आंसू जा जाते है।

एकादश सर्ग– सौध पार्श्व में एक पर्णकुटी बनी हुई है जिसमें एक सोने का मन्दिर है। मन्दिर में मणिमय पादपीठ पर युगल पादकाएँ रखी हुई है जिसके दाये–बाये स्वयं प्रकाशित रत्नदीप शोभित है। सामने आंगन में उदासीन भाव से भरत पुजारी के रूप में बैठे हैं वनवासी राम के समान ही उनका रंग रूप और वेश है। बायी ओर धनुष और दाहिनी ओर निषंग है। बाये हाथ में प्रत्यंचा है और दाहिने में एक जटा। इसी प्रकार भरत ने अपने घनश्याम राम के लिए वर्षों काट दिए जबकि चातक अपने घन की प्रतीक्षा में केवल आठ महीने काटता है। भरत प्रभु के ध्यान में इतने लीन है कि पत्नी माण्डवी के आने की आहट तक उन्हें नहीं हो पाती। हाथों मे चार चूड़िया, माथे पर सिन्दूरी बिन्दु और पीताम्बर धारण किए हुंए वह सुमुखी चाँद से सभी अधिक सुन्दर है। पत्तल के ढके हुए सोने के थाल मे अपने प्रभु के लिए फलाहार सजाकर लाई है। नित्य प्रति वह इंसी प्रकार पति के दर्शन कर जाती है माण्डवी आज विशेष दुखी है क्योंकि बहन उर्मिला को वह आज जल तक पिलाने मे भी समर्थ नहीं हो सकी थी यह जानकर भरत बहुत दुखी हाते है और उपवास करने का विचार करते है परन्तु पत्नी द्वारा प्रभु के प्रसाद का स्मरण दिलाने पर उसका तिस्कार न हो इसलिए वे सबके साथ ही प्रसाद प्राप्त करने का निश्चय करते है। इतने में शत्रुघ्न आते है और अयोध्यापुरी की कुशलता सूचित करते है तराई से आए हुए श्वेत हाथी का समाचार देते है, और यह भी बताते है कि एक वापस लौटे व्यवसायी द्वारा उन्हें राम के चित्रकूट से प्रस्थान, दण्डकवन में विराध को जीवित गाड़ना मुनिवर अगस्त्य से दिव्यास्त्र की प्राप्ति, सूर्पणखा की नाक–कान काटना, खर और दूषण के वध की सूचना उन्हें मिली है। राक्षसों की प्रकृति और उनके राजा रावण की शाक्ति का ध्यान कर भरत भय से शंकित हो उठते है। इसी बीच किसी

मायावी राक्षस के आकाश मार्ग में गुजरने का भ्रम होता है और वे उसकी ओर बाण साधकर छोड़ देते हैं तत्क्षण 'हे लक्ष्मण! हे सीते! शब्द के साथ एक तारक सा टूटकर पृथ्वी पर आ गिरता है। भरत राम के किसी भक्त के आहत हो जाने की आशंका से व्याकुल हो उठते है। माण्डवी के कहने से एक महात्मा से प्राप्त हुई संजीवनी की परीक्षा होती है हनुमान को चेत हो आता है और वे भरत, शत्रुघ्न एवं माण्डवी को राम, लक्ष्मण एवं सीता समझकर अतिशय प्रसन्न होते है और अर्द्धरात्रि जानकर संजीविनी लाने हेतु कैलाश जाने को उद्यत होते है और उन लोगों को रावण के समक्ष सूर्पणखा के रुदन, रावण द्वारा सीता हरण, जटायु संस्कार, कवंधासुर वध, शबरी का अतिथ्य ग्रहण, सुग्रीव का मिलन ओर मित्रता का विकास, बालि बध, प्रभु मुद्रिका के साथ अशोक वाटिका में सीता माता के दर्शन, लंका दहन विभीषण का प्रभु शरण में आना राम–रावण का भीषण युद्ध, कुम्भकर्ण वध और लक्ष्मण शक्ति तक का पूरा विवरण सुना देते है। तदुपरि भरत से संजीवनी लेकर वह व्योग मार्ग से उड़ जाते है।

द्वादश सर्ग– राम की संकट की अवस्था और लक्ष्मण शक्ति से भरत कातर हो उठते है इस पर माण्डवी उन्हें समझाते हुए धैर्य धारण करने को कहती है। भरत को उत्साह मिलता है और वे शत्रुओं का सामना करने को तत्पर होते है। माण्डवी महल में अन्य सबको संभालने चल देती है। भरत शत्रुघ्न से सेना की सज्जा करने और माताओ से उनके लिए भी विदा माँग देने को कहते है। शत्रुघ्न के पहुँचने से पूर्व ही माण्डवी सभी को लक्ष्मण शक्ति के विषय में सूचित कर चुकी है इस दुखद समाचार से माताओं के हृदय व्यग्र हो उठे है। कौशल्या की अधीरता और बढ़ जाती है और वे शत्रुघ्न को जाने से रोकने के लिए उनसे लिपट जाती है सुमित्रा शत्रुघ्न

को आदर्श पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है भरत शत्रुघ्न के साथ युद्ध स्थल में जाने के लिए कैकयी भी तैयार हो जाती है परन्तु शत्रुघ्न का बहुत स्पष्ट उत्तर हैकि भरत के साथ युद्ध क्षेत्र को जाने का निश्चय उसी प्रकार अटल है जैसे राम के साथ वन जाने का लक्ष्मण का था। शत्रुघ्न के इस निश्चय पर श्रुतिकीर्ति गौरवान्वित अनुभव करती है और प्रसन्न मुख से उन्हें विदा करती है। शत्रुघ्न शंख ध्वनि करते है। साकेत नगरी सजग हो जाती है। सहसा नहीं नहीं का स्वर ध्वनित करती हुई उर्मिला सबको आश्चर्यचकित कर देती है वह स्वयं सबसे आगे चलने को प्रस्तुत होती है। शत्रुघ्न इसे सहन नहीं कर पाते और कहते है कि हम सब मर गये है जो तुम जा रही हो या हमे कमजोर समझ रही हो तदपि उर्मिला युद्ध स्थल में जाने को कृत संकल्प है। इसी समय आचार्य प्रवर कुलगुरु वशिष्ट का प्रवेश होता है और वे सबको शांत शांत का उपदेश देते हुए युद्ध स्थल की वस्तुस्थिति स्पष्ट करते है। वे बताते है कि लंका तो विजितप्राय है तत्पश्चात अपने मंत्रबल से लोगों को कुछ समय के लिए दिव्य दृष्टि प्रदान करके लंका और युद्ध स्थल के सभी दृश्य दिखा देते है।

उधर राम अपने करुणाविगलित स्वरों में लक्ष्मण को जगा रहे है और हनुमान के शीघ्र न पहुँचने से व्यग्र–विशेष अनुभव कर रहे है तभी द्रुतगति से हनुमान संजीविनी के साथ पहुंच जाते है, लक्ष्मण की मूर्छा दूर हो जाती है, और राम सहित सभी लोग हर्षित हो उठते है। लक्ष्मण सुग्रीव औ जामबन्त की सेनाओं को एकत्रित एवं पुनर्गठित कर लंका पर आक्रमण कर देते है रावण भी अपनी पूर्ण शक्ति से राम पर आक्रमण करता है। यज्ञ–निमग्न मेघनाथ पर लक्ष्मण हनुमान के साथ भंयकर आक्रमण करते है। घमासान युद्ध होता है और उस युद्ध में मेघनाथ मारा जाता है

अशोक वाटिका में विभीषण की वधु सीता जी को धैर्य बधाती है कि मेघनाथ का वध सुनते ही रावण मूर्छित हो गया है अतत: रावण भी मारा जाता है। राम के लौटने के स्वागत की तैयारी में अयोध्यावासी लग जाते है। राम, भरत का मिलन होता है फिर भीड़ से घिरे हुए राम भरत के साथ पैदल ही अयोध्या की ओर चलते है। माताएँ हर्षित होकर पुत्रों का स्वागत करती है। सीता अपनी बहनों से मिलकर अपार हर्ष का अनुभव करती है। आनन्दमग्न उर्मिला के सभी अंग भर उठते है और चौदह वर्षों पूर्व की यौवन क्रीड़ाएँ एक बार पुन: अपनी उद्धामता के साथ उसके हृदय पटल पर पावस के इन्द्र धनुष की भाँति उभर आती है किन्तु जीवन के राजपथ बढ़े पांवों की वस्तु सत्यता से साक्षात्कार होते ही उसका मन पुन: खिन्न हो उठता है उसे जैसे ही यह आभास होता है कि वर्तमान अतीत नहीं बन सकता और जीवन यौवन की पूर्ण रसमयता अपने उस रूप में अब नही प्राप्त की जा सकती है, तो उसके मन मे विक्षोभजन्य दुख भर उठता है किन्तु लक्ष्मण उसे समझाते है।

"वह वर्षा की बाढ़ गई, उसको जाने दो,

शुचि गम्भीरता प्रिये, शरद की यह आने दो।"[1]

तत्पश्चात दीर्घ अवधि के उपरान्त दम्पति का मधुर मिलन दिखाते हुए कवि अपनी काव्य कथा का समाप्त करता है।

(3) नूरजहाँ

'नूरजहाँ' गुरुभक्त सिंह 'भक्त' का नायिका प्रधान काव्य ग्रन्थ है इसकी रचना 1935 में की थी। इसके पात्रों में नूरजहाँ (मेहरुन्निसा) सलीम (जहाँगीर) अकबर, अनारकली आदि प्रमुख है।

'नूरजहाँ' काव्य का प्रारम्भ ईरान के अलबुर्ज शिखर के निकट रहने वाले गयास वेग और उनकी पत्नी के मध्य नौरोज उत्सव पर होने वाली संवाद शैली से होता हैं। गयास वेग की पत्नी उन्हें बाध्य करती है कि उन लोगों को दरिद्रता के जीवन से बचने हेतु हिन्दुस्तान चलना चाहिए बहुत आग्रह करने के बाद गयास बेग अपनी पत्नी की बात मान लेते है और हिन्दुस्तान जाने वाले एक काफिले में सम्मिलित हो जाते है वह काफिला जैसे ही अफगानिस्तान की सीमा मे प्रवेश करता है वैसे ही अफगान लुटेरे उनके काफिले पर धावा बोल देते है वह इसका मुहतोड़ जबाब देते हे फलतः लुटेरे भाग खड़े होते है। गयास वेग की पत्नी गर्भवती होने के कारण यात्रा में अति कष्ट का अनुभव कर रही थी अन्ततः उन्होंने एक सुन्दर कन्या को जन्म दिया किन्तु विवश दम्पति ने कन्या को वही छोड़ दिया यही कन्या आगे चलकर भी नूरजहाँ की उपाधि प्राप्त करती है। गयास वेग की नवजात कन्या को एक वृद्ध उठाकर अपने घर ले आता है और उसे कंधार की एक निसन्तान दम्पति को सौंप देता है। इस सौदागर दम्पति के घर यह कन्या बड़ी होने लगती है। उसी समय दूसरी ओर यमुना के पश्चिमी तट पर आगरा में मुगल बादशाह अकबर का पुत्र शहशाह सलीम राजनृतकी अनारकली से प्रेम की पेगे बढा रहा था जब यह बात अकबर को ज्ञात हुई तो उसने अनारकली को बंदी बनाकर उसे सलीम के जीवन से दूर हो जाने हेतु अनेकानेक प्रलोभन दिये किन्तु अनारकली ने प्रेम के सम्मुख समस्त प्रलोभनों को ठुकरा दिया। फलतः क्षुब्ध अकबर ने उसे निर्वासित कर दिया। सलीम को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने शिकार के बहाने अनारकली को खोजना शुरू कर दिया और उसने एक वियावान जंगल में अनारकली को ढूँढ़ लिया किन्तु अनारकली ने स्वयं को सलीम के जीवन और उन्नति के मध्य बाधक मानकर विषपान कर

लिया। सलीम ने अनारकली का मकबरा बनवाया और वही प्रेम अवधूत की भाँति समय काटने लगा। उधर सौदागर की दत्तक पुत्री मेहरुनिशा (मेहर–उल–निशा) नवयुवती हो चुकी थी और अप्रतिम सौन्दर्य की स्वामिनी हो गयी थी वह अपने पिता के साथ आगरा के भ्रमण पर आई जहाँ सलीम के साथ उसकी नयनों में वार्ता हो गई और एक बार फिर सलीम के जीवन में प्रेम बसन्त का पुनरागमन हुआ। अकबर के बजीर की बेटी जमीला सलीम को अपने प्रेमपाश में आबद्ध करके हिन्दुस्तान की मल्लिका बनने का स्वप्न सजो रही थी। मेहरूनिशा के कारण उसके इस स्वप्न पर तीव्र आघात हुआ। उसने अकबर के कान भरे कि शहजादा सलीम एक तुच्छ सौदागर की लड़की के प्रेम जाल में आबद्ध हो गये है। परिणाम स्वरूप अकबर ने मेहरुनिशा की शादी अपने एक विश्वास पात्र सैनिक अली कुली खान जिसका उपनाम शेर अफगन था उससे करा दी। किन्तु सलीम अपने दूसरे प्रेम पर हुए आघात को सहन न कर सका और विवाह की रात मेहरूनिशा के कक्ष में शेर अफगान की हत्या के इरादे से प्रविष्ट हुआ, किन्तु आर्दशवादी मेहरुनिशा ने उसे फटकार लगाकर उसे रवाना किया और कहा कि मैं तुम्हारा राज्य नहीं चाहती अब मेरा दम्पति धर्म मेरे पति के साथ है। मेरे जीते जी मेरे पति का कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। नूरजहाँ के पास से वहाँ से जाते समय सलीम कहता है कि पत्थर हृदय मैं अब जा रहा हूँ मुझे समझ में नहीं आ रहा कि तुम वहीं मेहर हो जो मुझे कल बहुत प्यार करती थी। वहाँ से जैसे ही सलीम जाता है। मेहरुनिशा के हाथ से तलवार गिर जाती हैं और वह वेहोश होकर जमीन पर गिर जाती है। मेहरुनिशा की शादी के बाद उसकी सहेली जमीला जो सलीम की रानी बनने का स्वप्न देखती थी, सलीम को अपने प्रेम जाल में आकृष्ट करने का प्रयास करती है। इसके लिए वह एक फकीर

गुदड़ीशाह के पास जाती है जो अपने तांत्रिक प्रभाव से रोग दूर करते उच्च पद दिलवाते एवं संतान प्राप्ति हेतु अनुपम प्रयोग प्रसिद्ध थे वह उनसे सम्मोहन विद्या सीखने का निर्णय लेती है। शेर अफगन को यह पद मिलकर अभिमान आ गया। वह स्वभाव से सख्त था। वह शासन का निर्णय शासन पद्धति से न लेकर स्वाविवेक से निर्णय लेता था। सौन्दर्य प्रेम, संगीत साहित्य का विरोधी थ लोगो को मारना उसके जीवन का प्रमुख लक्ष्य था। नूरजहाँ केवल कामपूर्ति का साधन थी उसके रूप सौन्दर्य का जादू उस पर नहीं चल सका। नूरजहाँ हमेशा महलों के अन्दर रहती थी वह छत पर चढ़कर बाहर के वातावरण को देखती तो ऐसा लगता जैसे पेड़ पशु पक्षी उसे बाहर आने का आमंत्रण दे रहे हो। उसके मन में पक्षियों के स्वतंत्र विचरण पर ईर्ष्या होने लगी शेर अफगन ने उसका जीवन बेकार कर दिया। उसके मन में यह भाव उमड़े कि शेर अफगन उसका सम्पूर्ण जीवन गर्त की ओर धकेल दिया। शेख अफगन के मृत्यु के ताडण्व को देख नूरजहाँ ने अफगन की तलवार को अपनी सौत माना है और कहा है कि इसने ही मेरे पति को मुझसे अलग कर दिया है। हरे भरे बागों को इसने उजाड डाला है सहस्रो व्यक्तियों को मृत्यु के घाट उतार कर बधुओं को विध ावाए और अनाथ बना दिया है। जब दूत द्वारा संदेश प्राप्त हुआ कि अकबर स्वर्गवासी हो गये है और जहागीर सलीम राज सिंहासन पर बैठ गये है तो नूरजहाँ घबरा रही थी कि अब आगे क्या होगा? वह विचार करने लगी कि परस्पर प्रेम और सहभावनापूर्ण व्यवहार पत्नी में नहीं हो तो निकाह केवल अबलाओं को ठगने का व्यापार है अगर दम्पति अपना धर्म समझे तो शादी है अथवा बिना मन के मिले सम्बन्धों मे दोनों की बर्वादी है। मैंने तो अपने प्रेम का निर्वाहन किया अपने धर्म का पालन किया अपने हृदय को कुचल डाला अपना पूरा पत्नी धर्म किया। मैंने कभी राज वैभव को मन

में नहीं रखा केवल शान्तिपूर्वक जीन सुख की कामना थी। यहाँ स्नेह, सुख कहां मैने बहुत सहन शीलता दिखायी पर उसका उलटा ही असर हुआ मेरे पति मेरा रोज अपमान करे इससे अच्छा है कि एक दिन प्राण दे दें। उसके मन में तरह तरह के विचार आ रहे थे कि वह अपना अपनमान अब नहीं सहेगी। उद्योग कर लेगी ईश्वर से आशा करती है कि भटके हुए पति को सही राह दिखाये। शेर अफगन के क्षेत्र में एक नरहर नाम का जमीदार था जिसका बेटा विमलराय ज्ञानी और धर्म शास्त्र का विद्वान था उसके अच्छे स्वभाव एवं धर्मपारायण की चर्चा घर घर में थी। क्षेत्र में सूखा पड़ जाने से प्रजा के लोग दुखी थे जिससे वह माल गुजारी नहीं दे पाये शेख अफगन के लोगों ने राजा को चुगली करके बताया कि वह अपना हिन्दू धर्म का प्रचार कर रहा हैं तथा इस्लाम धर्म को नुकसान पहुँचा रहा है। शेर अफगन से सभी घरों में आग लगा दी एवं विमलराय को जमकर पीटा और कहा कि वह राम राम जपना छोड़कर कलमा पढे तो तुझे मैं सजातीय समझ कर न मारू। विमल राय ने कहा कि राज के लिए हिन्दू मुस्लिम सभी बराबर है। राजा को सदभाव रखना चाहिए। नूरजहाँ ने भी विमल राय को छोड़ने की बात कही लेकिन शेख अफगन ने कहा कि तुम शासन के काम में हस्ताक्षेप नहीं करो। उसने नूरजहाँ की विनती न सुन विमलराय को तलवार से गर्दन पर मारकर धड़ अलग कर दिया। विमलराय को मारकर शेर अफगल ने हिन्दू धर्म को क्षति पहुँचायी।

जहाँगीर भारत का सम्राट बनने पर आत्मिक प्रसन्न नही था। नूरजहाँ की कमी उसे रह रह कर खल रही थी। उसके वियोग से सुख सामग्री सब फीकी लग रही थी उसने नाहर सिंह को बुंलाया और कहा कि तुम्हें सैनिक से सेनानायक बना रहे है। लेकिन तुम्हें साहस दिखाना होगा तुम मेरे विश्वास पात्र हो एक मुख्य कार्य

करना होगा उसने नूरजहाँ के पति शेर अफगन को रास्ते से हटाने के लिए नाहर सिंह को भेजा। नाहर सिंह बंगाल देश जाने से पूर्व अपने प्रेमिका से मिला और कहा कि मैं शीघ्र ही रानी बनाने के लिए जा रहा हूँ, प्रेमिका ने कहा कि कहाँ युद्ध छिड़ गया है जो तुम जा रहे हो अगर युद्ध है तो जाओ विजय प्राप्तकर आओ लेकिन कहाँ जा रहे हो। नाहर सिंह ने जब कहा कि मुझे शेर अफगन को मारना है तो प्रेमिका ने कहा कि कायरों की भाँति छिपकर हत्या करने को जाते हो क्षत्रिय कुल का नाम मिट्टी में मिला रहे हो एक बार मर्यादा त्यागकर कोई वीर नहीं बन पाता है। सैनिक अपने राजा का आदेश मर्यादा के भीतर ही मान सकता है। ऐसा राज्य छोड़ो जहाँ आत्मगौरव का नाम नहीं है। कायरों की तरह से क्या हत्या करना। मैं तुम्हें वहाँ नहीं जाने दूँगी। अगर जाना है तो मुझे अपना मुँह नहीं दिखाना या मुझे मारकर जाना। नाहर सिंह को अपनी गलती का एहसास हुआ उसने राजा से क्षमा माँग पत्नी को किसी अन्य देश ले गया। जहाँगीर जमीला से नूरजहाँ को पाने का तरीका पूछ रहा है और जमीला से कहा कि क्या तुम मुझसे प्रेम करती हों सुख सम्पत्ति की आशा न करके मुझपर दिल से मरती हो अगर नूरजहाँ हृदयहीन है तो तू क्या हृदय दिखाओगी। मेरे लिए क्या सचमुच तुम मर सकती हो जमीला ने कहा कि यदि आप मुझे प्रेमपूर्वक अपनाये तो मैं लाख बार मरने को तैयार हूँ। इतना कहकर जहाँगीर ने अपने सैनिको को आज्ञा दी कि जमीला का सिर काट दो। जमीला पैरो पर गिर कर बोली मुझे क्षमा कर दो। जहाँगीर मुस्कराकर बोला तुम तो जान देने को तेयार थी मेरी सत्य प्रेमिका होकर तलवार से क्या डरना। मेरी प्रेम की हँसी न कर जमीला ने कहा कि मै अब प्रेम पर मरने की बात कभी नहीं कहूँगी जैसे प्रेमी प्रेमिका बातो बातों में मरने की बात कहते है वैसे ही मैंने कह दी। मैं हाथ जोड़कर क्षमा मागती हूँ मुझे

शिक्षा मिल गयी। जहाँगीर ने कहा कि कुतुबुददीन तेरा प्रेमी है वह तुझे प्यार करता है। उससे तुम्हारा रिश्ता पक्का कर देता हूँ उसने कुतुबुददीन को बुलवाया और दोनों को विवाह सूत्र में बाध दिया तथा बंगाल का हाकिम बनाकर कहा कि तुम दोनों वहा पर राज करो। क्योंकि शेर अफगन से प्रजा दुखी है। विमलराय की हत्या के बाद वहाँ के लोग यहाँ तक न्याय माँगने आये थे। उस अफगन को हटाकर देश का भार अपने ऊपर ले लेना। नूरजहाँ को सब समझा देना यदि वह अपने परिवार जनों से मिलने से डरती हो अफगन के दुर्व्यवहारों से पछता रही हो तो उसका प्रबन्ध कर मेरे पास भेज देना। जमीला मन ही मन सोचती है कि मैं कुतुबुददीन जैसा पति पाकर आनन्दित एवं हर्षित हूँ उनकी उम्र केवल चालीस वर्ष की है और जीवन जीने के अनुभव बहुत है वह व्यंग्य बाण तो सह ही जाते है किन्तु कोध्र नहीं करते हैं। अब यह अच्छा मौका है मैं उनपर खूब रौब जमाँऊगी वह मन में सोच रही है कि किसी युवक के संग शादी करके दुख सहने से अच्छा है कि बुढे से व्याह कर सुख में जीवन बिताये। कुतुबुददीन के बंगाल पहुँचने पर शेर अफजल ने कहा कि इस पद पर मुझे बादशाह अकबर ने मुझे बैठाया था मैंने कठिन समय में राजकोश को भरा है फिर भी जहाँगीर मुझे विद्रोही समझ रहे है मेरी सेवाओं का यह उपहार दे रहे है, यदि वह मुझे विद्राही समझ रहे है तो मैं राज द्रोह को तैयार हूँ। कुतुबुददीन ने कहा कि यह संदेश जहाँगीर का है कि आज से मैं यहाँ का शासक हुआ हूँ यहाँ की सेना मेरी अधीन है तुमको वही मानना होगा जो मैं आदेश दूगा। शेर अफगन ने सेनापति को हुक्म दिया कि सेना से कहो वह तलवारे लेकर मेरे साथ आवें। सेनापति ने कहा कि मेरे हाकिम की गद्दीपर राजा जिसे बैठायेगा उसके सम्मुख ही मैं अपना यह शीश झुकाऊँगा। मैंने राजा का आदेश देख लिया है कुतुबुददीन अब मेरे मालिक है और

इस प्रदेश से आपका शासन छीन लिया है। इसके बाद शेर अफगन ने विश्वास पात्र सैनिको को लेकर लड़ने का दम्भ भरा लेकिन सभी ने हुक्म मानने से इंकार कर दिया। अब उसकी आंख खुल गयी वह विचार करने लगा कि किसी का विश्वास नहीं है, मैंने प्रजा को बहुत कष्ट दिये है। नूरजहाँ के समझाने पर भी प्रजा पर ध्यान नहीं दिया। वह अपनी हुकूमत कुतुबुददीन को देकर घर गया और अपनी पत्नी नूरजहाँ के पैरों पर गिर कर बार–बार क्षमा माँगने लगा। नूरजहाँ भी बार–बार विश्वास दे रही थी कि हम यहाँ से बहुत दूर जाकर एक सुन्दर सा घर बनवायेगे और अपने हाथों से बने सुन्दर ताज पहनाऊँगी । राज्य छोड़कर दोनों पैदल निकल पड़े रास्ते में एक विधवा मिली जिसने कहा कि पापी एक भिखारी सा पत्नी लेकर पैदल हो गया। वह तलवारे सेना राजपाट कहाँ है तू सब भूल गया है। मैं जैसे अपने प्रियतम के विछोह में तड़प रही हूँ तुम दोनों के शीघ्र ही वह दिन आयेगे यह अभिशाप देकर वह रास्ते से दूर चली गयी। नूरजहाँ गाँव में आकर शहरी जीवन भूल गयी और प्रेम सहित दम्पति जीवन सुख का आनन्द लेने लगी। इधर जहाँगीर को नूरजहाँ को पाने की चाहत ने फिर कुतुबुददीन के माध्यम से शेर अफगन को मारने को कहा कुतुबुददीन ने दूत भेजकर शेख अफ़जल को बुलवाया लेकिन कुतुबुददीन की मंसा समझकर नूरजहाँ ने अपने पति को समझाया कि कुतुबुददीन उसका दुश्मन है। मिलना हो तो वह खुद आये मुझे संदेह हो रहा है क्योंकि मैंने बुरे–बुरे स्वप्न देखे है। शेर अफगन ने कहा कि वीर पुरुषों को मरने से भय नही होता। वह मेहर को समझाकर चल दिया। मेहर उदास खड़ी रह गयी। कुतुबुददीन से मिलने पर शेर अफगन ने कहा कि आज जहाँगीर यहाँ नहीं आया वरना उसे भी बता देता कि दूसरे की पत्नी पर बुरी नजर का परिणाम क्या होता है। अगर तू आया है तो यह खंजर

ले और कुतुबुददीन का सिर अलग कर दिया यह देख सैनकों ने शेर अफगन पर मारे कर दी और वह मारा गया। इसके बाद जहाँगीर के राजमहल में नूरजहाँ बड़े आदर के साथ उतारी गई। राजमहल में आने के बाद नूरजहाँ अपनी उदास पुत्री को समझा रही है कि तुझे इस महल में क्या दु:ख है मैं भी चार वर्ष तक शोाकाकुल रही लेकिन अब बचे हुए जीवन को चिन्ता में व्यर्थ मत व्यतीत करो, बेटी अपने स्वर्गीय पिता शेर अफगन का स्मरण करती है, नूरजहाँ स्मृतिओं को विस्मृत करने हेतु बेटी से राजमहल में उसके साथ खेलने एवं प्यार करने वाले लोगों की बात करती है। नूरजहाँ के विषम ज्वर से पीड़ित होने पर जहाँगीर (सलीम) द्वारा देख–रेख करने पर पुनः पूर्व प्रेमी–प्रेमिका का दृश्य मिलन होता है। 'भक्त' जी ने नूरजहाँ एवं जहाँगीर के पुनः मिलने पर प्रकृति के सौन्दर्य चित्रण को आधार बनाकर दोनों का स्वागत किया है, लेकिन पूर्व प्रेमी को अपनाने हेतु मार्मिक मनोदशा से उत्पीड़ित हो सरोवर में डूबकर जहाँगीर (सलीम) की अपेक्षा मृत्यु को गले लगाने का निश्चय करती है लेकिन उसी समय जहाँगीर पकड़कर मेहर से दु:खी जीवन का रहस्य जानने हेतु बाध्य करता है और अपने प्रेम को पुनः प्रदर्शित करते हुए कहता है कि मुझसे ऐसी क्या गलती हुई है जो विगत चार वर्षों से मुझसे बात नहीं की। नूरजहाँ खूनी हाथों को दूर करते हुए कहती है कि सारी दुनियाँ जानती है कि तुम्हारे इशारे से ही मेरे पति की हत्या हुई है। जहाँगीर पैर पर गिरकर क्षमा माँगते हुए कहता है कि मैं हत्या का अपराधी हूँ प्रेम विद्वेष में अपने प्रतिद्वन्दी से शत्रुता दर्शाते हुए साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति को अपनाकर प्रतिद्वन्दी को परास्त करना प्रेम की रीति है। मैंने अपने विरही मन को बहुत समझाया, बस तुमसे मिलने की आशा में प्राण नहीं त्याग पाया। आखिर तुम्हें अपनाने की चाह ने मुझे, बाधक बने तुम्हारे पति को रास्ते से अलग कर

दिया प्रेम में विह्वल हो जाने के कारण मैंने यह अपराध किया अब मुझे क्षमाकर दो या यह तलवार से मेरी हत्या कर, खून का बदला खून से ले लो। नूरजहाँ ने कहा कि दोष भाग्य का है लेकिन तुमने कायरता से ऐसी हृदयविदारक हत्या कर अपराधी बने। मैंने तुमसे कभी न बोलकर अलग रहने का निश्चय किया था। मैं इसलिए मरने जा रही थी कि मेरे मन पर कोई फिर विजय न पा सके। सलीम 'जहाँगीर' नूरजहाँ की बाते सुनकर व्यथित हो गया, वह कहने लगा कि मिलने की आशा में मैंने अब तक इन्तजार किया वह मेरे नाम से घृणा करती है ऐसे जीने से मरना अच्छा है। नूरजहाँ ने कहा कि मुझे घृणा नही है लेकिन मैं पूर्व की भांति सहृदय नहीं मिल सकती। नूरजहाँ अपने बैधव्य जीवन का उल्लेख करती हुई कहती है कि मैं पुजारिन की भांति श्रद्धा और भक्ति पूर्वक आपका आदर करती हूँ। मेरे जीवन में अब प्रेम सम्बन्ध नहीं है हमारा मिलन सम्भव नहीं है। तुम्हारा स्पर्श मुझे मरण तुल्य है। जहाँगीर प्रेमपूर्वक याचना करता हुआ कहता है कि मेरी ऐ अभिलाषा पूर्ण कर दो उसके अतिरिक्त मैं जीवन भर कुछ नहीं कहूँगा। नूरजहाँ अपनी मनः स्थिति ठीक न बताकर फिर सुनने को कहती हुई चली जाती है।

गुरुभक्त सिंह 'भक्त जी' ने नूरजहाँ के अन्तिम सर्ग में जहाँगीर और नूरजहाँ का प्रणयपूर्ण साहचर्य का वर्णन किया है जिसमें जहाँगीर (सलीम) नूरजहाँ (मेहर) को वन विहार के लिए ले जाता है जहाँ 'मेहर' के जीवन में फिर बसन्त आ गया। वन विहार में जहाँगीर और नूरजहाँ का पुनः मिलन होता है वन में जलाशय में जलक्रीड़ा का आग्रह करने पर नूरजहाँ वहाँ सूख रहे पौधे में जल छोड़ने को कहती है। नौका विहार करके जहाँगीर नाव से उतरत समय गिर गये और बेहोश हो गये, नूरजहाँ घबड़ाकर दुःखी होकर राजा जहाँगीर से अपने प्रेम का प्रदर्शन करती है।

जहाँगीर उसके शब्द सुनकर बार–बार धन्यवाद देता है। जहाँगीर पुनः उसी इच्छा पूरी करने की बात कहता है लेकिन नूरजहाँ कहती है, तुम्हारे विवाह प्रस्ताव पर मैं तैयार नही हूँ जहाँगीर ने कहा कि तुम्हारा अनुमान गलत है मेरी अभिलाषा तुम्हें ताज पहनाकर रानी बनाने की है। बार–बार निर्वहन करने पर नूरजहाँ हाँ कर देती है। वह अपनी कार्यकुशलता, निर्णयक्षमता एवं राज्य के संचालन की निपुणता से जहाँगीर की ख्याति बढ़ाती है। चिड़ियों के मधुर संगीत एवं भंवरों के गुणगान का वर्णन कर कवि ने प्रकृति के अनूठे सौन्दर्य के साथ नूरजहाँ खण्ड काव्य का समापन किया है।

(ख) कृतित्व का प्रेरण एवं प्रयोजन

१ प्रिय प्रवास

महाकवि हरिऔध ने प्रारम्भिक ब्रजभाषा की सरस रागासिक्त कविता को छोड़कर युग की आवश्यकता के अनुरूप खड़ी बोली को काव्य के लिए वरण किया। यह महावीर प्रसाद द्विवेदी का काल था जिसमें खड़ी बोली में कविता और समाज राष्ट्र के लिए कविता का दौर प्रारम्भ हुआ था। 'हरिऔध' द्विवेदी जी से प्रभावित थे। उनसे प्रेरणा ली थी और आदर्शग्रहण किया था। उन्होंने खड़ी बोली की संस्कृतनिष्ठ भाषा में, संस्कृत के वर्णवृत्तों (वर्णिक छन्दों) में अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' की रचना की जो सन् 1914 इ0 में खड्ग विलास प्रेस बाँकीपुर से प्रकाशित हुआ। इससे पूर्व खड़ी बोली में मैथलीशरण गुप्त का खण्डकाव्य 'जयद्रथ बध' ही एक मात्र प्रबंध काव्य प्रकाशित था। 'प्रिय प्रवास' कई दृष्टियों से क्रान्तिकारी

रचना है। हरिऔध जी की माता का नाम रूक्मिणी देवी था, जो पढ़ी लिखी नहीं थी। उनका प्रिय ग्रंथ था 'सुख–सागर'। जिसका वे नित्य पाठ करती थी। इनके ताऊ जी श्री ब्रह्मा सिंह और माता जी दोनों के कृष्ण भक्ति के संस्कार अयोध्या सिंह पर पड़े थे। फलस्वरूप बचपन से ही उनके हृदय में कृष्ण भक्ति की भावना अंकुरित हो गयी थी जो उनके प्रारम्भिक ब्रजभाषा के अनेक छन्दों में प्रस्फुटित हुई और उनके महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' में परिपक्व हुई। 'हरिऔध' के जीवन को साहित्य की दिशा में मोड़ने में दो व्यक्तियों का बड़ा हाथ रहा। पहले ताऊ श्री ब्रह्मा सिंह जी तथा दूसरे काव्य–गुरु श्री सुमेर सिंह साहबजादे।"[2]

प्रिय प्रवास परतंत्र भारत के उस समय के निवासियों के लिए प्रेरणा की स्रोत थी। अंग्रेजों का अत्याचार कंस जैसा ही था और कालिया नाग आदि आतंकी उस काल के विविध शोषकों जैसे ही थे। हरिऔध जी ने प्रिय प्रवास की भूमिका में स्वयं स्वीकार किया है कि हमने श्रीकृष्ण की कथा लिखी पर उन्हें ब्रह्म का अवतार न मानकर उन्हें एक महापुरुष के रूप में चित्रित किया है। आधुनिक काल में पुनर्जागरण या नवजागरण का संदेश कवियों ने प्रारम्भ में इसी रूप में दिया कि किसी प्राचीन कथा के नायक को वर्तमान परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में युगनायक के रूप में प्रतिष्ठित किया जाय। ऐसी दशा में वह इतिहास या पुराण का पात्र होते हुए भी समसामयिक समाज के लिए एक संदेश दे सकता था कि ऐसी ही परिस्थितियों में त्रेता और द्वापर के नायकों ने जन सहयोग से अत्याचार, शोषण और निरंकुश सत्ता को पराजित करके जनराज्य स्थापित किया था तो आज भी वैसा किया जा सकता है।

जिस समय प्रिय प्रवास का प्रकाशन हो रहा था उस समय अंग्रेजी

शासन इस देश में सुदृढ़ हो चुका था। सत्ता द्वारा अनेक प्रकार से हमारे देशवासियों का शोषण हो रहा था। हरिऔध जी ने कंस के शासन द्वारा उसी तत्कालीन शासन के अत्याचार और शोषण का संकेत दिया। जिसे अपने बाहुबल से तथा लोक–संग्रह द्वारा जन शक्ति के सहयोग से युगनायक श्रीकृष्ण ने समाप्त किया था। जननी जन्मभूमि के लिए लड़ना और उसको मुक्त कराने की हमारे पूर्वजों की परम्परा है। अपने समय में राम कथा द्वारा तुलसी ने भी देश को यही संदेश दिया था और आधुनिक काल में उसी ढंग से सूक्ष्म संकेतों द्वारा 'हरिऔध' ने वही कार्य किया। श्रीकृष्ण का यही जननायक रूप ब्रजवास के काल में भी था। अतिवृष्टि के कोप से कृष्ण ने सबको अपनी युक्ति से बचाया पर किसी चमत्कार से नहीं, अपितु अपने मार्ग दर्शन और साहस से–

"यदि दिखा पडती जनता कही, कुपथ में पडके दुःख भोगती।
पथ–प्रदर्शन थे करते उसे, तुरत तो उस ठौर ब्रजेन्द्र जा।
जटिलता पथ की, तम गाढता, उदक–पात प्रभंजन भीगता।
मिलित थी सब साथ, अतः घटी, दुखमयी घटना बहुग्रंथ में।
पर सुसाहस से, सुप्रबन्ध से, ब्रज–विभूषण के जन एक भी।
तन न त्याग सका जल मग्न हो, मर सका न गिर के गिरीन्द्र सो।"[3]

'प्रिय प्रवास' के नायक श्रीकृष्ण ब्रज के गोपी–गोप प्रेम में आबद्ध होते हुए भी कर्मयोगी, राष्ट्रनायक महापुरुष के रूप में उभरकर सामने आते हैं 'हरिऔध' जी ने प्रिय प्रवास में श्रीकृष्ण की ही भाँति राधा को भी एक लोक सेविका मानवी के रूप में प्रस्तुत किया। कृष्ण के लोक हितकारी कर्मों की संलग्नता और दुष्ट दमन के अभियान में वह बाधा नही बनना चाहती है, अपितु वह दीन–दुखी वृद्धजनों की

सेवा में लगकर अपने व्यक्तिगत प्रेम का लोक–विस्तार करती है और इस प्रकार वह अपने प्रिय श्रीकृष्ण के लोकमंगल के अभिदान की पूरक बन जाती है।

आधुनिक काल में नारी के इस नवीन रूप की दृष्टि का प्रारम्भ, हरिऔध के प्रिय प्रवास से होता है आगेचलकर मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' में उर्मिला की और जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' में श्रद्धा की चरित्र–सृष्टि करके नारी के प्राचीन परम्परागत रूप को नया परिवेश प्रदान किया।

'प्रिय प्रवास' की राधा और 'साकेत' की उर्मिला, ये दोनों ही लोकहित के लिए अपने सुख का त्याग और व्यक्तिगत प्रेम का बलिदान करती है। प्रसाद की श्रद्धा और हरिऔध की राधा गई दृष्टियों में समान है। अन्तर इतना ही है कि श्रद्धा अपना कौमार्य मनु को समर्पित करती है और राधा इससे भी वंचित रह जाती है है और अपना कौमार्य लोकमंगल को समर्पित कर देती हैं। श्रद्धा के प्रेम में वेग है, त्वरा है और आधुनिक नारी की स्वच्छन्दता है पर राधा में मर्यादा है सीमा है और आदर्श का अनुसरण है। श्रद्धा शक्ति के बिखरे विद्युत कणों को एकत्र कर वह शक्ति समाज को देना चाहती है जिससे मानवता विजयिनी हो जाय। राधा भी लोक–जाग्रति के उस अभिमान को अग्रसर रखती है जिसे उसके प्रियतम ने प्रारम्भ किया था और लोक के कार्य में अपने को समर्पित करके मानव–मंगल के विधान का आदर्श उपस्थित करती है।

२ साकेत

प्रत्येक व्यक्ति की एक न एक विशेष स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। उसी प्रकार कवि भी ओज, माधुर्य, प्रसाद गुणों के प्रति आग्रही हो सकते हैं और

उनकी रचनाधर्मिता में श्रृंगार, करुण अथवा शान्त रसों का परिपाक सम्भव है। आत्मानुभूति की मार्मिक व्यंजना कविता का आवश्यक गुण है। बाल्यकालीन वातावरण के संस्कार, पूर्ववर्ती साहित्य के अध्ययन, भूतकालिक जीवन में सचराचर विश्व के मनन और सामयिक विचारधारा के प्रभाव सेजो अनुभूतियां जागृत होती है, उन्हें जब सत्य, शिव और सुन्दर से समाकलित करके प्रस्तुत किया जाता है–वही कविता होती है। भाव तत्त्व बुद्धितत्व और कल्पना शक्ति के द्वारा पोषित करके जो व्यक्ति उन्हें व्यक्त करता है वही कवि है। इस उपक्रम में सोच और संवेदना का संतुलन काव्य को उत्कृष्टता प्रदान करता है। आज से अनेकानेक वर्ष पूर्व प्राचीन साहित्य का अध ययन करते–करते एक दिन कवीन्द्र रवीन्द्र का हृदय काव्य के कुछ कोमल नारी चरित्रों की निर्मम उपेक्षा देखकर सहसा विचलित हो उठा, और उनकी लेखनी से 'काव्येर उपेक्षिता' शीर्षक निबन्ध निकल पड़ा। रवीन्द्र ने लिखा है ––संस्कृत साहित्य में काव्य यज्ञशाला की प्रांतभूमि में जो कितनी ही नारियाँ अनादृत होकर खड़ी है उनमें प्रधान स्थान उर्मिला का हैं हाय, अव्यक्त वेदना देवी उर्मिला, एक बार तुम्हारा उदय प्रातःकालीन तारे की भाँति महाकाव्य के सुमेरू शिखर पर हुआ था। उसके बाद अरुण लोक में तुम्हारे दर्शन नही हुए। कहाँ तुम्हारा उदयाचल है और कहाँ अस्ताचल यह प्रश्न करना भी सब भूल गएं।'

इस लेख के प्रकाशित हो जाने के कुछ ही दिन बाद आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को भी उर्मिला पर दया आ गयी और उन्होंने भी अपने मन के उद्‌गार को एक निबन्ध में व्यक्त किया। निबन्ध का शीर्षक था– ''कवियों की उर्मिलाविषयक उदासीनता।'' इस निबन्ध के प्रकाशन काल में युवाकवि मैथलीशरण गुप्त द्विवेदी जी की छत्रछाया में ही स्वर साधना कर रहे थे। अन्य काव्यों के प्रकाशन एवं उससे

अर्जित ख्याति के बाबजूद रामभक्त कवि गुप्त जी रामचरित पर दृष्टि लगाए एक ऐसा काव्य लिखने को आकुल थे जिससे अपने कवि जीवन की अखण्ड तपस्या के सार को समाहित कर सकें। निश्चित रूप से साकेत के प्रणयन में उक्त दोनों निबन्ध प्रेरणा स्रोत रहे है।

प्रारम्भ में 'साकेत' का नामकरण प्रत्यक्ष उर्मिला के आधार पर किया गया था 'उर्मिला उत्ताप'। यह नाम हिन्दी काव्य जगत् में कुछ दिन सुनाई देकर फिर विलुप्त हो गया। उसमें बाह्य प्रेरणा का दबाब ज्यादा था, कवित्व में आत्म चेतना अधिक थी। इसी कारण कवि के बल ने इसे स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार साकेत भवन का निर्माण धीरे-धीरे होने लगा। साकेत पूरे सोलह वर्षों में पूरा हुआ। 'साकेत' में हम सि रामचरित के दर्शन करते है उसमे आधुनिकता की छाप अवश्य है किन्तु उसकी आत्मा में राम के आधिदैवकि रूप की ही झाँकी है और 'साकेत' की प्रेरणा है जिस युग में राम के व्यक्तिगत को ऐतिहासिक महापुरुष या मर्यादा पुरुषोत्तम तक सीमित मानने का आग्रह चल रहा था, गुप्त जी की वैष्णव भक्ति ने आकुल होकर पुकार की थी

"राम तुम मानव हो? ईश्वर नहीं हो क्या?
विश्व में रमे हुए नही सभी कहीं हो क्या?
तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करे,
तु न रमो तो मन तुममे रमा करे।"[4]

'साकेत-संत' की लेखनी से उक्त पंक्तियाँ अनायास ही प्रस्फुटित नहीं हुई होगी, कवि की श्रद्धा निरीश्वर का लांछन सहन करके भी राम के अतिरिक्त किसी अन्य को ईश्वर मानने में असमर्थ थी। 'साकेत' पूजा का एक फल है, जो

आस्तिक कवि ने अपने इष्टदेव के चरणों पर चढाया है और वह पूजा की भावना ही 'साकेत' की मूल प्रेरणा है।

साकेत आधुनिक युगीन काव्य है इसकी रचना का प्रारम्भ तो 1915 में ही हो गया था जो 1929 में पूरा हुआ। हर युग का निर्माण उसकी राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर होता है इन सबका प्रभाव जन जीवन और उसकी विचारधारा पर पड़ता है साहित्य तो इससे अनुप्रमाणित ही होता है क्योंकि उसकी विषयवस्तु इन परिस्थितियों के बीच जन्म लेती हे साकेत पर भी अपने युग का यथेष्ट प्रभाव है।

3 नूरजहाँ

गुरुभक्त सिंह ने मुगलकालीन एक घटना को 'नूरजहाँ' काव्य के वस्तु विन्यास के माध्यम से प्रस्तुत किया है यद्यपि मेहरुनिश (नूरजहाँ) और सलीम के प्रेम सम्बन्ध के बारे में लोक श्रुतियों और क्षेपको के ही प्रमुख साक्ष्य है। मुगल हरमा (अन्त खण्ड) मं नर्तकियों दासियों एवं कलाकर्त्रियों के साथ बादशाहों और उनके राजकुमारों के विलास प्रसंग के स्वभाविक अनन्त प्रकरण होते है। ऐसे ही कुछ मेहरुनिशा और सलीम के बीच हुआ होगा जिसकी ऐतिहासिकता संदिग्ध है। किन्तु कवि ने अपनी कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा से सलीम और मेहरुन्निसा की लोकचर्चित कथा को भावनात्मक धरातल पर उत्कर्ष देते समय प्रकृति के विविधरूपों मानवीय सौन्दर्य के विविध सन्दर्भों तथा अपनी निजस्विनी अस्मिता के अनुस्यूतन के साथ हिन्दी संसार को एक महत्वपूर्ण रत्न प्रदान दिया। प्रेम केलि समर्पण ही काव्य के आन्तिरिक सौन्दर्य का परिचायक है।

गुरुवक्त सिंह इतिहास प्रसिद्ध नायिकाओं के चरित्र को उत्कीर्ण करने में अति कुशल है यह एक सामान्य प्रवृत्ति है कि काव्य ग्रन्थ नायकों के कृतित्व का ही गान करते है और नायिकाओं को केवल उस नायक के श्रृंगार भोग का साधन मात्र किया जाता रहा है। गुरुभक्त सिंह इस काव्य परम्परा से विद्रोह करते हुए नायिका के चरित्र को प्रमुखता से उदघाटित करते है और उन नायिकाओं के कृतित्व को ज्ञापित करते है, जिन्हे तत्कालीन इतिहास पुरुषों से किसी भी रूप में कम महत्वपूर्ण नही माना जा सकता। अतः निश्चित ही गुरुभक्त सिंह एक नयी परम्परा के प्रवर्तक कहे जा सकते है। नूरजहाँ में नायिका के जन्म से पुनर्विवाह तक की घटनाएं है एवं पुर्नमिलन को दर्शता हुए कवि कहता है। यथा–

'' चंग को कभी ढील देकर,
झुका देती नीचे क्षण भर।
तनिक ललचा फिर डोरी तान,
चढ़ा लेती फिर मेहर कमान।
क्रोध भभके में खिंचा गुलाब,
चढ़ी भौहों पर आया आव।
स्वेद कण माथे से झरझर,
चढ़ाते पानी भ्रू–असि पर।
जिधर फिर जाती यह तलवार,
कलेजे के हो जाती पार।
बिगड़ती बनती, रचती रंग,
गई मिल ''नूर'' ''जहाँ'' के संग।''[5]

'नूरजहाँ' में चरम घटना और फल के बीच कार्य–व्यापार का कुछ दूर तक विस्तार किया गया है नूरजहाँ में शेर अफगन का बध काव्य की चरम घटना है और नूरजहाँ व सलीम का मिलन फल है। नूरजहाँ में कुछ अस्थायी बाधा नायिका की अपनी मनोवृत्ति से उपस्थित हुई है जो अत्यन्त महत्वहीन है। नूरजहाँ की लोकप्रियता उसकी प्रवहमान भाषा, प्राजंल शैली अभिराम कल्पना पर अवलंबित है।

(ग) आधुनिक काव्य में सौन्दर्य का चित्रण

आधुनिक काव्य में परम्परागत सहित्यिक परिस्थितियों में पर्याप्त परिवर्तन हो गया जहाँ मध्यकालीन साहित्य की रचना धर्म राज्य एवं लोक के संरक्षण में हुई। आधुनिक काव्य को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1— आदर्शवादी

2— स्वच्छन्दतावादी

3— यथार्थवादी

इनमें से आदर्शवादी साहित्य के सर्जकों ने सांस्कृतिक नैतिक एवं राष्ट्रीय प्रेरणाओं से भावित होकर व्यापक जीवनानुभूतियों, गम्भीर भावनओं एवं उदात्त जीवन मूल्यों को अभिव्यक्त किया। स्वच्छन्दतावीद साहित्यकारों ने सौन्दर्य प्रेम और रोमांस की अभिव्यंजना अन्मुक्त रूप में की। यथार्थवादी साहित्यकारों ने सामजपरक यथार्थवादी तथा व्यक्तिपरम यथार्थवादी साहित्य का सृजन किया। हिन्दी काव्य साहित्य के इन्हीं वर्गों को क्रमशः द्विवेदी युग, छायावाद युग, प्रगतिवाद युग एवं प्रयोगवाद युग की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

जिस प्रकार हिन्दी साहित्य का मध्यकाल (1350– 1857 ई0) में मुसलमानों को शासन की प्रतिष्ठा, उन्नति एवं ह्रास का युग था। उसी प्रकार आधुनिक काल (1857–1947 ई0) ब्रिटिश राज्य की स्थापना एवं समाप्ति का युग कहा जा सकता है। इस प्रकार आधुनिक काल के आरम्भ से लेकर 1947 ई तक का समय विदेशी परम्पराओं की अधीनता का युग रहा।

मध्य काल में भारतीय संस्कृति का द्वन्द्व जहाँ इस्लामी संस्कृति से था वहाँ आधुनिक काल में यूरोपीय सभ्यता एवं संस्कृति से हो गया। इस्लामी संस्कृति के विरोध में मध्यकाल में संतों एवं भक्तों ने जैसा सांस्कृतिक आन्दोलन चलाया वैसा ही आधुनिक काल में रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, दयानन्द और गाँधी ने चलाया। मध्यकालीन कवियों में कबीर सूर तुलसी ने जो साहित्यिक कार्य किया वही आधुनिक युग में भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध और प्रसाद ने किया। आधुनिक काल का आरम्भ दो खण्डों में किया जा सकता है।

1– स्वतंत्रता पूर्व युग (1857 – 1947 ई0)

2– स्वातन्त्र्योत्तर युग (1947 ई0 से अब तक)

दोनों युगो की काव्य धाराएँ परस्पर सुसम्बद्ध है स्वातन्त्रोत्तर युग की अनेक काव्यधाराओं में पूर्ववर्ती काव्य–परम्पराओं की चेतना का विकसित रूप दृष्टिगत होता है सन् 1960 ई के बाद विभिन्न काव्य परम्पराओं की प्रेरणा या उनकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अनेक काव्यान्दोलनों–अकविता, सहज कविता, सनातन सूर्योदयी कविता, विचार कविता, समकालीन कविता आदि का प्रवर्तन हुआ तथा पूर्ववर्ती परम्पराएँ भी नये स्वरूप में विकसित हुई। "आदर्शवादी मुक्तक परम्परा और भारतेन्दु इस परम्परा के प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी माने जाते है इनका जन्म

काशी के एक सम्पन्न परिवार में हुआ। इनके पिता गोपालचन्द्र गिरिधर दास भक्त और साहित्य प्रेमी व्यक्ति थे।'' प्रेम के उच्चादर्श को लेकर भारतेन्दु श्रृंगार वर्णन में प्रवृत्त हुए। उन्होंने नायिका के सौन्दर्य का वर्णन किया। भारतेन्दु के प्रेम वर्णन में विरह वर्णन की अधिकता दृष्टिगोचर होती है। ''भारतेन्दु ने मुख्यतः मुक्तक एवं गीति शैली का प्रयोग किया है तथाा कवित्त, सवैयों एवं दोहो को अपनी भावाभिव्यक्ति का साधन बनाया है। इनके गीतो में गीति काव्य के समस्त गुण विद्यमान है।'' बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन (1855–1922 ई0) इनकी कविताएँ 'प्रेमधन' सर्वस्य में संकलित है। इन्होंने भारतेन्दु की लगभग सभी प्रवृत्तियों को अपनाया। भक्ति, श्रृंगार एवं देश प्रेम तीनों ही प्रवृत्तियाँ इनके काव्य में दृष्टिगोचर होती है। प्रतापनारायण मिश्र (11856–1895 ई0) में स्वभाव से विनोदी होते हुए भी काव्य क्षेत्र में प्रणय–व्यंजना समाज–सुधार, देश भक्ति आदि प्रवृत्तियों को उद्घाटन करते है। 'मन की लहर' श्रृंगार विलास, दगंल खण्ड, संगीत शाकुन्तल, रसखान शतक लोकिक्तिशतक, आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ है अपना काव्य संदेश जनसामान्य तक पहुँचाने के लिए इन्होंने लोकगीतों की शैली एवं लय का प्रयोग किया है इनकी 'हरगंगा' तृप्यन्ताम् बुढापा आदि कविताएँ हास्य–व्यंग्य का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

राधा चरण गोस्वमी (1859–1925 ई0) इनकी रचनाओं में भक्ति, श्रृंगार एवं देश–प्रेम की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। नवभक्तमाल, दामिनी–दूतिका, शिशिर सुषमा इश्क–चमन, भ्रमरगीत, निपट–नादाना, बारहमासी प्रेम बगीचा, भारत–संगीत, विधवा–विलास आदि इनकी प्रसिद्ध काव्य कृतियाँ है। राधाकृष्णदास (1865–1907 ई0) राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक आन्दोलन में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भक्ति श्रृंगार, देश प्रेम समाज सुधार आदि से सम्बन्धित विषयों को इन्होंने अपनी कविता

में ग्रहण किया है। इन्होंने अपने देशवासियों में आत्मबल एवं स्वाभिमान पैदा करने का अथक प्रयास किया। मेकडानल पुष्पांजलि, प्रथ्वीराज–प्रयाग, भारत–बारहमासा, दे–दशा, छप्पन की विदाई, राम–जानकी, प्रताप विसर्जन, रहिमन–विलास, विनय आदि कविताओं की रचना की।

अम्बिकादत्त व्यास (1858–1900 ई0) सामाज सुधार एवं राष्ट्रीय आन्दोलन में इनका अप्रतिम सहयोग रहा। अंग्रेजी में रंगे भारतीय युवको पर इन्होंने कर्कश व्यंग्य किया है। राष्ट्रीय जागरण के लिए नितान्त अपेक्षित अतीत–गौरव गान को ध्यान में रखकर प्राचीन भारतीय वीरों का स्मरण किया है एवं वर्तमान पर क्षोम प्रकट किया है।

बालमुकुन्द गुप्त (1865–1907 ई0) काव्यत्व की दृष्टि से ये भारतेन्दु के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी है। भारतेन्दु के समकालीन अन्य कवियों में बाबा सुमेर सिंह सुधाकर द्विवेदी, मन्नालाल द्विज, रामकृष्ण वर्मा, राम कृष्ण देव शरण सिंह 'गोप', लाल सीताराम, माधवी हुस्नारगी, चन्द्रिका आदि नाम भी उल्लेखनीय है। भाषा की दृष्टि से यह युग हिन्दी कविता में ब्रजभाषा के अवसान एवं खड़ी बोली के प्रतिष्ठा का युग है।

आदर्शवादी प्रबन्ध परम्परा

द्विवेदी युग

महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव एवं प्रयास से मुक्तक शैली के स्थान पर प्रबन्धत्मकता की तथा ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली की प्रतिष्ठा हुई सन्

1887 ई0 में अयोध्या प्रसाद खत्री जी कृत 'खड़ी बोली का पद्य' शीर्षक रचना से यह आन्दोलन प्रवर्तित हुआ ब्रजभाषा समर्थकों के प्रबल विरोध के बाबजूद भी महावीर प्रसाद द्विवेदी अपने सहयोगियों के साथ अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल रहे। आदर्शमूलक प्रबन्ध काव्यों की परम्परा द्विवेदी युग के बाद भी आज तक बराबर विकसित होती रही है। अब तक शताधिक प्रबन्धकाव्य ऐसे गये है जो इसी परम्परा के अन्तर्गत आते है। श्री धर पाठक के 'एकान्तवासी योगी' (अनुवाद) 1886 ई0 से गुरूभक्त सिंह के 'विक्रमादित्य' (1947 ई0) तक की प्रबन्ध काव्य परम्परा स्वतंत्रतापूर्ण युग के अन्तर्गत परिगणित की गयी है।

प्रमुख कवि–

श्री धर पाठक (1858– 1929 ई0)

महावीर प्रसाद द्विवेदी (1861–1938 ई0)

मैथिली शरण गुप्त (1887–1964 ई0)

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (1865–1947 ई0)

सियाराम शरण गुप्त (1895 ई0)

रामचरित उपाध्याय (1872 ई0)

राम नरेश त्रिपाठी (1891–1963 ई0)

पत्र नाथूराम शर्मा (1857– 1936ई0)

गया प्रसाद शुक्ल सनेही (1883–1972 ई0)

लाला भगवानदीन (1866–1930 ई0)

बलदेव प्रसाद मिश्र,

द्वारका प्रसाद मिश्र,

उदयशंकर भट्ट

गुरुभक्त सिंह 'भक्त'– इस परम्परा में इनके दो ऐतिहासिक काव्य 'नूरजहाँ' (1935) और विक्रमादित्य उल्लेखनीय है। विक्रमादित्य 1847 ई0 की रचना है। नूरजहाँ 18 सर्गों में विभक्त हैं इसमें महाकाव्य के समस्त लक्षण शास्त्रीय रूप में घटित होते है। नूरजहाँ के प्रति शाहजहाँ का उत्कृट अनुपम प्रेम इसमें व्यंजित हुआ है। प्रेम विरह के निरूपण में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है।

छायावाद–

आधुनिक काव्य धारा के द्वितीय चरण में द्विवेदी युग की समाप्ति के पश्चात खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का उत्कर्ष प्रारम्भी हुआ। इस उन्मेष को सामान्यतः चार नामों से सम्बोधित किया गया है। 1– उत्कर काल, 2– प्रसाद काल 3– छायावाद युग 4– स्वच्छन्दतावादी युग।

अतः सन! 1918 ई0 से प्रारम्भ तथा 1936 ई0 तक निरन्तर मुख्यधारा के रूप में विकसित हिन्दी के आधुनिक साहित्य की छायावादी साहित्य से अभिहित करना उचित है। जयशंकर प्रसाद के झरना काव्य संग्रह का सन् 1927 ई0 में द्वितीय संस्करण निकला जो उनकी प्रथम छायावादी रचना है। निराला के अनुसार– "जूही की कली' का सृजन सन 1916 ई0 में हो चुका था। छायावाद की समस्त विशिष्टताओं से संयुक्त कविता 'प्रथम रश्मि' है 'पल्लव' में प्रकाशित इस कविता को छायावाद की प्रथम श्रेष्ट कविता माना जा सकता कवि सूक्ष्मता को ग्रहण करने में अधिक सक्षम है।

"खुले पलक फैली सुवर्ण छवि

खिली सुरभि डोले मधु बाल
स्पंदन कम्पन ओ नवजीवन
सीखा जग ने अपनाना।''

छायावाद के विकास के क्रम में कालान्तर में महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, भगवती चरण वर्मा, उल्लेखनीय है। छायावाद के विकास में प्रसाद, पंत, निरला आदि ब्रहत्त्रयी कहलाते तो ये तीनों कवि लघुत्रयी। इस प्रकार 18 वर्षों तक काव्य का अत्यन्त लोकप्रिय युग रहने के पश्चात 1935 ई0 में कामायनी की रचना के बाद छायावाद का पराभव काल आता है। सन! 1943 ई0 प्रयोगवादियों का प्रथम 'तारसप्तक' प्रकाशित हुआ। इस प्रकार यद्यपि छायावाद सन! 1947 ई0 तक चलता रहा परन्तु इसका महत्व सन् 1936 में ही समाप्त हो गया था। सन् 1940 ई0 में विशाल भारत में प्रकाशित एक लेख में इलाचन्द्र जोशी ने ये स्थापना की कि छायावाद मर चुका है तथा सन् 1948 ई0 में डॉ0 देवराज ने 'छायावाद का पतन' नामक पुस्तक की रचना की। यद्यपि छायावाद के समर्थक इसे अब भी जीवित मानते है परन्तु यह सम्प्रति निष्प्राण है। छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ उसका सम्बन्ध काव्य वस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन मानकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। छायावाद का दूसरा प्रयोग काव्यशैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है। इसी प्रकार आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी ने छायावाद को परिभाषित करते हुए छायावाद में आध्यात्मिकता के अन्वेषण का प्रयत्न किया है। उसकी मुख्य प्रेरणा मानवीय एवं सांस्कृतिक हैं आचार्य बाजपेयी जी के शब्दों में 'मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में

अध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार में छायावाद की सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है। बाजपेयी जी ने इस सम्बन्ध मे आगे कहा उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय एवं सांस्कृतिक है। भारतीय परम्परागत आध्यात्मिक दर्शन की नवप्रतिष्ठा का वर्तमान अनिश्चित परिस्थितियों में यह सक्रिय प्रयत्न है। आचार्य शन्तिप्रिय द्विवेदी ने छायावाद को आत्मा का आत्मा के साथ सन्निवेश माना है। जबकि रहस्यवाद को आत्मा में परमात्मा का। डा0 नगेन्द्र ने छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म विद्रोह माना हैं इस परिभाषा को सूत्रबंद्ध करने का श्रेय डा0 नगेन्द्र को है आगेचलकर उन्होंने आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियों में संकलित छायावाद शीर्षक निबन्ध में मूल परिभाषा में परिवर्तन कर दिया तथा विद्रोह के स्थान पर आग्रह लिखा।

कालान्तर में कतिपय आलोचकों ने छायावाद के स्वच्छन्दतावाद का पर्याय माना है। डा0 देवराज के अनुसार छायावादी काव्य रोमाटिक काव्य से प्रभावित हुआ था और उससे समानता भी है। आर्चाय हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार छायावादी भावधारा की प्रेरणा का मूल स्रोत अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों की कवित हो सकती है। धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक तथा अन्य प्रकार के बन्धनों, रुढ़ियों में मुक्ति की आकांक्षा, उन्मुक्त प्रेम, सौन्दर्योपासना, आत्मानुभूति, विशेषतायें है। जो छायावाद में भी मिलती है किन्तु छायावाद की विद्रोह भावना स्वच्छन्दतावाद की अपेक्षा अधिक सन्तुलित और सर्जनात्मक है वस्तुतः छायावाद की जितनी परिभाषाएँ दी गई है वे एकपक्षीय है। समग्र रूप में छायावाद एक ऐसी व्यापक विचारधारा है जो बीसबीं शताब्दी के आरम्भिक दो दशकों में भारतीय नवजागरण एवं राष्ट्रीय मुक्ति कामना की भावना को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

छायावादी कवियों ने न केवल प्रकृति को अभिनव सन्दर्भों में स्वीकार किया अपितु उनका काव्य ही प्रकृतिमय हो उठा है। मानवीय सौन्दर्य को छायावाद ने प्रकृतिमय बना दिया। श्रद्धा को देखकर मनु एक प्राकृतिक दृश्य की कल्पना करते है—

और देखा वह सुन्दर दृश्य, नयन का इन्द्रजाल अभिरात।

कुसुम—वैभव में लता समान, चन्द्रिका में लिपटा घनश्याम।

सुमित्रानन्दन पंत के अनुसार 'सौन्दर्यबोध उस युग के काव्य के लिये सबसे मौलिक तथा प्रमुख देन रही।'' छायावाद में सौन्दर्य चेतना का अत्यन्त विकसित और समृद्ध रूप देखने को मिलता हैं छायावाद के पूर्व का सौन्दर्य चित्रण दृश्यों का विवरण मात्र है। अलंकारां के प्रयोग द्वारा निर्जीव सौन्दर्यबोध का उदाहरण छायावाद में नहीं मिलता। छायाावाद की कविता कामिनी में सौन्दर्य प्रतिबिम्ब महादेवी वर्मा की निम्न पंक्तियों में मुखरित हुआ है।

''रूपसि तेरा घन केश पाश
श्यामल—श्यामल कोमल—कोमल
लहराता सुरभित केश पास।''

छायावादी कवियों ने द्विवेदी युगीन छन्द जोड़ने की भाषा और रीतिकालीन चमत्कार वृत्ति के स्थान पर सूक्ष्म प्रतीकात्मक शैली को विकसित किया। छायावादी काव्य शैली का आत्मभिव्यंजक शैली कहा जाता है। बाह्य जगत एवं कल्पना के संयोजन से जो मानसिक संवेदनात्मक, अनुभूतियाँ काव्य में अभिव्यक्त होती है। उन्हीं की व्यंजना छायावाद में सूक्ष्म प्रतीकों के माध्यम से कवि करता है। वास्तव में काव्य क्षितिज में छायावाद का आगमन एक स्वर्णिम आशा की उज्जवल किरण है जिसकी ज्योति से हिन्दी का छायावादोत्तर काव्य भी ज्योतिमान रहा है।

प्रगतिवाद

प्रगतिवादी शब्द मूल रूप से तीन शब्दों से मिलकर बना है। प्र+गति+वाद। गति से आशय प्रगति से है, वाद विचारधारा का प्रतीक स्वरूप है। प्र– प्रगति के विशेष अर्थ के लिए प्रयुक्त हुआ हैं। सन् 1936 एक ऐसा वर्ष है जिसे प्रगतिवाद के प्रारम्भ की तिथि स्वीकार कर सकते है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेई, आचार्य हाजारी प्रसाद द्विवेदी डा0 नगेन्द्र नामवर सिंह, आदि साहित्यिक विचारकों ने इस तिथि को स्वीकार किया हैं सन् 1935 में पेरिस में (Progressive writer association) प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई थी। इसकी एक शाखा भारतवर्ष में भी स्थापित हुई। सन् 1936 में लखनऊ में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन हुआ जिसका सभापति उपन्याकार प्रेमचन्द्र जी ने कहा कि साहित्य केवल मनोरंजन की वस्तु नहीं उसका लक्ष्य समाज हित होना चाहिए। सन् 1936 में ही नवीन पत्र–पत्रिकाओं का जन्म हुआ जिसमें हंस और जागरण पत्र विशेष रूप से लोकप्रिय रहे। इन पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से प्रगतिवादी आन्दोलन को अत्याधिक बल मिला। छायावादी कवियों ने ही पहले पहल सूक्ष्म सौन्दर्यवादी दृष्टिकोण छोड़कर सामाजिक यथार्थवाद की प्रवृत्ति अपनाई और इस प्रकार कल्पना के नीलगगन से ठोस धरातल पर उतरने का प्रयास किया।

आज न उडु के नील कुंज में स्वप्न खोजने जाऊँगी।

आज चमेली में न चन्द्र किरणों से चित्र बनाऊँगी। (दिनकर)

हिन्दी के प्रगतिवादी समीक्षकों में डा0 रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान, रांगेय राघव, प्रकाशचन्द्र गुप्त, अमृतराय, डा0 नामवर सिंह आदि की

गणना की जा सकती है। इन समीक्षकों में डा0 रामविलास शर्मा ने मार्क्सवादी विचारों को पूर्ण निष्ठा के साथ प्रस्तुत किया। शिवदान सिंह चौहान प्रारम्भ से ही उदार पंक्षी रहे है। उन्होंने मार्क्सवादी आदर्शों को अपर्याप्त बताते हुए नवीन जीवन भूमिकाओं की चर्चा की है। डा0 नामवर सिंह प्रथम व्यक्ति है जिन्होंने विस्तार पूर्वक मार्क्सवादी दृष्टिकोण से हिन्दी की छायावादी कविता का विवेचन किया। प्रगतिवाद ने न केवल कविता के क्षेत्र वरन निबन्ध, आलोचना एवं उन्यास के क्षेत्र में भी अपनी विचारधारा से साहित्य को प्रभावित किया है। काव्य का महत्व इस तथ्य में निहित है कि वह जीवन के यथार्थ को पूर्ण समग्रता के साथ चित्रित करे, लेकिन इसका अत्यधिक आग्रह होने के कारण ही निश्चय कविता समावद्ध हो जाती है।

प्रयोगवाद

सन् 1943 में प्रकाशित 'तारसप्तक' में अन्वेषण की मंजिल राही होने की चर्चा की गयी थी यह एक प्रकार से 'प्रगतिवाद' को नवजीवन प्रदान करने का प्रयोग था परम्परावाद और प्रगतिवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप प्रयोगवाद का जन्म हुआ। डा0 राम विलास शर्मा ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि प्रयोगवाद की शुरुआत तार सप्तक से नहीं होती, उसकी शुरुआत होती है सन् 1947 ई0 में प्रतीक से''। सन! 1954 के बाद भी प्रयोगवाद शब्द कई वर्षों तक रूढ़ नहीं हो पाया था। प्रयोगवादी कवियों ने नूतन प्रयोगों को कवि कर्म का लक्ष्य मानते हुये अपनी कविता में नए–नए उपमानो, नये प्रतीको, नवीन छन्दों और नयी शब्दावली का प्रयोग किया। इन्होंने परम्परागत उपमानों एवं प्रतीको के स्थान पर आधुनिक युग के वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग किया है।

स्वातन्त्र्योत्तर कविता

सन् 1954 में डा० जगदीश गुप्त ने नई कविता शीर्षक के अनेक उद्धवार्षिक संकलन प्रकाशित करवाये। नई कविता की मूल स्थापना में चार तत्व उल्लेखनीय है जिनका डॉ० लक्ष्मीकान्त वर्मा ने नई कविता के प्रतिमान' पुस्तक में विवेचन किया है। सर्वप्रथम तो यह कि नई कविता का विश्वास आधुनिकता में है। द्वितीय यह कि नई प्रवृत्ति जिस आधुनिकता को आत्मसात् करती है उससमें वर्जनाओं और कुण्ठाओं की अपेक्षा मुक्त यथार्थ का समर्थन है। तृतीय इस मुक्त यथार्थ का साक्षात्कार वह विवेक के आधार पर करना अधिक न्यायोचित समझती है। चतुर्थ यह कि इन तीनों के साथ--साथ वह क्षण के दायित्व और नितान्त समसामयिकता के दायित्व को स्वीकार करती है।

यह सामान्य धारणा है कि प्रयोगवाद और नई कविता में भावगत साम्य है किन्तु वास्तविकता यह है कि इन दोनों काव्य धाराओं में दृष्टिकोण का भेद है प्रयोगवाद ने लोकजीवन से सम्बन्ध काट्कर रोमानी या बोझिल पदावली का प्रयोग किया है। नई कविता ने प्रगतिवाद की राह को पकड़ा और सभी प्रकार के सन्दर्भों के लिए लोक--शब्द चुने है। प्रयोगवादी काव्य की शब्दावली और नई कविता का शब्दावली का अवलोकन करके यह अन्य स्पष्ट समझा जा सकता है।

वंचना है चाँदनी सित

झूठ वह आकाश का निरवधि

गहन विस्तार

शिशिर की राका निशा की

शान्ति है निस्तार

दूसरी ओर नई कविता की शब्दावली दृष्टव्य है

पहाड़ियो से घिरी हुई
इस छोटी सी घाटी में
ये मुँह झौसी चिमनियाँ बराबर
धुँआ उगलती जाती है।

प्रयोगवाद लोक जीवन से कट गया था। परन्तु नई कविता ने लोक जीवन की अनुभूति, सौन्दर्यबोध, प्रकृति को एक सहज और उदार मानवीय भूमि पर ग्रहण किया। नई कविता सौन्दर्यबोध के नयें धरातल और नये अनुभव क्षेत्र प्रस्तुत करती है। वह मानव जीवन के बदलते हुए स्वरों को नये मानदण्ड, प्रदान करती है। अनुभूति की सत्यता नई कविता का प्राणतत्व है। समाज की अनुभूति कवि की अनुभूति बनकर ही कविता में व्यक्त हो सकती है। उसका निर्माता कोई यन्त्र नहीं है। डा0 धर्मवीर भारती का नई कविता के इतिहास में विशिष्ट स्थान है अपनी अनुभूति को वह कितनी सत्यता के साथ लिखते है।

"जीवन हे कुछ इतना विराट इतना व्यापक
उस में है सब के लिए जगत सबका महत्व
आ मेजों की कोरों पर माथा रखकर रोने वाले
यह दर्द तुम्हारा नहीं सिर्फ, यह सबका है
सब ने पाया है प्यार सभी ने खोया है
सबका जीवन है भार
और सब जीते है"

नई कविता समाज की सजीव एवं सजग इकाई के रूप में व्यक्ति को प्रधानता देती है। व्यक्ति के माध्यम से सही लोकमंगल तक पहुँचाना चाहती है। इस आत्मंथनमयी व्यक्ति, व्यक्ति चेतना का स्वाभाविक पर्यवसान व्यापक सामाजिक सत्य के प्रति आत्म दान में होता है। अज्ञेय के शंब्दों में–

"ये दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता, पर,
इसको भी पंक्ति को दे दो।" (अज्ञेय, नदी के द्वीप)

दीप को बुझाकर पंक्तिबद्ध करना ही व्यक्ति की सार्थकता है न कि समाज की। दोनों की सार्थकता इसी में है कि पंक्ति के प्रति आत्मदानी प्रत्येक प्रदीप स्नेहमय ज्योतित और स्वाभिमानी भी रह सके। सौन्दर्यबोध की दृष्टि से नयी कविता सौन्दर्य के यथार्थ से पृथक नही मानती। यथार्थ का क्रियाशीलतत्व सौन्दर्यके आयामों को निर्धारित एवं परिमार्जित करता रहता है। नई कविता के सौन्दर्यबोध में गहन बौद्धिकता तथा जीवन की यथार्थता है नया कवि सौन्दयबोध के लिए वस्तु में गुण या प्रभाव की ओर दृष्टिपात नहीं करता अपितु मन पर पड़े प्रत्यक्ष प्रभाव को ही आत्मसात करता है। नया कवि धवल जयोत्सना में पूर्ववर्ती कवियों की भाँति रमणीय का चित्रण नही करता वरन् जीवन के यथार्थ की कठोर भूमि पर रखकर देखता है।

"चाँद की उजाली में
गलियों में गुजरता, तेज डग भरता
आते हुए देखता हूँ कि एक–एक कोठरी के
तंग उन मकानों के आगे

बांस की खाटो पर गन्दे कमरे

एक सवा गज के सूती फटे चादरों के

इकहरे, दोहरे बिछौने।"[6]

नयी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ पाँच प्रकारों में विभाजित की जा सकती है। पहली प्रवृत्ति यथार्थवादी अहंवाद की है। जिसमें यथार्थ की स्वीकृति के साथ--साथ कवि अपने अस्तित्व को उस यथार्थ का अंश मानकर उसके प्रति जागरुक अभिव्यक्तियाँ देता है। दूसरी प्रवृत्ति व्यक्ति अभिव्यक्ति की स्वच्छन्द प्रतीक है। जिसमें आत्मानुभूति की समस्त संवेदना को बिना किसी आग्रह के रखने की चेष्टा की जाती है। तीसरी प्रवृत्ति आधुनिक यथार्थ से द्रवित व्यंग्यात्मक दृष्टि की है। जिसमें वर्तमान कटुताओं एवं विषमताओं के प्रति कवि की व्यंग्यपूर्ण भावनाएँ व्यक्त हुई। चौथी प्रवृत्ति ऐसे कवियों की है। जिनमें आधुनिकता एवं समसामयिकता का प्रतिनिधित्व रूप में अभिव्यक्त हुआ है। पाँचवी प्रवृत्ति उन चित्रमयता और अनुशासित शिल्प की है, जो आधुनिकता के सन्दर्भ में होते हुए भी समस्त यथार्थ को केवल बिम्बात्मक रूप में ग्रहण करता है।

छायावाद पूर्व कविता में रूप–वर्णन की प्रधानता रही, और छायावाद व उससे प्रभावित कविता में रेखा और रंगो की। महादेवी के काव्य चित्र हल्की और तरल रेखाओं से निर्मित है जिनमें वे धुले मिले रंगों का प्रयोग करती है। उनके चित्रों में अपने विषयानुकूल एक प्रकार की कमनीयता है जो तत्काल आकर्षित नहीं करती एक स्निग्ध प्रभाव छोड़ती है।

"तू भू के प्राणों का शतदल।

सित क्षीर–फेन हीरक–रज से

जो हुए चाँदनी में निर्मित''

× × ×

''पारद की रेखाओं से चिर

चाँदी के रंगो से चित्रित,

खुल रहे दलो पर दल झलमल।''[7]

महादेवी के अधिकांश चित्रों में इसी प्रकार के स्निग्ध तरल, झलमलाते रंगो का प्रयोग हुआ है। छाया और प्रकाश, चित्र के दोनों रूपों में हलकापन मिलता है। छायावादी काव्य तो इस आवृत्ति की अतिशयता के कारण, प्रशंसित भी हुआ और लांछित भी परन्तु बाद में इस शैली और दृष्टिकोण के प्रति विद्रोह करने वाले कवियों में भी भावनाओं के आरोप की प्रवृत्ति का यथावत परम्परागत शैली में निर्वाह होता रहा। अज्ञेय की आरम्भिक कृतियों 'चिन्ता' और इत्यलम्' आदि में तो इस शैली के अनेक उदाहरण मिलते ही है, परन्तु आत्म की अवहेलना कर काव्य में समाज के अनगढ रूप की प्रतिष्ठा करने वाला कवि भी इस प्रवृत्ति के सम्मोहन से नहीं बचा है। कवि भी प्राकृतिक सौन्दर्य से विचलित होकर उसमें मानव अनुभूतियों की छाया देखते है।

साँझ ढली, नभ के कोने में

कारे मेघा छाए

ये विरहिन के ताप, काम के शाप

गरज, इतराएँ,

दीप छिपाए चली समेट निशा दिशा का आँचल

आज रात–भर बरसे बादल।''[8]

पंत की 'बांसो की झुरमुट' कविता की आरम्भिक पंक्तियों में चिड़ियों की चहचहाट इसी प्रकार बंधी है–

''बांसों का झुरमुट
संध्या का झुटमुट
है चहक रही चिड़ियाँ
टी–व–टी– टुट–टुट।''[9]

इसी प्रकार निराला ने 'बादल राग' में प्राकृतिक उपदानों की गति और ध्वन्यात्मक सौन्दर्य को शब्दों में बांधा है।

चल रे चल,–
मेरे पागल बादल!
धसता दलदल!
हँसता हे नद खल–खल।
बहता, कहता कुलकुल कलकल कलकल।''[10]

इन पंक्तियों में नद का बाह्य रूप और प्रवाह नहीं, प्रवाह–ध्वनि भी व्यंजित है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण, आधुनिक कविता में दिये जा सकते है। इस शैली का प्रयोग किसी वाद–विशेष से सम्बद्ध नहीं है। समाजवादी कवि रामविलास शर्मा ने भी इस शैली के प्रति मोह दिखाया हैं समुद्र के किनाने बैठा कवि केवल लहरों के रूप का ही अंकन नहीं करता, उनमें निनादित स्वर लहरी को भी सुनकर शब्दांतरित करता है।

''सागर लम्बी सांसे भरता है,

सिर धुनती है लहर–लहर,

बूंदी बादर में एक वही स्वर

गूंज रहा है हहर हहर।''[11]

पन्त की निम्नांकित पंक्तियाँ, रेखाचित्र की कला का सुन्दर उदाहरण है–

''चाँदी की चौड़ी रेती

फिर स्वर्णिम गंगाधर

जिसके निश्चल उर पर विजडित

रत्न छाया नभ सारा।

फिर बालू का नासा

लंबा ग्राह तुंड सा फैला,

छितरी जल रेखा,

कछार फिर गया दूत तक मैला।''[12]

(घ) इंगित कृतित्व में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति : विविध रूप

सौन्दर्य की अभिव्यक्ति व्यापक और महत्वपूर्ण है। इसमें हृदय सरस और जीवन उर्वर होता है, बुद्धि को नवीन चेतना और कल्पना को सजीवता प्राप्त होती है। सौन्दर्य के प्रति मनुष्य हमेशा से आकृष्ट रहा है। कभी वह बादलों की श्यामलता पर रीझता है तो कभी आसमान के नीले रंग पर, कभी पहाड़ो की ऊँचाई

को सौन्दर्य की परिधि से नापता है तो कभ समुद्र की लहरों को पोषता है। कवि की सुन्दर में 'संकल्पात्मक अनुभूति ही प्रेम स्थिति में स्मरणीय आकार में प्रकट होती है।''[13] अनुभूति और अभिव्यक्ति अन्योन्याश्रित है। सुन्दर व्यंजना अनुभूतिमयी प्रतिभा का परिणाम होती है और यह अनुभूति कवि की सौंदर्य–भावना से प्रभावित रहती है। जब अनुभूति मूल रूप में सुन्दर होती है, तब उसकी अभिव्यक्ति रचना–विन्यास में कौशलपूर्ण होने के कारण प्रेम भी होता है।''[14] ''सौन्दर्य वस्तु की गोपनीयता में रहता है। रजनी रहस्यों की रानी है। अतः सुन्दर है।''[15] सौन्दर्य की इस गोपनीय एवं रहस्यात्मकता के कारण उसकी शाब्दिक अभिव्यक्ति अस्पष्ट होती है। प्रसाद के अनुसार जहाँ कहीं रहस्यात्मकता और गोपनीयता है, वही सौन्दर्य है और जहाँ जितनी सुन्दरता होगी, वहाँ उतनी ही अस्पष्टता होगी। कवि जब अपनी सूक्ष्म भावनओं की अभिव्यक्ति को सौन्दर्यपूर्ण बनाना चाहता है, तो व्यवहार में प्रचलित पदयोजना को वह अशक्त पाता है। सूक्ष्म भावों के लिए शब्दों में नई भंगिमा को लाना आवश्यक होता है। व्यंजना को सूक्ष्म बनाना भी अपेक्षित होता है।

कवि द्वारा गृहीत रूप–माध्यम के सौन्दर्य को बढ़ाने वाली शैली के साधक तत्त्वों में शब्द प्रयोग, लाक्षणिकता, अप्रस्तुत योजना, बिम्ब–विधान, प्रतीक योजना प्रधान है। कवि की सौन्दर्य भावना इनके प्रयोग में स्पष्ट लक्षित होती है। शब्द प्रयोग में मुख्यतः संज्ञा, विशेषण और क्रिया काव्य भाव को मूर्त रूप प्रदान करते है। अलंकार–योजना और प्रतीक योजना अप्रस्तुत के माध्यम से प्रस्तुत को मूर्त रूप प्रदान करने में ही सहायक नहीं, अपितु प्रस्तुत को सौन्दर्य–दीप्ति से भर देती है। कल्पना बिम्ब–सृजन का माध्यम है और बिम्ब अभिव्यक्ति की भाषा–शैली सम्बन्धी सभी विशेशताओं को अपने में समाविष्ट कर वर्ण्य वस्तु का सुन्दर प्रस्तुतीकरण

करता है। अतः इन सबके प्रयोग से अभिव्यक्ति का प्रभावोत्कर्ष होता है। "हम संसार में आनन्द जितना पाते है, सौन्दर्य जितना ही देखत है, उतनी ही हृदय में अभाव प्रतीति और भी अधिक जाग उठती है। देखकर भी देखने की साध किसी तरह भी मिटती नहीं, मालूम होता है यह अपूर्ण हैं हमारा हृदय पूर्ण सौन्दर्य को चाहता है किन्तु वृत्ति के द्वारा उसका आस्वादन कभी किया ही नहीं जा सकता। वृत्ति में तो खंड सौन्दर्य ही आभासित होगा। इसलिए व्याकुलता बनी रहती है। रस साधना में विरह, इसलिए नित्य तत्त्व माना गया है। रूप की प्यास उसमें कभी मिटती नही।

वृत्तिपूर्ण सौन्दर्य की प्रतिबन्धक है। सौन्दर्य का जो पूर्ण आस्वाद हैं, वृत्ति रूप में वह विभक्त हो जाता है। वृत्ति से जिस सौन्दर्य का बोध होता है, वह खंड सौन्दर्य है, परिच्छिन्न आनन्द है। पूर्ण सौन्दर्य स्वयं ही अपने को प्रकट करता है, उसे अन्य कोई प्रकट नहीं कर सकता।"[16] कृति की सीमा रचकर कवि उसी असीम सौन्दर्य को पाना चाहता है। उसी रस का आस्वादन करना चाहताहै। मार्मिक, रम्य, मनोरंजक, विभोर आदि शब्दों का प्रयोग भी कृति के प्रभाव निरूपण के लिए किया जाता है। डॉ0 नगेन्द्र ने इसी को साहित्य प्रेरणा का हेतु माना है। सौन्दर्य चेतना ही कलाओं की जननी है। "सौन्दर्य के उद्दीपन से जब जीवन के संचित अभाव अभिव्यक्ति के एि फूट पड़ते है, तभी तो कविता का जन्म होता है।"[17] सौन्दर्य चेतना जीवन की अत्यन्त व्यापक चेतना काव्य नहीं है। सौन्दर्य की सान्द्र अनुभूति जब ललित अभिव्यक्ति के माध्यम से प्रकट हो उठती है तभी काव्य का उन्मेष होता है। यह अभिव्यक्ति प्रतिभा समुद्भूत होती है। वैसे तो मावन मात्र अपनी अनुभूति को, हाव–भाव, प्रसन्नता–उल्लास सुन्दर उक्तियों को माध्यम से व्यक्त करता है किन्तु वे उक्तिया रचना का रूप धारण नहीं पातीं। अनुभूति रचना में ढल सके इसके लिए

विशिष्ट गुणों और शक्तियों की आवश्यकता होती है। कवि और कलाकार इन्हीं से सम्पन्न होता है। सौन्दर्य की अनुभूति होते ही कवि की रचनात्मक शक्तियां गतिशील हो उठती है। उन्हीं से उसकी अनुभूति साहित्य में प्रतिफलित होती है। किन्तु प्रथम अनुभूति की छाया से लेकर पूर्ण अन्वित कृति में ढलने के बीच रचना के कई स्तर होते हैं यह अत्यन्त जटिल (**Compicated**) उलझी हुई प्रक्रिया है जिसके विश्लेषण से रचना का रहस्य प्रकट होता हुआ सौन्दर्य बोध काव्य में ढल जाता है।

संदर्भ सूची

१. साकेत, मैथलीशरण गुप्त, पृ0 287

2. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' डा0 कन्हैया सिंह, पृ0 3

3. वही, पृ0 43

4. साकेत, मैथलीशरण गुप्त, अनुक्रम पृ0 2

5. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, पृ0 139

6. नई कविता के प्रतिमान, डा0 लक्ष्मी कान्त वर्मा, पृ0 43

7. दीप शिखा, महादेवी वर्मा, पृ0 139

8. पर आंख नही भरी, शिवमंगल सिंह सुमन, पृ0 25

9. युग पथ, सुमित्रानन्दन पन्त, पृ0 27

10. परिमल, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पृ0 176

11. तार सप्तक, रामविलास शर्मा, पृ0 71

12. ग्राम्या, सुमित्रानन्दन पन्त, पृ0 71

13. काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, जयशंकर प्रसाद, पृ0 44

14. वही, पृ0 43, 44

15. जनमेजय का नागयज्ञ, प्रसाद, पृ0 87

16. भारतीय संस्कृति और साधना भाग 2, पृ0 299

17. साहित्य की प्रेरणा, आस्था के चरण, डा0 नगेन्द्र, पृ0 108–110

तृतीय

अध्याय

मानवीय सौन्दर्य

(क) पुरुष सौन्दर्य– 1–बाह्य, 2– आन्तरिक

(ख) नारी सौन्दर्य– 1– बाह्य, 2– आन्तरिक

(ग) बाल सौन्दर्य– 1– बाह्य, 2 आन्तरिक

(घ) मानवेतर चेतन जगत् अर्थात् पशु पक्षी आदि

तृतीय अध्याय

मानवीय सौन्दर्य

मानव विधाता द्वारा रचित सृष्टि की सर्वोत्तम रचना स्वीकारी गई है। विधाता की यह सुन्दर रचना जन्म के बाद से अवसान तक विविध रूपों में सौन्दर्य का परिपाक करता है। जन्म के तुरन्त बाद माँ की ममतामयी थपकियाँ, पिता का अनुशासित वात्सल्य, जीवन सहयोग का विश्वासपरक सन्निध्य से उसका परिचय होता हैं, मानव का मानव के विभिन्न रूपों कें साथ आकर्षण समय समय पर बढ़ता रहता है। साहित्यकार, कलाकार भी मानव सौन्दर्य से सबसे अधिक प्रभावित होता है। यद्यपि मानवीय सौन्दर्य के अतिरिक्त किसी कलाकार– साहित्यकार को प्राकृतिक सुषमा भी अपनी ओर आकृष्ट करती है किन्तु साहित्यकार द्वारा मानवीय सौन्दर्य की ओर अधिक आकर्षण देखा गया है।

विधाता की इस सुन्दरतम रचना का सौन्दर्य विविध रूपों में परिलक्षित होता है। कभी उसकी बाह्य आकृति, रूपाकार अपनी ओर आकृष्ट करता है तो कभी उसके द्वारा किये गये कल्याणकारी कार्य, कभी मानवीय सौन्दर्य की विशिष्टतम रूप सज्जा नेत्रों को अपनी ओर आकर्षित करती है तो कभी अन्दर का सौन्दर्य अपनी ओर ध्यान खीचता है। विधाता की सौन्दर्यपरक सुन्दर रचना को नारी, पुरुष और बालक में अलग–अलग वर्गीकृत किया गया है। इसी वर्गीकरण के अनुसार, क्रमिक रूप से नारी, पुरुष और बाल सौन्दर्य तथा मानवेतर चेतर जगत अर्थात् पशु पक्षी

आदि को संक्षिप्त रूप से परिभाषित करने का प्रयास किया है।

(क) पुरुष सौन्दर्य

प्रकृति के विकास के लिए स्त्रीं–पुरुष का सामजस्य, सहयोग अपेक्षित है। पुरुष स्वभावतः कठोर है वहीं नारी मधुर और कोमल। नारी कोमल माधवी लता के समान है जो कि पुरुष रूपी वृक्ष का अवलम्बन खोजती है। कोमलता और मधुरता को महत्व प्रदान करने वाली पुरुषता एवं दृढ़ता पुरुष की ही है। ऋग्वेद काल से ही पुरुष सौन्दर्य के आदर्श गुण–बल, वीर्य, शौर्य एवं तेजस्विता को महत्व दिया जाता रहा हैं, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी, वायु के समान बलशाली पुरुष ही पोषण और रक्षण का कार्य करता है। हिन्दी साहित्य में आदिकाल से लेकर वर्तमान तक नारी सौन्दर्य की भाँति पुरुष सौन्दर्य को परिभाषित किया गया है। यह और बात है कि नारी सौन्दर्य की अपेक्षा पुरुष सौन्दर्य का चित्रण अत्यन्त हुआ है। साहित्यकारों की दृष्टि रमणी–रूप में अधिक होने के कारण नारी सौन्दर्य का पर्याप्त विकास हुआ हैं, अत्यन्त सौन्दर्य चित्रण होने के बाद भी पुरुष सौन्दर्य का जितना उद्घाटन हुआ है वह अपने आप में पूर्ण कहा जा सकता है। वीरगाथा काल में पुरुष का वीरोचित् सौन्दर्य की मंगलकारी, कल्याणकारी प्रतिस्थापना हुई है।

आधुनिक काल में भी साहित्य की प्रतिष्ठित पुरुषोचित विशेषताओं के साथ उसकी कमियों को भी समाहित कर उसका सौन्दर्य चित्रण किया गया है। राष्ट्र की रक्षा में बलिदान हो जाना वह अपना सौभाग्य समझता है, शत्रुओं को पराजित करने हेतु हुंकार भरता है परन्तु प्रणय–प्रसंगों में अत्यन्त निरीह और कोमल स्वभाव का हो

जाता है। पुरुष सौन्दर्य में साहित्यकारों ने उसकी दृढ़ता को दर्शाया है, साथ ही उसकी कोमल भावनाओं को भी दर्शाया है। अत्यन्त उदार होने के बाद भी वह प्रणय पर एकाधिकार चाहता है। ईर्ष्याग्नि में उसका रोम–रोम जल उठता है। आधुनिक साहित्य में पुरुष सौन्दर्य उसके गुणों और अवगुणों से एक साथ दीप्ति होकर और अधिक तेजमय होकर उभरा है। नारी की तरह, पुरुष सौन्दर्य की मांसलता, शारीरिकता का चित्रण साहित्य में अत्यल्प है। कहीं–कहीं उसके बाह्य सौन्दर्य को दर्शाने के लिए उसके शारीरिक अवयवों के सौन्दर्य को परिभाषित किया गया है, अधिकतर उसके आन्तरिक गुणों को ही विकसित करके पुरुष सौन्दर्य को सजाया–सँवारा गया है।

१ बाह्य

मानव का बाह्य सौन्दर्य हमेशा से साहित्यकारों को अपनी ओर आकृष्ट करता रहा है। पुरुष की बाह्य रूपरेखा, गठन, वर्ण दीप्ति और उसके विभिन्न अंगो का चित्रण किया जाता है। इसके अतिरिक्त वस्त्राभूषणों के सौन्दर्य को भी साहित्यकार मंडित करता है।

हरिऔध जी ने कृष्ण का जो चित्र प्रस्तुत किया है उनको देखते उनके गठे हुए शरीर और सौम्य भाव से उनके व्यक्तित्व की महानता का दर्शन होता है। राधा जब पवन को दूती बनाकर अपना संदेश श्री कृष्ण के पास भेजती है तो उनकी पहचान इस प्रकार बताती है।

नीचे फूले कमल दल सी
गात की श्यामता है।

पीला प्यारा वसन कटि में
पैन्हते हैं फबीला।''[1]

इस सौन्दर्य के साथ ही उनके दृश्यमान वपु में शक्ति की स्रोतस्विनी प्रवाहित दीखती है। आततातियों का मुकाबला करने योग्य उनका गठा हुआ शरीर कैसा है–

साँचे ढाला सकल वपु है
दिव्य सौंदर्य्यशाली
सत्पुष्पों सी सुरभि उस की
प्राण संपोषिका है।
दोनों कंधे बृषभ वर से,
है बड़े ही सजीले।
लम्बी बाँहे कलभ कर सी
शक्ति की पेटिका हैं।''[2]

श्री कृष्ण के मुख पर सौन्दर्य राशि प्रतिबिम्बत हो रही है।

''छलकती मुख की छवि–पुजता।
छिटिकती क्षति छू तन की छटा।
बगरती बर दीप्ति दिगन्त में।
क्षितिज में क्षणदा कर कान्ति सी।''[3]

लम्बी गर्दर, विशाल नेत्र, उन्नत एवं विशाल मस्तिष्क, चौडा वक्षस्थल, घुटनों तक लम्बी भुजाएँ सर्वश्रेष्ठ मानव के लक्षण होते है। श्रीकृष्ण की बाह्य सुन्दरता का कवि ने क्या खूब वर्णन किया है।

सबल–जानु विलम्बित वाहु थी।

अति–सुपुष्ट–समुन्नत वक्ष था।

वय–किशोर–कला लसितांग था।

मुख प्रफुल्लित पद्म–समान था।"[4]

षष्ठ सर्ग में हरिऔध जी ने श्रीकृष्ण के बाह्य सौन्दर्य का परम सुन्दर वर्णन किया है।

"छूटी काली अलक मुख की कान्ति को है बढाती।

सद्वस्त्रो में नवल–तन की फूटती सी प्रभा है।"[5]

साकेत के प्रथम सर्ग में उर्मिला ने चित्र के माध्यम से लक्ष्मण के शरीर के सुगठित अंगो को बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित किया है–

"अवयवों की गठन दिखला कर नई,

अमल जल पर कमल से फूले कई।

साथ ही सात्विक सुमन खिलने लगे,

लेखिका के हाथ कुछ हिलने लगे।"[6]

उर्मिला को यह भ्रान्ति हो गई है कि प्रियतम लक्ष्मण वनवास की अवधि समाप्त करके आ गए है वह लक्ष्मण के बाह्य सौन्दर्य का वर्णन करती है कि प्रियतम के सिर पर केशों का जटा–जूट बना है। मेरे लिए तो आज इस रूप में योग औश्र क्षेम दोनों सुलभ हो गये है। यथा–

"विकट क्या जटाजूट है बना,

भृकुटी युग्म में चाप– सा तना।

वदन है भरा मन्द हास से,

गलित चन्द्र भी श्री–विलास से।''[7]

श्री गुप्त जी ने दशम सर्ग में उर्मिला द्वारा दशरथ के चारो पुत्रों के सौन्दर्य और वीरता का सुन्दर वर्णन किया है।

''सरिते वरदेव भी मिले,
वह तेरे प्रिय पद्य थे खिले।
वह श्यामल गौर गात्र थे,
उनके–से कह, कौन पात्र थे?''[8]

उर्मिला स्वयंवर के समय राम और लक्ष्मण की वे दोनों की साँवली तथा गोरी मूर्तियों का वर्णन अपने सैकड़ो पुण्यों के फल के समान प्राप्त होने को कर रही है।

सरयू, वह फुल्ल वाटिका,
बन बैठी वर–वीथि, नाटिका।
युग श्यामल–गौर मूत्तियाँ,
हम दो की शत पुण्य–पूर्त्तियाँ।''[9]

आन्तरिक

बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य अधिक सुखद प्रतीत होता है इन वृत्तियों के आनन्द में साहित्यकार इतना निमग्न हो जाता है कि वह उसका अंकन किये बिना नहीं रह सकता है। यही कारण है कि धैर्य, दृढ़ता वीरत्व, पराक्रम, सत्यनिष्ठा आदि गुणों का सौन्दर्य व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट करता है।

इन पक्तियों में कवि ने श्री कृष्ण के आन्तरिक सौन्दर्य का वर्णन

किया है।

"कल कुवलय के से नेत्रवाले रसीले।

वर रचित फबीले पीत कौशेय शोभी।

गुणगण मणिमाली मंजुभाषी सजीले।

वह परम छबीले लाडिले नन्दजी के।"[10]

माता की इच्छा होती है कि उसका पुत्र शीघ्र ही बड़ा हो जाय, जिसमें कि उसका विवाह कर वह अपनी बधू को बहुत शीघ्र ही देख सके।

"होवेगा सो सुदिन जब मैं आँख से देख लूँगी।

पूरी होती सकल अपने चित्त की कामनायें।

ब्याहूंगी मैं जब सुअन को औ मिलेगी वधूटी।

तो जानूँगी अमरपुर की सिद्ध है सद्य आई।"[11]

कवि ने कृष्ण के सौन्दर्य का सहज विकास दिखाया है। उनके मधुर कल हास से सर्वश्र सौन्दर्य की आभा छिटकं जाया करती थी।

"कमल लोचन भी कल उक्ति से।

सकल को करते अति मुग्ध थे।

कलित क्रीड़न नूपुर नाद से।

भवन भी बनता अति भव्य था।"[12]

श्रीकृष्ण के उज्ज्वल गुण सदैव मन को मोहित किया करते थे।

"चरित्र ऐसा उनका विचित्र है।

प्रविष्ट होती जिसमें न बुद्धि है।

सदा बनाती मन को विमुग्ध है

अलौकिकालोकमयी गुणावली।''[13]

कवि ने उनके सौन्दर्य का वर्णन किया है।

''तदपि चित बना है श्याम का चारु ऐसा।

वह निज सुहृदो से थे स्वयं हार खाते।

वह कतिपय जाते खेल को थे जिताते।

सफलित करने को बालकों की उमंगे।''[14]

गुप्त जी ने श्री रामचन्द्र जी की मुख मुद्रा की सुन्दताका वर्णन वन को जाते समय वैसा ही किया जैसा कि उनकी मुख मण्डल की कान्ति राज्याभिषेक के अवसर पर थी–

''राम–भाव अभिषेक–समय जैया रहा,

वन जाते भी सहज सौम्य वैसा रहा।

वर्षा हो या ग्रीष्म, सिन्धु रहता वही,

मर्यादा की सदा साक्षिणी हे मही।'' [15]

साकेत के तृतीय सर्ग में श्री राम ने राजा दशरथ से उनकी आज्ञा का पालन करते हुए उन्हें समझाया कि यदि भरत राजा बन गए तो भी हमारा राज्य शासन होगा, कोई दूसरा तो शासक नहीं बनेगा। आन्तरिक सौन्दर्य का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है।

''पिता! इसके लिए ही ताप इतना।

तथा माँ को अहो! अभिशाप इतना।

न होगी अन्य की तो राज–सत्ता,

हमारी ही प्रकट होगी महत्ता।''[16]

राम अपने अनुज लक्ष्मण से कहते है कि मेरे सम्मुख पिता की आज्ञा की तुलना में इस राज्य का कुछ भी मूल्य नहीं है केवल अयोध्या को नही समस्त संसार को अपना ही राज्य मानो। गुप्त जी ने लोकहित अथवा लोक मंगल की भावना का प्रतिपादन किया है।

''उऋण होना कठिन है तात—ऋण से,

अधिक मुझको नहीं है राज्य—तृण से।

मनः शासक बनो तुम, हठ न ठानो,

अखिल संसार अपना राज्य जानो।''[17]

भरत ने भी अयोध्या में अपना रूप राम की तरह बना लिया है। भाई के प्रेम का अनूठा चित्रण गुप्त जी ने साकेत के एकादश सर्ग में किया है। यथा

''मिलें भरत में राम हमें तो,

मिले भरत को राम कभी,

वही रूप है वही रंग है,

वही जटाएँ, वही सभी।''[18]

अंजनी पुत्र हनुमान संजीविनी बूटी लाते समय जब भरत द्वारा धनुष बाण लगने पर घायल हो जाते है तो वह भरत के दर्शन पाकर अपने को धन्य मानते है।

''धन्य भाग्य, इस किंकर ने भी,

उनके शुभ दर्शन पाये।

जिनकी चर्चा कर सदैव ही

प्रभु के भी आँसू आये।''[19]

ईरान छोड़ने को कहने पर गयासवेग की पत्नी को जन्म भूमि से अनुराग की बात कहते हुए कवि कहता है।

''यह क्या कहा? छोड़ने को घर, यह मेरा प्यारा ईरान?
जहाँ हमारा जन्म हुआ है वही हमारा स्वर्ग स्थान।
हाय! हाय! यह क्या कह डाला? प्रिये! जरा फिर करो विचार,
छोड़ूँ किसे ? मातृभू पावन? बन उपवन अपना घरबार?[20]

नारी सौन्दर्य

ममतामयी, वात्सल्य की मूर्ति, स्नेह की मंदाकिनी और अपनी शारीरिक सुषमा के सौरभ से जगत के सुवासित करने वाली नारी का सौन्दर्य आदि काल से मानव–सौन्दर्यानुभूति का केन्द्र रहा है। सृष्टि के विकास के केन्द्र में नारी को ही रखा गया हैं नारी ही पुरुष की शक्ति है, प्रेरणा है। नारी की शक्ति और प्रेरणा के द्वारा ही पुरुष का विकास और पोषण हुआ ह। स्त्री पुरुष के आपसी समागम से ही सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ है। भारतीय सांस्कृतिक विचारधारा के अनुसार ''नारी पुरुष की अर्द्धांगिनी हैं, वह सृष्टि का साधन और प्रकृति का मूर्त होकर पुरुष के लिए सौन्दर्य, प्रेम, अनन्यता और आनन्द का कारण बनताी हैं इसलिए वह मान्या है, पूज्या है, आराध्या है, इसीलिए उसमें देवत्व है, और इसीलिए वह श्री है, शक्ति है, चिति है।'' यही कारण है कि भारतीयों ने अपनी कला की देवी का रूप नारी रूप में कल्पनामयी बनाया है। नारी को यकीनन सौन्दर्य और कला के समन्वय का मूर्त रूप कहा जा सकता है। कला संसार की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है जो कि नारी से ही

प्रेरणा, आलम्बन एवं आधार ग्रहण करती है। इसी कारण कला एवं नारी को एक दूसरे का पूरक कहा जा सकता है। नारी के सौन्दर्य को शोभा माना जाता है। उसके द्वारा ही सौन्दर्य शोभायमान होता है। तुलसीदास ने नारी को सुन्दरता को भी सुन्दर बनाने वाला कहा है। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द्र तो अपने उपन्यास गोदान के पात्र द्वारा अपनी अभिव्यक्ति कुछ इस तरह करते हैं– ''संसार में जो कुछ सुन्दर है उसी की प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूँ'' पन्त ने नारी हृदय में ही स्वर्ग की कल्पना की है–

''यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर
तो वह नारी उर के भीतर।''

साहित्य के इतिहास में आदि काल से अद्यतन कवि की, साहित्यकार की प्रेरणा नारी ही रही है। यह और बात है कि उसके स्वरूप, उसकी छवि में परिस्थितियों और परिवेश के अनुसार परिवर्तन होता रहा हैं। वैदिक काल में वह मंगलमथी उषा–सुन्दरी, विदुषी नारी के स्वरूप में प्रकट हुई है। संस्कृत काल में कालीदास की कला के सम्पर्क में यदि एक ओर वह कान्चनवर्णी तन्वंगी अंगों के बाह्य सौन्दर्य की दीप्ति कला रही थी, तो दूसरी ओर उसके हृदय में भी सुन्दर भावनाओं का सागर लहरा रहा है।'' वैदिक काल की मंगलमयी, विदुषी नारी वीर गाथा काल में नारी सौन्दर्य के चरम रूप को प्राप्त करती है। वह वीर पत्नी, वीर प्रसविनी एवं वीर भगिनी के रूप में अवतरित हुई है। सौन्दर्य का उसका उदात्त, साहसी स्वरूप अपने भाई–पिता आदि को युद्ध में वीरतापूर्ण क्रियाकलापों को प्रेरित करता है। वीगाथा काल की नारी साहस की प्रतिमूर्ति है, वहीं वह रीतिकाल में जीवन और जगत् से दूर वैभव और विलास में डूबी दिखाई गई है। रीतिकाल में नारी के मांसल सौन्दर्य को आधार बनाकर उसी शारीरिक छवि, उसकी मांसलता, उसके अंग प्रत्यंगो

का वर्णन किया गया था। बाद में पुनः वह अपनी श्रृंगारिकता को छिपाकर पवित्र प्रणय की पूर्णता प्राप्त करती है। नारी का पवित्र एवं सुन्दर स्वरूप छायावाद में प्रतिष्ठित हुआ है। इस काल की नारी में वासना की लालसा नहीं होती है। वरन् वह अपने आपको प्राकृतिक सौन्दर्य की पावनता से एकाकार कर लेती है। प्रकृति का सौन्दर्य ही नारी के पवित्र सौन्दर्य में प्रतिबिम्बित हो उठता है–

"जो जगत् की स्वामिनी, भामस्विनी तुम धन्य,
तुम प्रकृति के मुकुर का प्रतिबिम्ब रूप अनन्य।"

सरलता और सहजता उसका आभूषण बन जाते हैं। इस नारी के अंग–प्रत्यंग में छायावादी कवि को स्वर्गानुभूति होती है–

"स्नेहामयि, सुन्दरतामयि तुम्हारे, रोम–रोम से नारि
मुझे है स्नेह अपार, तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारि
मुझे है स्वर्गागार।"

प्रसाद ने भी नारी के रूप, विलास, यौवन को उभारा है परन्तु उसमें रीतिकालीन वासनात्मकता प्रकट नहीं हुई है। तन के ही नहीं, प्रसाद जी ने नारी के मन के चित्रों को उकेरा है। वक्षस्थल में दया, ममता, मधुरिमा से पूर्ण स्पन्दन को प्रसाद जी ने अपनी नारी का सौन्दर्य बनाया है। उनके लिए नारी विश्वास की प्रतिमा है। वह साक्षात श्रद्धा है। श्रद्धा में जिस प्रकार श्रद्धेय के सम्मान एवं मानव मांगल्य का सामंजस्य होता है, उसी प्रकार का सामंजस्य एवं समन्वय नारी में निहित है–

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पगतल में,
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में"

साहित्य में नारी का चित्रण अत्यधिक हुआ है। यद्यपि कुछ कालों में

साहित्यकारों ने नारी के नख–शिख वर्णन, उसकी मांसलता को ही वर्णित किया है किन्तु ज्यादातर कवियों साहित्यकारों ने नारी के महिमामयी, वात्सल्य, ममतामयी, करुणा के रूप को ही चित्रित किया है। नारी भावना का अलौकिक स्वरूप नारी सौन्दर्य के रूप में उभरकर सामने आया है। कहना अतिश्योक्ति न होगी कि साहित्यकारों अथवा कवियों ने नारी को श्रद्धा, गरिमा, लज्जा, करुणा, ममता, दुलार, सहिष्णुता के अप्रतिम सौन्दर्य से अलंकृत कर उसकी पावन प्रतिष्ठा की है।

१ बाह्य

साहित्यकार को नारी के बाह्य सौन्दर्य में उसके शारीरिक अंगो–उपागों, मुख–कपोल, नेत्र केश कटि, कर आदि में सौन्दर्य का बोध होता है और वह अपनी सौन्दर्य दृष्टि द्वार इन अंगो की शोभा को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। अंगो–उपांगों के सौन्दर्य के अतिरिक्त मान द्वारा धारण किये गये वस्त्रों और आभूषणों के द्वारा आकर्षित होने पर अथवा मानव की भाव भंगिमाओं से आकृष्ट होकर उसके सौन्दर्य को साहित्यकार अपनी लेखनी से दर्शाता है।

चतुर्थ सर्ग में श्री हरिऔध जी ने राधा के सौन्दर्य का वर्णन किया है।

"रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय कलिका राकेन्दु–विम्बानना।
तन्वंगी कल हासिनी सुरसिका क्रीड़ा कला पुत्तली।
शोभा–वारिधि की अमूतय–मणि सी लावण्य लीलामयी।
श्री राधा–मृदुभाषिणी मृगदृगी–माधुर्य्य की मूर्ति थी।"[21]

राधा के बाह्य सौन्दर्य का वर्णन कविने किया है।

थे बाला के दृग युगल के सामने पुष्प नाना।

जो हो ही के विकच, कर में भानु के साहते थे।

शोभा पाता कय कुसुम था लालिमा पा निराली।

सो यों बोली निकट उसके पा बड़ी ही व्यथा से।

श्री गुप्त जी ने उर्मिला के अंगो की सुन्दरता का वर्णन करते हुए उसकी तुलना अमूल्य पदार्थों से की है।

''जान पड़ता नेत्र देख बड़े बड़े,

हीरकों में गोल नीलम है जड़े।

पघरागों से अधर मानों बने,

मोतियों से दाँत निर्मित हैं घने।''[22]

उर्मिला के सौन्दर्य को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि मानों ये बस शाण पर चढ़ा कर कुशल शिल्पी ने बनाये हो और फिर इसमें प्राण डाल दिये हो।

''शाण पर सब अंग मानो चढ़ चुकें,

प्राण फिर उनमें पड़े जब गढ़ चुके।

देखती है जब जिधर यह सुन्दरी,

दमकती है दामनी–सी द्युति भरी।''[23]

उर्मिला लक्ष्मण प्रेम संवाद के समय लक्ष्मण कहते है कि तुम्हारे सुन्दर मधुर होठों में अमृत भरा हुआ है, जो कि विरक्त और नीरस मन में भी सरसता का मृदु संचार कर देते है।

शस्त्रधारी हो न तुम, विष के बुझे,

क्यों न काँटो में घसीटोगे मुझे!

अमृत भी पल्लव पुटों में है भरा,

विरस मन को भी बना दे जो हरा।"[24]

उर्मिला के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए श्री गुप्त जी ने साकेत के प्रथम सर्ग में लिखा है कि उर्मिला ने पृथ्वी पर झुककर अपने प्रियतम लक्ष्मण से विदा लेते समय उसका मस्तक अर्द्धचन्द्र की भाँति भूमितल को स्पर्श कर रहा था झुकने से उसकी केशराशि भूमि पर फैल कर ऐसी लगती थी मानों प्रेम के अनेक नेत्र वहाँ विछ रहे हो।

"चूमता था भूमितल को अर्द्ध विधु सा भाल,
विछ रहे थे प्रेम के दृग जाल बनकर बाल।"[25]

श्री गुप्त जी ने सीता जी के सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार किया है कि सीता जी ने घूँघट की जडाऊ गोट इस प्रकार शोभायमान हो रही थी जैसा कि बादल रूपी वस्त्र पर बिजली चमक रही हो।

"गोट जडाऊँ घूघँट की
बिजली जलदोपन पट की
परिधि बनी थी विधु मुख की,
सीमा थी सुषमा–सुख की।"[26]

कवि ने सीता जी के रूप सौन्दर्य का वर्णन मर्यादित रूप में किया है। इसलिए आरम्भ में ही वह 'सीता–माता' का संकेत देते है राजकुल की वधू सीता 'अंचल–पट कटि में खोंसे एक सामान्य नारी की भाँति ही परिश्रमरत है।

"अंचल पट कटि में खोस, कछोटा मारे,
सीता माता थीं आज नई धज धारे।
अंकुर–हितकर वे कलश–पयोधर पावन,

जन–मातृ–गर्वमय कुशल वदन भव–भावन।''[27]

माण्डवी साकेत के सन्त की पत्नी हैं। उसका चरित्र साकेतकार की निजी दृष्टि है। साकेत के एकादर्श सर्ग में हम माण्डवी को अपने पति की सेवा में निरत देखते है। गुप्त जी ने माण्डवी के सौन्दर्य का परिचय इन शब्दों में दिया है।

''चार चूडियाँ थीं हाथों में,

माथे पर सिन्दूरी बिन्दु,

पीताम्बर पहने थी सुमुखी

कहाँ असित नभ का वह इन्दु?''[28]

सती शिरोमणि उर्मिला साकेत की नायिका है। वह रघुकुल की असहाय बहू, मार्यादा–पुरुषोत्तम रामचन्द्र की अनुज बधू भ्रात्भक्त लक्ष्मण की पत्नी, ज्ञानी जनक की पुत्री और पति प्राण सीता की छोटी बहन है। उसका हृदय त्याग और विशुद्ध प्रेम से परिपूर्ण हैं। साकेत के आरम्भ में उर्मिला की आकृति का मनोरम चित्र कवि ने इन शब्दों में अंकित किया है।

''यह सजीव सुवर्ण की प्रतिमा नई,

आप विधि के हाथ में ढाली गई।

कनक–लतिका भी कमल सी कोमला,

धन्य है उस कल्प शिल्पी की कला।''[29]

उर्मिला इस धरती पर खिला हुआ एक स्वर्गीय सुमन है जो अपने शील सौरभ से सारे संसार को सुरभित करता है

''स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला,

नाम है उचित ही 'उर्मिला।

शील–सौरभ की तरंगे आ रही,

दिव्य भाव भवब्धि में है ला रही।"[30]

प्रभात होता है। प्राची में अरुणाभ किरणें क्षितिज को आवृत कर लेती है, तभी राज प्रासाद में अरुण वस्त्राभिमण्डित, नवल ऊषा सी एक रमणी दृष्टिगोचर होती है--

"अरुण पट पहने हुए आह्मद में,

कौन यह बाला खड़ी प्रसाद में?

प्रकट–मूर्तिमयी ऊषा ही तो नहीं?"[31]

उर्मिला का सौन्दर्य वर्णन करते समय कवि की लेखनी विश्राम नहीं लेना चाहती वह एक के बाद एक चित्र प्रस्तुत करती जाती है। जैसे– नेत्र, अधर, केश कलाइयाँ आदि।

"जान पड़ता नेत्र देख बड़े–बड़े–

हीरकों में गोल नीलम है जड़े।

पद्मरागों से अधर मानो बने,

मोतियों से दाँत निर्मित है घने।

और इसका हृदय किससे है बना,

वह हृदय ही है कि जिससे है बना।

प्रेम पूरित सरल कोमल चित्त से

तुल्यता की जा सके किस वित्त से?

शाण पर सब अंग मानो चढ़ चुके

प्राण फिर उनमें पड़े जब गढ़ चुके।

झलकता आता अभी तारुण्य है।"[32]

विवाह के पश्चात प्रथम सर्ग में दाम्पत्य जीवन की झलक नितान्त मौलिक है। उर्मिला का अरुण पट पहनकर प्रसाद में खड़ा होना, लक्ष्मण का आगमन, मधुर वार्ता का सौन्दर्य वर्ण भी नवीन है। यथा–

"लोल कुण्डल मण्डलाकृति गोल है
घन–पटल से केश, कान्त कपोल है।
देखती है जब जिधर यह सुन्दरी
दमकती है दामिनी सी द्युति भरी"[33]

अनारकली की सौन्दर्य प्रतिभा एवं कला प्रदर्शन का भक्त जी ने वर्णन बड़ा सटीक माध्यम से किया है।

"लख कला प्रदर्शन उसका, उसका सौन्दर्य निराला।
सुध खो सलीम तन मन की, हो गया प्रेम मतवाला।"[34]

नूरजहाँ के बाह्य सौन्दर्य का वर्णन कवि करता है।

"बासंती मृदु समीर खा–खा लतिका यौवन बढ़ता जाता।
है मेहरुन्निसा सुन्दरी पर दिन–दिन पानी चढ़ता जाता।
यह किरण जाल सी उज्जवल है मानस की विमल मराली है।
अँग अँग में चपला खेल रही है फिर भी भोली भाली है।"[35]

आन्तरिक

व्यक्ति का आन्तरिक सौन्दर्य चिरकाल तक स्थायी रहता है और हृदय को तन–मन को आनन्दित करता है। आनन्दानुभूति कराना सौन्दर्य का

उद्देश्य होता है और इसके बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य ज्यादा सफल सिद्ध होता है।

माता यशोदा जीवन भर आपत्तियों को सहन कर सकती है किन्तु अपने प्रिय कृष्ण को अपने से दूर नही कर सकती।

''बहुत सह चुकी हूँ और कैसे सहूँगी।
पति सदृश कलेजा मैं कहाँ पा सकूँगी।
इस कृशित हमारे गात को प्राण त्यागो।
बन विवश नही तो नित्य रो रो मरूँगी।''[36]

गोपियों का आन्तरिक सौन्दर्य का वर्णन दृष्टव्य है–

''भूल जाता वह स्वजन हे चित्त में जो बसा हो।
देखी जा के सु–छवि जिसकी लोचनों में रमी हो।
कैसे भूलें कुँवर जिनमें चित्त ही जा बसा है।
प्यारी–शोभा निरख जिसकी आप आँखे रमी है।''[37]

वह आगे कहती है–

''नीला प्यारा जलद जिनके लोचनों मे रमा है।
कैसे होंगी अनुरत कभी धूम के पुंज में वे।
जो आसक्ता स्व प्रियवर में वस्तुतः हो चुकी है।
वे देवेंगी हृदय–तल में अन्य को स्थान कैसे।''[38]

यदि विधाता ने संसार में सौन्दर्य का निर्माण किया है तो कृष्ण जैसा महान आकर्षण रूप देखकर सुन्दर बालिकाएँ आकर्षित क्यों न होगी।

''जो धाता ने अवनि तल में रूप की सृष्टि की है।

तो क्यों ऊधो न वह नर के मोह काहेतु होगा।

माधो जैसे रुचिर जन के रूपप कान्ति देखें

क्यों मोहेगी न बहु सुमना सुन्दरी बालिकायें।''[39]

गुप्त जी ने प्रेमियों की प्रेम की रीति का वर्णन किया है कि इस प्रेम के खेल में कैसी आश्चर्य की बात है कि हार में भी जीत है।

''हार जाते पति कभी, पत्नी कभी,

किन्तु वे होते अधिक हर्षित तभी।

प्रेमियों का प्रेम गीतातीत है,

हार में जिसमें परस्पर जीत है।''[40]

साकेत में वनवास के समय सीता जी गाँव की नारियों से बिना किसी भेद–भाव के प्रेम पूर्वक मिली उस समूह में सीता जी इस प्रकार शोभायमान थी, जैसे कि लताओं के बीच में कोई पुष्प कलिका हो–

''जुड़ आई थी वहाँ नारियाँ ग्राम की,

वे साधक ही सिद्ध हुई विश्राम की।

सीता सबसे प्रेम–भावपूर्वक मिली,

लतिकाओं में कुसुमकली सी वे खिंली।''[41]

विरहिणी उर्मिला का यह दारुण वियोग तो योग साधना से भी आगे बढ़ गया था वह स्वयं अपनी सुध बुध भूलकर आठ पहर, चौसठ घड़ी अपने पति की ध्यान करती है आत्म ज्ञान भी पति के ध्यान की तुलना में पीछे रह गया।

''आँखों में प्रिय मूर्ति थी, भूले थे सब भोग,

हुआ योग से भी अधिक उसका विषय वियोग।

आठ पहर चौंसठ घड़ी स्वामी का ही ध्यान,

छूट गया पीछे स्वयं उससे आत्मज्ञान!"[42]

उर्मिला स्वयं दुखी है किन्तु वह दूसरो को दुखी नहीं देख सकती है। नारी के आन्तरिक सौन्दर्य का उदाहरण–

"तरसूँ मुझ सी मैं ही, सरसे–हरसे हँसे प्रकृति प्यारी,

सबको सुख होगा तो मेरी भी आयेगी बारी।"[43]

उर्मिला अपने प्रेम से कर्तव्य को बड़ा समझती है। वह अपने प्रिय के कर्तव्य पथ में बाधा न डालकर उनके भ्रातृ प्रेम को आदर्श को गौरवान्वित करती है–

"है प्रेम स्वयं कर्त्तव्य बड़ा, जो सींच रहा है तुम्हे खड़ा।

यह भातृ स्नेह न ऊना हो, लोगों ने लिए नमूना हो।"[44]

चित्रकूट में सीता के चातुर्य से उर्मिला और लक्ष्मण का मिलन होता ह। इस मिलन के अवसर पर उर्मिला की विरहजनित कृशता को देखकर लक्ष्मण स्मब्ध रह जाते है पर उर्मिला इस विषय परिस्थिति में भी अपने कर्तव्य को नही भूलती। वह कहती है–

"मेरे उपवन के हरिण, आज वनचारी,

मैं बाँध न लूँगी तुम्हे, तजो भय भारी।"[45]

साकेत के उर्मिला और लक्ष्मण का जीवन ऐसा ही आदर्श जीवन है। अपने आतंरिक सुख दुख में लक्ष्मण जैसे साथी की आवश्यकता अनुभव करती हुई, समस्त नारी जाति की आकांक्षाओं के प्रतिनिधि रूप में उर्मिला कहती है।–

खोजती है किन्तु आश्रयमात्र हम

चाहती है एक तुम सा पात्र हम

आन्तरिक सुख दुःख हम जिसमें धरें,

और निज भव—भार यों हलका करे।[46]

साकेत का आरम्भ लक्ष्मण और उर्मिला की पारस्परिक विनोदपूर्ण वार्ता से होता है लक्ष्मण दाम्पत्य जीवन के आदर्श को स्पष्ट करते हुए उर्मिला से कहते है, ठीक उसी प्रकार लक्ष्मण भी प्रेयसी के सहज संसर्ग के वैशिष्ट्य को स्वीकार करते है—

"भूमि के कोटर, गुहा गिरि गर्त भी,

शून्यता नभ की सलिल—आवर्त भी,

प्रेयसी, किसके सहज संसर्ग से

दीखते है प्राणियों को स्वर्ग से?"[47]

सीता का राम के साथ वन गमन इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि वे पति के सुख दुख में समभाव से हाथ बँटाना अपना परम कर्तव्य समझती है।

दम्पति विज्ञान का इससे मधुर और कौन सा व्याख्यान हो सकता है। भारतीय सामाजिक परम्परा में इसलिए तो पति पत्नी का सम्बन्ध अटूट माना गया है कि दोनों को एक दूसरे की अनिवार्य आवश्यकता होती है जिससे कण्टकाकीर्ण जीवन राह भी हँसते खेलते पार कर ली जाए। स्त्री का हृदय भावना—प्रदान होता है अथवा यह कहिये कि स्त्री स्वयं हृदय प्रधान होती है। अस्तु उसको ऐसे पात्र की आवश्यकता अधिक रहती है जिसमें वह अपने तन—मन की भावुकता को उँडेल सके। उर्मिला और लक्ष्मण को दाम्पत्य जीवन का संयोग पक्ष ऐसे ही मधुर चित्रों से भरा हुआ है।

अनारकली सलीम से वासनारहित मन से एक बार निश्चल प्रेम

पूर्वक दर्शन करना चाहती है।

''कुछ नहीं वासना मन में हाँ एक साध है बाकी।

प्यासी आंखे कर लेती प्रियतम फिर इक झाँकी।''[48]

अनारकली भाव विभोर व्याकुल होकर सलीम से कहती है।

''मेरे पीछे मत रोना यदि ध्यान जरा भी आये।

मैं जी न सकूँगी मरकर कितना दृग नीर बहाये।''[49]

नूरजहाँ विवाह उपरान्त सलीम के आने पर कहती है और अपना दम्पति धर्म निभाती है।

''नही यहाँ साम्राज्य तुम्हारा, मेरा पावन घर है।

इसकी दीवारों के भीतर दम्पति धर्म अमर है।

नहीं तुम्हारा राज्य चाहती अपने घर की रानी।

ऐसे नहीं गिराना होता कभी आँख का पानी।''[50]

(ग) बाल सौन्दर्य

पुरुष और नारी सौन्दर्य की भाँति बाल सौन्दर्य का भी साहित्य में अपना विशेष महत्व हैं। कवि शिरोमणि सूरदास को तो वात्सल्य का ही कवि कहा गया है। उनकी बाल छवि का सौन्दर्य अभी तक हिन्दी साहित्यकारों को आलोकित करता है। बालक की सरल, सहज, स्वाभाविक चेष्टाएँ, उसकी भोली मनोहर आकृति, भाव भगिमाएँ अपना अलग अनुपम सौन्दर्य प्रकट करती है। साहित्य में बाल चित्रण की परम्परा प्राचीन काल से ही चली हा रही है। बालरूप में कृष्ण और राम का

चित्रण अत्यधिक हुआ है। 'कृष्ण' के बाल रूप को माध्यम बनाकर सूरदास के अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी काव्य रचनाओं में सौन्दर्य की प्रतिस्थापना की हैं आधुनिक युग में बाल रूप का वर्णन उतनी विकसित अवस्था में नहीं हुआ है, जितना कि बाल कृष्ण का हुआ है। अवसरानुसार जहाँ जैसा अवकाश मिला है बाल छवि को उसी वर्तमान साहित्यकारों ने प्रकट किया है। विस्तृत रूप में देखा जाये तो भक्ति काल की अपेक्षा बाल सौन्दर्य का चित्रण कम ही अथवा नहीं के बराबर हुआ है।

१ बाह्य

भारतीय साहित्यकारों ने बाल सौन्दर्य के बाह्य सौन्दर्य को बड़ी ही सटीकता से ग्रहीत किया हैं। सूरदास, तुलसीदास आदि ने अपने काव्य में बाल सौन्दर्य के अनुपम उदाहरण दिये है।

बच्चे के सुख के लिए माता क्या क्या नहीं करती। ममता के इसी रूप का कवि ने छन्दों में वर्णन किया है।

"निकट कोमल तप्त मुकुन्द के।
कलपती जननी उपविष्ट थी।
अति असंयत अश्रु प्रवाह से।
वदन–मण्डल प्लावित था हुआ।"[51]

हरिऔध जी ने श्रीकृष्ण एवं राधा की बाल क्रीड़ाओं से परम मनोहारिणी छटा का दर्शन कराया है।

कलित क्रीड़न से इनके कभी।

ललित हो उठता गृह नन्द का।

उमड़ सी पड़ती छवि थी कभी।

वर निकेतन में वृषभानु के।"[52]

श्री कृष्ण की बाल शोभा का वर्णन कवि ने अष्टम सर्ग में किया है।

"दसन दो हँसते मुख मंजु में।

दरसते अति ही कमनीय थे।

नवल कोमल पंकज कोष में।

विलसते बिवि मौक्तिक हों यथा।"[53]

माँ यशोदा के आन्तरिक भावो के विश्लेषण में वात्सल्य भाव का सुन्दर चित्र प्रस्तुत है। प्रातः ही बालक कृष्ण को मथुरा जाना है। इस चिन्ता में कृष्ण के पास बैठी वे रो रही है। बार–बार सुत के मुख कंज को वे देखती है–

"पट हटा सुत के मुख कंज की,

विकचता जब थीं अवलोकती

विवश–सी तब थीं फिर देखती।

सरलता, मृदुता सुकुमारता"[54]

जिस प्रकार बच्चों के हठ पर माता पिता उन्हें सभाल कर रख देती है। उसी प्रकार रामचन्द्र जी की प्रेममयी वाणी सुनकर अयोध्यावासी मंत्र मुग्ध खड़े हो गये।

"क्षिप्त खिलौने देख हठीले बाल के,

रख दे माँ ज्यों उन्हें सँभाल के।

विभु--वाणी से वही, पड़े थे जो अड़े,

मन्त्रमुग्ध से हुए अलग उठकर खडे।"[55]

गुप्त जी ने श्री राम के बाल सौन्दर्य का वर्णन बड़े ही अनूठे ढग से किया है। घर पर सभी की नाटक की मण्डली की भाँति उपस्थित शोभायमान हो रही है।

"फिरती सब घूम चौक में,

गिरती थी झुक झुक चौंक में।

मचती वह धूत चौक में,

मचती माँ तक चूम चौक में।

दिखला कर दृश्य हाथ से,

कहतीं वे निज मग्न नाथ से--

यह लो, अब तो बनी मिली,

घर की ही यह नाट्य मण्डली।"[56]

गुरुभक्त सिंह ने नूरजहाँ की बाल छवि का दूसरे सर्ग में सुन्दर चित्रण किया है।

"कैसी प्यारी यह कलिका है नवजात बालिका सोई है।

वह पड़ी अकेली देख रही है पास न उसके कोई है।

है खेल रही उससे आकर क्वाँरी क्वाँरी हिम बालाएँ।

हो गई निछावर इस छवि पर नभ की सब तारक मालाएँ।"[57]

प्रकृति के माध्यम से नन्ही बालिका के संग खेलना उक्त पंक्ति में दृष्टिगोचर होता है।

"मृदु कलियाँ चुटकी बजा– बजा कर बच्चे को बहलाती हैं।
कोमल प्रभात–किरणे हिमकण में नहा नहा नहलाती है।
यह भावी के रहस्यमय अभिनय की पहिली ही झाँकी है।
यह सुभग चित्र किसने खीचा? क्या मूर्ति गढ़ी यह बाँकी है?"[58]

नूरजहाँ के बाल्यपन का सौन्दर्य चित्रण भी देखते ही बनता है।

"जब दाँत दूध के टूटे चंचल बालापन आया।
तब बाल सुलभ क्रीड़ा ने आनन्द खूब छलकाया।
गुड़ियों से ब्याह रचाये मिट्टी के बना घिरौदे।
गढ़ गढ़ मूरतें बहुत सी नन्हे पैरो से रौदे।"[59]

२ आन्तरिक

सौन्दर्य का आन्तरिक एवं पावन रूप तो सत्यं शिवं सुन्दर में विद्यमान है। बाल आन्तरिक सौन्दर्य व्यक्ति के नीरस जीवन में एक गति प्रदान करता है। सुखद प्रतीत होता है। आनन्ददायक होता है।

श्री कृष्ण ने जब घुटनों पर चलना प्रारम्भ किया था तो कृष्ण का बाल सौन्दर्य सर्वत्र बिखर गया था।

"जननि--मानस पुण्य–पयोधि में।
लहर एक उठी सुख–मूल थी।
वह सु–वासर था ब्रज के लिये
जब चले घुटनों ब्रज चन्द्र थे।"[60]

उनकी किलकारी से सर्वत्र सुख छा जाता था

उमगते जननी मुख देखते।

किलकते हँसते जब लाड़िले।

अजिर में घुटनों चलते रहे।

बितरते तब भूरि विनोद थे।''[61]

कृष्ण के चले जाने के बाद माँ यशोदा नित्य देवताओं को मनाती और ज्यातिषियों से पूछती थी कि उनका पुत्र कब लौटेगा–

''प्रतिदिन कितने ही देवता थीं मनातीं।

बहु यजन कराती विप्र के वृन्द से थीं।

नित घर पर कोई ज्योतिषी थीं बुलाती।

निज प्रिय सुत आना पूछने को यशोदा।''[62]

कृष्ण के पास से अकेले ही जब नन्द लौट आते है तो यशोदा निराश होकर मूर्छित हो उठतीं है और संज्ञा आने पर पूछती है।

''प्रिय पति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है?

दुख जलधि निमग्ना का सहारा कहाँ है?''[63]

वन जाते समय राम जिस समय माता कौशल्या के पास पहुँचे वे देर्वाचना में लगी हुई थी। नवीन परिस्थिति का ज्ञान उन्हें नहीं था। अतः उन्हें देखते ही रोली–अक्षत का उपक्रम करती हुई बोली–

::जिओ–जिओ बेटा! आओ,

पूजा का प्रसाद पाओ।''[64]

किन्तु राम ने जब अपने वन जाने की बात उन्हें बताई तो वे सहसा

विश्वास न कर सकी, यह जानते हुए भी कि कैकयी ही इस सारे अनिष्ट की जड़ है वे उसे कोई दोष न देकर उसके वात्सल्य की प्रशंसा ही करती है–

पुत्र स्नेह धन्य उनका,

हठ है ह्रदय जन्य उनका।"[65]

इसी प्रकार जब हनुमान से लक्ष्मण शक्ति का समाचार सुनकर शत्रुघ्न आदि ससैन्य लंका जाने को तैयार होने लगते है तो वे विचलित हो उठती है और वात्सल्यकातर स्वरों में कहती है–

"बेटा, बेटा नहीं समझती हूँ यह सब मैं,

बहुत सह चुकी, और नहीं सह सकती अब मैं।

हाय! गये सो गये, रह गये सो रह जावें,

जाने दूँगी तुम्हें न, वे आवें जब आवें

× × ×

देखूँ तुमको कौन छीनने मुझसे आता।"[66]

कैकयी के वात्सल्य में दीनता नहीं है। उसमे ममत्व और मोह के साथ–साथ एक वेग और आग है। वह पुत्रों से अत्यधिक प्रेम करती है राम उसे भरत से अधिक प्यारे है तभी वह यह कहती है–

होने पर प्रायः अर्द्धरात्रि अन्धेरी

जीजी आकर करती पुकार थी मेरी

लो कुहुकिन अपना कुहुक, राम यह जागा।

निज मंझरी याँ का मुख न देख उठ भागा।

है करों में भूरि भूरि भलाइयाँ

लचक जाती अन्यथा कलाइयाँ
चूड़ियों के अर्थ, जो है मणिमयी
अंग की ही कान्ति कुन्दन बन गयी।
एक ओर विशाल दर्पण हे लगा।
पार्श्व से प्रतिबिम्ब जिसमें हे जगा।
मन्दिरस्था कौन यह देवी भला?
किस कृति के अर्थ है इसकी कला?
स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला
नाम है इसका उचित ही 'उर्मिला'।
दिव्य भव भवाब्धि में है ला रही।

कौशल्या पुत्र के दोष को क्षमा याचना करने तथा भीख माँगने तक के लिए सहज तैयार हो जाती है आन्तरिक सौन्दर्य का अनुपम उदाहरण है।

"अभी प्रार्थिनी मैं हूँगी,
प्रभु से क्षमा माँग लूँगी।
मुझे राम की भीख मिले।"

वन में दूर होने पर भी सीता घर की शान्ति के लिए चिन्तित रहती है प्रकृति का यह सारतम गार्हस्थ जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है–

"गृह कलह शान्त हो, हाय! कुशल हो कुल की,
अक्षुण्ण अतुलता रहे सदैव अतुल की।"

इस प्रकार भाभी के रूप में उने मातृवत् स्नेह की सहजता भी अवर्णनीय है–

'मैं आम्बासम आशीष तुम्हें दू आओ,

निज अग्रज से भी शुभ्र सुयश तुम पाओ।

राम लक्ष्मण और सीता के वन चले जाने पर दशरथ की मृत्यु हो गई। भरत ने ननिहाल से वापस आने पर जब इन सबका मूल अपनी माँ को समझकर उसकी कड़ी भर्त्सना की तो उसका ममत्व व्याकुल हो उठा और वह भरत से बोली–

"सब करे मेरा महा अपवाद,

किन्तु उठ ओ भरत, मेरा प्यार

चाहता है एक तेरा प्यार,

राज्य कर उठ वत्स मेरे बाल,

मैं नरक भोगूँ भले चिरकाल।"[67]

कैकयी का हृदय भी वात्सल्य की भावनाओं से भरा हुआ है।

(घ) मानवेतर चेतन जगत् अर्थात् पशु पक्षी आदि

श्री कृष्ण की मुरली के सस्वर होते ही क्षण भर में विविध (जाति एवं वर्ण) की गौए का समूह में आने का चित्रण कवि ने अपनी लेखनी के माध्यम से सुन्दर किया है

निमिष में वन–व्यापित वीथिका।

विविध–धेनु–विभूषित हो गई।

धवल धूसर बत्स समूह भी।

विलसता जिनके दल साथ था।"[68]

कवि ने द्वादश सर्ग में मोरो के नृत्य का सुन्दर वर्णन किया है।

विपुल मोर लिये बहु–मोरिनी।

विहरते सुख से स–विनोद थे।

मरकतोपम पुच्छ–प्रभाव से।

मणि मयी कर कानन कुंज को।"[69]

उर्मिला ने अपने सुन्दर नेत्रों से तोते की ओर दृष्टिपात किया ऐसा लगा दो सुन्दर खंजन पक्षियों की सृष्टि हो गई हो पक्षी सौन्दर्य का वर्णन कवि ने निम्न प्रकार किया है।

"उर्मिला ने कीर –सम्मुख दृष्टि की,

या वहाँ दो खंजनों की सृष्टि की।

मौन होकर कीर तब विस्मित हुआ,

रह गया वह देखता सा स्थित हुआ।"[70]

सीता जी वन के वातावरण की व्याख्या करते हुए श्री राम से कहती है कि पशु पक्षियों के साथ वन राज्य की मैं रानी हूँगी–

"मदकल कोकिल गावेंगे,

मेघ मृदंग बजावेंगे।

नाचेंगें मयूर मानी,

हूँगी मैं वन की रानी।"[71]

पंचम सर्ग में सीता ने राम से कहा कि यह पक्षी सुन्दर रीति से गरदन मोड़े हुए बड़ी मस्ती के साथ हमे देख रहा है। सुन्दर चित्रण किया है।

"छाती पर भर दिये, अंग ढीला किये,

देखो, ग्रीवा–भंग संग किस ढ़ग से,
देख रहा है हमें विहंग उमंग से।
पाता है जो जहाँ ठौर, उगता वही,
मिलता है जो जहाँ, चुगता वही।
ठीक यहाँ पर शल्य छोड़कर शल गया,
नाग रहे पर काम तुम्हारा चल गया।
मुस्तकगन्धा खुदी मृत्तिका है इधर,
बुने आर्द्रपदचिह्न गये शूकर जिधर।"[72]

सीता को अपने प्रिय पति के साथ वन मे भी सब वस्तुएँ सुख और मंगल प्रदान करने वाली है मोरो, हिरनो, नीलकण्ठ, चातक, गौरैया तथा भंवरे, तितलियों के स्वच्छन्द विचरण से कुटिया की शोभा राजभवन जैसी है।

"नाचो मयूर, नाचो कपोत के जोड़े,
नाचों कुरंग, तुम लो उड़ान के तोड़े।
गाओं दिवि, चातक, चटक, भृंग भय छोड़े,
वैदेही के वनवास वर्ष है थोड़े।"[73]

बसन्त काल में कोयल को कूकते हुए सुनकर उर्मिला कहती है, हे कोयल, मुझे यह बताओं कि यह तुम्हारी कैसी कूक है। जिसको सुनकर मेरे हृदय में हूक उठती है।

"उठती है उर में हाय! हूक,
ओ कोइल, कह, कौन कूक?
क्या ही सकरुण, दारुण, गभीर,

निकली है नभ का चित्त चीर,

होते है दो दो दृग सनीर।''[74]

लक्ष्मण ने कभी उपहास में उर्मिला से यह शब्द कहे होंगे हाय! रूठो न रानी।'' यही अब तोता उर्मिला को यह वियोग की स्थिति में देखकर कह रहा है।

सखि, विहग उड़ा दे, हो सभी मुक्तिमानी,

सुन शठ शुक--वाणी हाय! रूठो न रानी।

खग, जनकपुरी की ब्याह दूँ सारिका मैं।

तदपि यह वही की त्यक्त हूँ दारिका मैं।''[75]

सीता हरण के समय वृद्ध वीर जटायु ने उड़कर दुष्ट रावण पर प्रहार किया। गुप्ता जी ने जटायु के माध्यम से सौन्दर्य का चित्रण किया है--

''वृद्ध जटायु वीर ने खल के,

सिर पर उड़ आघात किया,

उसका पक्ष किन्तु पापी ने,

काट केतु --सा गिरा दिया।''[76]

नूरजहाँ के दूसरे सर्ग में गुरुभक्त सिंह ने अपने काव्य में प्रकृति के अनूठे सौन्दर्य में पशु पक्षियों में महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

वन विलाव हाँ घूम रहे थे उस धुस की दीवारो पर।

गृद्धराज पहरे पर बैठा देख रहा था इधर उधर।

टूटे केतु--दंड पर बैठा गरुड़ पंख फैलाता है।

मानो अपनी पंख--पताका ऊँचे चढ़ फ़ैलाता है।''[77]

दसवें सर्ग में भी आपने पशु–पक्षियों का एक साथ प्रयोग करते हुए लिखा है–

"रंग रंग के तोता मैंना जहाँ विहरते दल के दल।
चातक और चकोर कोकिला, मोर, धनेश, लवा, दहियल।
सरि के तट पर चाहा, बगुला, मछुवा, सारस, आँजन ढेंक,
बतें, लालसर, टीका, चकवा विहर रहे है विहग अनेक।"[78]

संदर्भ सूची

1. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' षष्ठ सर्ग, पृ0 54
2. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' षष्ठ सर्ग, पृ0 54
3. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' प्रथम सर्ग, पृ0 4
4. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' प्रथम सर्ग, पृ0 4
5. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' षष्ठ सर्ग, पृ0 54
6. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 13
7. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, नवम सर्ग, पृ0 185
8. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, दशम सर्ग, पृ0 199
9. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, दशम सर्ग, पृ0 203
10. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' चतुर्थ सर्ग, पृ0 32
11. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' अष्टम सर्ग, पृ0 74
12. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' अष्टम सर्ग, पृ0 73
13. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' त्रयोदश सर्ग, पृ0 136
14. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' त्रयोदश सर्ग, पृ0 145
15. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, पंचम सर्ग, पृ0 63
16. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, तृतीय सर्ग, पृ0 33
17. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, तृतीय सर्ग, पृ0 37
18. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, एकादश सर्ग, पृ0 217

19. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, एकादश सर्ग, पृ0 237

20. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह 'भक्त', प्रथम सर्ग, पृ0 5

21. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' चतुर्थ सर्ग, पृ0 29

22. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 6

23. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 7

24. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 9

25. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 14

26. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, चतुर्थ सर्ग, पृ0 43

27. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, अष्टम सर्ग, पृ0 117

28. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, एकादश सर्ग, पृ0 217

29. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 6

30. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 7

31. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 6

32. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 6, 7

33. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 7

34. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, तीसरा सर्ग, पृ0 24

35. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, छठवा सर्ग, पृ0 44

36. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' सप्तम सर्ग, पृ0 64

37. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' चतुर्दश सर्ग, पृ0 154

38. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' चतुर्दश सर्ग, पृ0 156

39. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' चतुर्दश सर्ग, पृ0 157

40. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 10

41. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, पंचम सर्ग, पृ0 74

42. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, नवम सर्ग, पृ0 144

43. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, नवम सर्ग, पृ0 149

44. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, षष्ट सर्ग, पृ0 83

45. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, अष्टम सर्ग, पृ0 141

46. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 9

47. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 9

48. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, चौथा सर्ग, पृ0 28

49. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, चौथा सर्ग, पृ0 30

50. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, नवां सर्ग, पृ0 69

51. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' तृतीय सर्ग, पृ0 20

52. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' चतुर्थ सर्ग, पृ0 30

53. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' अष्टम सर्ग, पृ0 69

54. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' तृतीय सर्ग, पृ0 21

55. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, पंचम सर्ग, पृ0 65

56. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, दशम सर्ग, पृ0 194

57. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, दूसरा सर्ग, पृ0 17

58. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, दूसरा सर्ग, पृ0 17

59. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, दूसरा सर्ग, पृ0 19, 20

60. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' अष्टम सर्ग, पृ0 70

61. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' अष्टम सर्ग, पृ0 71

62. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' षष्ठ सर्ग, पृ0 49

63. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' सप्तम सर्ग, पृ0 59

64. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, चतुर्थ सर्ग, पृ0 44

65. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, चतुर्थ सर्ग, पृ0 47

66. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, द्वादश सर्ग, पृ0 263

67. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, सप्तम सर्ग, पृ0 102

68. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' प्रथम सर्ग, पृ0 2

69. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' द्वादश सर्ग, पृ0 120

70. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 7

71. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, चतुर्थ सर्ग, पृ0 58

72. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, पंचम सर्ग, पृ0 78

73. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, अष्टम सर्ग, पृ0 119

74. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, नवम सर्ग, पृ0 176

75. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, नवम सर्ग, पृ0 150

76. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, एकादश सर्ग, पृ0 241

77. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, दूसरा सर्ग, पृ0 15

78. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, दसवाँ सर्ग, पृ0 74

चतुर्थ

अध्याय

प्रकृति सौन्दर्य

(क) आलम्बन रूप में

(ख) उद्दीपन या पृष्ठभूमि आदि के रूप में

(ग) नैतिक या उपदेशात्मक रूप में

(घ) उपमान के रूप में

(च) अन्य रूप

चतुर्थ अध्याय

प्रकृति सौन्दय

प्रकृति आदिकाल से ही मानव की सहचरी रही है, जन्मकाल से ही मानव को माँ की ममतामयी क्रोड़ के साथ प्रकृति का साहचर्य प्राप्त होता आया है। अतः काव्य में प्रकृति सौन्दर्य अनिवार्य है। मनुष्य सांसारिक प्रत्याघातों से ऊबकर मन की शान्ति के लिए अपने वयक्तिगत क्षेत्र से बाहर जाना चाहता है, उस प्रकृति सहचार में उसे शान्ति और सुख का अनुभव होता है, वह प्रकृति के प्रति आकर्षित होता है और अपना स्नेह प्रकट करता है।

प्रकृति मानव के लिए अजस्र प्रेरणा–स्रोत रही है। अंग्रेजी का प्रकृति–गायक बर्ड् सवर्थ तो प्रकृति के प्रति इतना मुग्ध था कि उसे यह विश्वास हो गया था कि छोटे से छोटे फूल बड़े से बड़ा विचार उत्पन्न कर सकता है–

" The impulse from the veneral wood
Can teach you more of man
Of moral evil and good
Than all the sages can"

अंग्रेजी काव्य का सारा रोमांटिक काल, बल्कि वर्ड्सवर्थ से लेकर टेनीसन तक, प्रकृति की रम्य गोद में पला है। कवियों को कहीं नदी से प्रेरणा मिलती है तो कहीं भ्रमर गीत गाते है। और कहीं तारो से सन्देश भेजा जाता है।

कहीं तो प्रकृति एकाकी मन टीस जगा देती है।

"The lightening of the moon-tipe ocean
Is Heshing ronnd me and a tone
Arises from its measured motion
How sweet did any heart now share
in my emotion."

काव्य जीवन सापेक्ष होता है और जीवन प्रकृति सापेक्ष। इसलिए प्रकृति का काव्य से अटूट सम्बन्ध हैं। अवसर के अनुकूल उसके प्रयोग और रूपमय स्थिति में भले ही परिवर्तन हा जाय किन्तु विद्यमानता का लोप नहीं होता। हिन्दी साहित्य में आरम्भ से ही प्रकृति निरूपण होता आया है। वीरगाथा काल में प्रकृति अलंकार विधान एवं उद्दीपन के रूप में प्रयुक्त हुई है। भक्ति काल मे राधा कृष्ण विषयक शृंगारिक उद्दीपनों और अप्रस्तुत योजना में उसका प्रयोग है, स्वतंत्र स्थान नहीं दिया गया। रीतिकाल में कुछ कवियों को छोड़कर प्रायः प्रकृति के प्रति उत्साह का अभाव मिलता हैं। केवल ऋतु वर्णन के रूप में बारहमासों में उसके दर्शन होते हैं। भारतेन्दु युग में भक्ति की पुनरावृत्ति एवं देशप्रेम के कारण प्रकृति को पुनः अपनाया गया है परन्तु उसमें भी वास्तविक उल्लास का अभाव ही पाया जाता है। द्विवेदी युग में प्रकृति का व्यापक चित्रण हुआ। इस प्रकार हम यह जानते है कि प्रकृति के प्रति प्रत्येक काल का कवि किसी न किसी रूप में आकृष्ट हुआ है और आवश्यकतानुसार उसने उसका वर्णन किया है।

दार्शनिक आधार पर प्रकृति की व्याख्या किसी भी रूप में की जाये किन्तु व्यवहार में प्रकृति से तात्पर्य मानवेतर दृश्यमान जगत से होता है। ऐसा माना

जाता है कि पृथ्वी, आकाश, वायु, जल एवं तेज—पंच महाभूतों से मिलकर समस्त विश्व की रचना हुई है चाहे वह जड़ हो अथवा चेतन। इन्हीं पंचतत्वों से निर्मित मानव भी प्रकृति की सीमान्तर्गत आता है। इन्हीं पंच महाभूतों से उत्पन्न विभिन्न वस्तुओं के रूपों, अवस्थाओं और गुणों को प्रकृति कहते हैं। इनमें वन—वृक्ष, पशु—पक्षी, नदी—सागर, पर्वत—पठार, सूर्य—चन्द्रमा, नक्षत्र—तारे, दिन—रात, पवन—वर्षा, फूल—कांटे, नर—नारी, ऋतुऐं—मौसम आदि भी समाहित होते हैं। प्रकृति शब्द का प्रयोग सामान्यतः इसी अर्थ में किया जाता है।

प्रकृति अनन्त वैभवशालिनी और ऐश्वर्ययुक्त है। इसके विविध स्वरूप अपने गुणों, अपने रूपों से मानव को हमेशा प्रभावित करते रहे हैं। प्रकृति का शाब्दिक अर्थ होता है— प्राकृतिक अथवा वास्तविक। अपनी वास्तविकता अथवा प्राकृतिकता से मानव को प्रभावित करने वाली प्रकृति है। रूप, रस, गंध, स्पर्श, श्रवण, कथन आदि द्वारा अनुभूति किये जाने वाले सभी विषय इसी प्रकृति के अंग कहे जाते है। मानव द्वारा अपने हाथों से सजाने, संवारने वाली वस्तुओं के अन्तर्गत अपनी नैसर्गिक छटा से मानव को आकर्षित करने वाली वस्तुएँ ही प्रकृति हैं। नेत्रो को सुरम्यता, सौन्दर्य का परिपाक कराने वाली वस्तुएं हो, ज्ञानेन्द्रियों को सुरभि प्रदान करने वाले पुष्प हों अथवा विभिन्न रूप में गुणों का माधुर्य बिखेरने वाली स्थितियाँ हों सभी प्रकृति का उपादान ही कही जाती हैं।

प्रकृति ने अपने अंग—अंग से मानव को सौन्दर्य का, मधुरता का रसपान कराया है। नदियों—झीलो का शीतल जल मिला है, मैदान, खेतों की हरियाली दी है, वृक्षों—बेलो के मीठे फल मिले हैं, कोयल बुलबुल की मधुर तान सुनाई दी है, पर्वतों के पीछे सूर्य के उदय और अस्त की लालिमा बिखराई है, बारिश

की रिमझिम उमंग दी है, सप्तरंगी इन्द्रधनुष की मुस्कान दी है, विभिन्न पुष्पों की सुगन्ध मिली है, नक्षत्रों–तारों की जगमगाहट दी है। एक नहीं अनन्त–अनन्त रूपों में प्रकृति मानव के साथ पल प्रतिपल रही है।

प्रकृति की इस अनन्त आभा को, उसके कोमल, मधुर और कठोर रूप को दृष्टिगत कर, प्रकृति की विशेषताओं को आत्मसात करके, उसके गुणों से सीख लेकर प्रकृति ने नाना प्रकार के विचारों को देख–परख कर मानव ने अपने जीवन को सजाया, संवारा है। प्रकृति के विभिन्न गुणों, स्थितियों के अनुसार ही अपनी स्थितियों और कार्यप्रणाली को संचालित किया है। इस प्रकार मनुष्य का प्रकृति के साथ स्वाभाविक रूप से चिर साहचर्य भोक्ता–भोग्य, बीज–वृक्ष, सहचर–सहचरी, दृष्टा–दृश्य, मातृ–शिशु, शिक्षक–शिक्षार्थी, उद्दीपक–उद्दीप्य आदि अनेक रूपों में सम्बन्ध स्थापित हुआ है।

मानव ने अपनी रचनाओं–शिल्प, ललित, संगीत, स्थापत्य, लेखसन में प्रकृति की सार्वभौम और अभिभूत करने वाली सत्ता का सुन्दर चित्रण किया है। काव्य के द्वारा कवि ने प्रकृति को माँ, प्रेयसी, पत्नी आदि सहित अनेक प्रस्तुत–अप्रस्तुत रूपों में प्रस्तुत किया है। मानव जीवन की लीलाओं की विशद् वृहदतम आकार, आधार प्रकृति ही प्रस्तुत करती है। प्रकृति ही मानवीय अभिनव के बाह्य और भावगत लोक का रंगमंच है। इसी तरह, मानव जीवन की विविधताओं, उसी सजीव एवं सुव्यवस्थित अभिव्यक्ति का माध्यम साहित्य ही है। कवि प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य का चित्रांकन ही नहीं करता अपितु उसकी आत्मा को दृष्टिगत करके प्रकृति के उदारता, मातृवत्सलता, क्षमाशीलता आदि गुणों के अन्तः सौन्दर्य को व्यक्त करता है। प्रकृति के इन विभिन्न रूपों के सौन्दर्य को 'प्रिय प्रवास' 'साकेत' एवं नूरजहाँ में अनेक रूपों में चित्रित किया

गया है।

(क) आलम्बन रूप में

जब प्रकृति का वर्णन यथातथ्य रूप में लिया जाता है तब उसे प्रकृति का आलम्बन रूप कहते है। प्रकृति के इस रूप में कवि प्रकृति को भावनाओं का आधार बनाता है। प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता होती है। आधुनिक काल के कवियों की दृष्टि प्रकृति के इस रूप पर अधिक गई है।

हरिऔध जी ने प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण किया है।

"फूली–फैली लसित लतिका वायु में मन्द डोली।
प्यारी प्यारी ललित लहरें भानुजा में विराजों।
सोने की सी कलित किरणें मेदिनी और छूटीं।
कूलों कुंजों कुसुमित वनो में जगी ज्योति फैली।"[1]

राधा पवनदूत के माध्यम से अपनी बात कहती है।

"संलग्रा हो सुखद जल के श्रान्तिहारी कणों से।
ले के नाना कुसुम कुल का गंध आमोदकारी।
निर्धूली हो गमन करना उद्धता भी न होना।
आते जाते पथिक जिससे पंथ में शान्ति पावें।"[2]

प्रकृति के नैसर्गिक छटा का चित्रण हरिऔध जी ने बडे ही सुन्दर ढंग से किया है। प्रिय प्रवास तो ऐसे वर्णनों से भरा पड़ा है। श्रीकृष्ण का प्रकृति के प्रति प्रेम जताते हुए किया गया है–

"मुकुन्द आते जब थे आराम में,

प्रफुल्ल हो तो करते बिहार थे।
विलोकते थे सु–विलास वारि का
कलिन्दजा के कल कूल पै खड़े
स–मोद बैठे गिरि सानु पै कभी
अनेक थे सुन्दर दृश्य देखते
बने महा उत्सुक वे कभी छटा
विलोकते निर्झर नीर की रहे।''[3]

प्रिय प्रवास की रचना का आरम्भ ही प्रकृति के वर्णन से हुआ है। 'दिवस का अवसान समीप था, गगन था कुल लोहित हो चला' की पृष्ठभूमि में ही सम्पूर्ण काव्य रचा गया है। सापेक्ष प्रकृति का वर्णन भी प्रिय प्रवास में हुआ है। तृतीय सर्ग में माँ यशोदा की विकलता देख प्रकृति भी रो पड़ती है–

''विकलता उनकी अवलोक को
रजनी भी करती अनुताप थी।
निपट नीरव ही मिष ओस के,
नयन से गिरता बहु वारि था।''[4]

सूर्योदय के देख राधा अनुभव करती है कि मानों 'सकल ब्रजधरा' को फूँक देने के लिए नभ 'आग का गोला' उगल रहा है। राधा ने हवा को 'बहन' का सम्बोधन देकर उससे दूतत्व कराया है। प्रकृति की सहायता से उन्होंने रहस्यवादी अभिव्यक्ति भी की है। 'कौन रंगरेज रंगता है इन फूलो को' में कवि की रहस्यवादी भावना का ही परिचय मिलता है।

कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी उत्कृष्ट रचना साकेत में प्रकृति

के इस रूप को अनेक स्थानों पर चित्रित किया है–

स्वर्ग की तुलना उचित ही है यहाँ,
किन्तु सुर–सरिता कहाँ, सरयू कहाँ?
दीखते उनसे विचित्र तरंग हैं,
कोटि शक–शरास होते भंग हैं।
तीर पर हैं देव मन्दिर सोहते,
भावुकों के भाव मन को मोहते।
आस पास लगी वहाँ फुलवारियाँ,
हँस रही हैं खिलखिलाकर क्यारियाँ।'[5]

प्रकृति के आलम्बन रूप का चित्रण गुप्त जी ने साकेत के प्रथम सर्ग के प्रभात वर्णन मे, पंचम सर्ग के वन मार्ग वर्णन तथा पंचवटी के प्रभात एवं प्रसंगों में है। प्रभात का उत्कृष्ट उदाहरण–

"मूँदे अनन्त ने नयन धार वह झाँकी,
शशि खिसक गया निश्चिन्त हंसी हंस बाँकी।
द्विज चहक उठे, हो गया नया उजियाला,
हाटक–पट पहने दीख पड़ी गिरिमाला।
सिन्दूर चढ़ा आदर्श–दिनेश उदित था,
जन जन अपने को आप निहार मुदित था।"[6]

साकेत उद्‌बोधन के समय शत्रुघ्न अर्द्धरात्रि के अवसर पर उन्मुक्त प्रकृति का निरीक्षण कर रहे हैं–

ताराहारा चारु–चपल चांदी की धारा,

लेकर एक उसांस वीन ने उसे निहारा।
सफल सौध भू–पटल व्योम के अटल मुकुर थे,
उडुगण अपना रूप देखते टुकुर–टुकुर थे।
फहर रहे थे केतु उच्च अट्टोंपर फर फर,
ढाल रही थी गन्ध मृदुल मारुत–गति भर भर।
स्वयमपि संशयशील गगन धन–नील गहर था।
मीन–मकर, वृष–सिंह पूर्ण सागर या वन था!
झौंके झिलमिल झेल रहे थे दीप गगन के,
खि खिल हिलमिल खेल रहे थे दीप गगन के।"[7]

इन प्राकृतिक उपादानों के प्रति कवि ने आत्मीयता व्यक्त की है। ये दृश्य परिस्थिति सर्जना में बहुत समीचीन ज्ञात होते हैं। चित्रकूट सभा का यह परिवेष ध्यातव्य है:–

"नीले वितान के तले दीप बहु जागे।
टकटकी लगाये नयन सुरों के थे वे,
उत्फुल्ल करौंदी–कुंज वायु रह रहकर,
करती थी सबको पुलक पूर्ण मह महकर।"[8]

इस प्रकार साकेतकार ने महाकाव्यत्व के अनूकूल ऊषा, प्रभात, दिवालोक, सन्ध्या, निशीथ, तमिस्रा, चन्द्रालोक, सूर्योदय, चन्द्रोदय, पशु–पक्षी एवं वनस्पति जगत (जड़ और चेतन) सभी पदार्थ सिन्धु, पर्वत, सरिता, निर्झर, वन, खेत, पथ, फल, फूल आदि यथावसर चित्रित किये हैं। कवित्व की उदभावना और वस्तु सगंठन में यह प्रकृति सहयोगिनी बनी है। प्रबन्ध की सीमा में प्रकृति का इतना

सांगोपांग स्वरूप अंकित करते साकेतकार ने मर्मग्राहिणी प्रज्ञा का परिचय दिया है।

नूरजहाँ के छठे सर्ग में प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण किया गया है।

नई अनारी कलियों ने कैसा है आग लगाई

जो पय कहाँ कहाँ पय की चातक ने टेर उठाई।

राम समय माधुरी लता सित फूलों से मुस्काती।

दिनकर से अलिगित होकर प्रेम राग रँग जाती।"[9]

प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण दसवे सर्ग में भक्त जी ने प्रातः काल का वर्णन बड़ा ही मार्मिक किया है।

"ऊषा की कोमल किरणे पहिले जिसको नहलाती है।

जिसके पग पर अगणित नदियाँ आकर सलिल चढ़ाती है।

जिसका चरणोदक पयोधि ले सूर्य्यकारों द्वारा वह जल।

बरसा करके सारे जग पर पावना करता विश्व सकल।"[10]

(ख) उद्दीपन या पृष्ठभूमि आदि के रूप में

कवि उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण तब करता है जब अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए उसे एक अनुकूल वातावरण तथा उन भावनाओं की ओर अधिक उद्दीप्त करने के लिए अनेक प्रसाधनों की आवश्यकता होती है। वियोग शृंगार के वर्णनों में प्रकृति के उद्दीपन रूप का आश्रय लिया गया है।

कवि ने ब्रजवासियों की असह्य पीड़ा का वर्णन करते हुए प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण किया है।

"समय था सुनसान निशीथ का।

अटल भूतल में तम राज्य था।

प्रलय काल समान प्रसुप्त हो।

प्रकृति निश्चल, नीरव, शान्त थी।"[11]

जिस कोकिल का मधुर शब्द कृष्ण के संयोग मे पीयूष वर्षण करता था वही वियोगावस्था में रुदन सा प्रतीत होता है। प्रकृति में वह अपने हृदय का प्रतिबिम्ब देखती है और प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ और प्राणी में विकलता का अनुभव करती है। कृष्ण के मथुरा चले जाने के कारण उनकी उमंगो पर तुषार पात हो गया है, अब उन्हें प्रकृति में, सौन्दर्य उल्लास और उत्साह का अनुभव नहीं होता। कृष्ण संयोग में यमुना भी उमंग और आनन्द की तरंगे उठा करती थीं किन्तु आज तो वह विकल वेदना से आहे भरती हुई आगे बढ़ती जा रही है। उद्धव के प्रति कहे गये उपर्युक्त शब्दों में गोपियों के विरह विदग्ध हृदय की मार्मिक पीड़ा व्यक्त होती है।

हरिऔध जी ने भी इसी प्रकार की खिन्नता का प्रकृति में दिग्दर्शन कराया है–

"सरोवरों में सरि में सुमेरु में,

खगों, मृगों में वन में निकुंज में,

वर्षा हुई एक निगूढ़ खिन्नता,

विलोकते थे निज सूक्ष्म दृष्टि से।"[12]

विरहोन्माद की अवस्था में मानव को प्रकृति में यह वैषम्य और भी अधिक प्रतीत होने लगता है। उसे प्रकृति के स्वरूप में ही नहीं उसके गुण और प्रभाव में भी वैपरीत्य का अनुभव होता है। शीतल, वस्तुऐं भी दग्धकारिणी और सुन्दर दृश्य

भयावह से लगते है, हरिऔध जी ने इसका दिग्दर्शन किया है। उर्मिला मलयानिल से कहती है–

"जा मलयानिल लौट जा यहाँ अवधि का शाप।
लगे न लू होकर कहीं तू अपने को आप।"[13]

राम के साथ होने से सीता को चित्रकूट की कुटी राम भवन एवं महावन सौख्य सम्पन्न साम्राज्य प्रतीत होता है, पंचवटी की प्रकृति हंसती हुई भासित होती है, किन्तु राज साध निवासिनी विरहिणी उर्मिला को प्रकृति सर्वथा इसके विपरीत ज्ञात होती है।

"वह कोइल जो कूक रही थी, आज हूक भरती है।
पूर्व और पश्चिम की लाली शेष वृष्टि करती है।
लेती है निःश्वास समीरण, सुरभि धूत चरती है।
उबल सूखती है जल धारा यह धरती भरती है।

गुप्त जी ने कवि परम्परा उद्‌दीपन में ऋतुओं का महत्व मानते हुए ऋतु वर्णन किया है। उर्मिला के वियोग वर्णन में षट्–ऋतुओं का उल्लेख है इनके ऋतु वर्णन में परम्परागत इनी–गिनी वस्तुओं का परिगणन हीं है, उन्होंने नायिका की वियोगावस्था और ऋतु समुदाय में पूर्ण सामंजस्य प्रदर्शित किया है। प्रकृति और विरहिणी के मनोभावो का एकीकरण हो जाता है। वर्षा में वियोगिनी उर्मिला मेघों की घनघोर गर्जन में अपने उच्छवास और जलवृष्टि में अपने आसुंओ का अनुमान करती है। वह उस दिन की आशा करती है जब वह अपने प्रियतम को पाकर आनन्द में मग्न होगी। शिशिर ऋतु के लिए तो सब सामग्रियाँ उर्मिला के शरीर में ही उपलब्ध हो जाती हैं। वह शिशिर से कहती है–

"शिशिर न फिर गिरिवन में,

जितना मांगे पतझड़ दूँगी मैं, निज नंदन में,

कितना कंपन तुझे चाहिए, ले मेरे इस तन मे।

सखी कह रही पांडुरता का क्या अभाव इस आनन में।"[14]

शिशिर के प्रधानतत्व पतझड़, कंपन और पांडुरता सबको आयोजन वह अपने शरीर में ही कर देती है।

मैथली शरण गुप्त ने उर्मिला वियोग चित्रण में उसकी भावनाओं को उद्दीप्त करने के लिए प्राकृतिक उपादानों का सहारा लिया है। मध्ययुगीन कविता में प्रकृति को अपने उद्दीपन रूप में यथेष्ट रूप से चित्रित हो चुकी थी। श्री गुप्त ने परम्परागत प्रकृति के इस रूप को एक नयी दिशा दी। उनके प्रकृति के उपादान भावनओं की उद्दीप्त करने की अपेक्षा उनसे साम्य अधिक रखते है–

विरह उड़ना भी ये ही बद्ध भूल गये, अये

यदि अब इन्हें छोड़ूँ तो और निर्दयता दये।

परिजन इन्हें भूले, ये भी उन्हें सब, है बहे,

बस अब हमी साथी संगी, सभी इनके रहे।

नूरजहाँ में मेहरुन्निशा के विवाह के उपरान्त सलीम वियोग में पवन से याचना एवं निवेदन करता है। वियोग श्रृंगार में प्रकृति की भूमिका अधिक बलवती रही है।

"जाकर पहिले छिप उपवन में कलियों को चिटकाना।

फिर भंवरों को भेज कमल मुख पर गुण–गान कराना।

तितली दल पंखो से झलता रहे किरण के छीटें।
पत्तो को समझाते रहना कि ताली मत पीटे।
फिर भी नींद उचट जाये जब वह अंगड़ाई ले ले।
उठकर आंखों को मलती ही हृदय हार से खेले।
या जा फूलों की क्यारी में गिने सुमन पंखड़ियाँ।
या निकुंज में हो सुलझाती उलझी मोती लड़ियाँ।
तब धीरे से, खेल, शीश से अंचल को खिसकाना।
निकट कान के जा धीरे से मेरी कला सुनाना।
चिहुँक उठेगी वह घबड़ाकर इधर उधर जब झांके।
तब तुम फूलों में छिप जाना भौरों को दिखला के।''[15]

(ग) नैतिक या उपदेशात्मक रूप में

जब कवि युग को अने आदर्शों से अवगत कराना चाहता है तथा उसकी लेखनी एक नैतिक या उपदेशात्मक रूप ग्रहण कर लेती है तब यह प्रकृति के विभिन्न उपदानों का सहारा लेता है।

हरिऔध ने राधा मे माध्यम से पवन को उपदेश दिलाकर कृष्ण के पास भेजा। इस आग्रह का एक उदाहरण दृष्टव्य हैं

''जो पुष्पो के मधुर रस के साथ सानन्द बैठे।
पाते होवे भ्रमर भ्रमरी सौम्यता तो दिखाना।
थोड़ा सा भी कुसुम हिले औ न उद्विग्र वे हों।

क्रीड़ा होवे न कलुषमयी केलि में हो न बाधा।"[16]

इसी प्रकार वह आगे कहती है।

"कुंजों बागों विपिन यमुना कूल या आलयों में।

सद्गंधों से भरित मुख की वास सम्बन्ध में आ।

कोई भौरा विकल करता हो किसी कामिनी को।

तो सद्भावों सहित उसको ताड़ना दे भगाना।"[17]

साकेत मे ऐसे स्थलों को प्रायः अभाव है। अत्यधिक छानबीन करने से कुछ उदाहरण मिल जाते हैं। किन्तु इस सन्दर्भ में एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि तुलसीदास जहाँ वर्षा वर्णन करत हुए शिक्षात्मक उदाहरण मानव जीवन से देते हैं—

"दामिनि दमकि रही घन माहीं।

खल कै प्रीति यथा थिर नाहीं।"

वहाँ गुप्त जी मानवीय क्रिया कलाप के लिए प्रायः प्राकृतिक सत्य का उदाहण देते हुए कहते है।

"चले पीछे लक्ष्मण भी ऐसे,

भाद्र के पीछे अश्विन जैसे।"[18]

× × ×

"कहतीं क्या वे प्रिय जाया,

जहाँ प्रकाश वहीं छाया।"[19]

× × ×

"राम भाव अभिषेक समय जैसा रहा,

वन जाते भी सहज सौम्य वैसा रहा।

वर्षा हो या ग्रीष्म, सिन्धु रहता वही,
मर्यादा की सदा साक्षिणी है मही।"[20]

× × ×

"एक तीसरे हुए मिले जब दो जहाँ,
गंगा जमुना बनी त्रिवेणी ज्यों यहाँ"[21]

× × ×

"पास पास ये उभय वृक्ष देखो, अहा!
फूल रहा है एक, दूसरा झड़ रहा।"
है ऐसी ही दशा प्रिये नरलोक की,
कहीं हर्ष की बात कहीं पर शोक की।
झाड़ विषम झंखाड़ बने वन में खड़े,
काँटे भी है कुसुम संग बाँटे पड़े।"[22] .

× × ×

निज हेतु नहीं बरसता व्योम से पानी,
हम हो समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी।

कवि ने प्रकृति का उदपेशात्मक चित्रण प्रस्तुत करते हुआ लिखा है।

चारो ओर श्याम हरियाली का है बिछा हुआ कालीन।
रंग रंग के फूलो से हो गई घाटियाँ है रंगीन।
हरियाली समुद्र में लहरे ले गुलाब जंब सो जाता
मारुत सुरभि सुरा में माता लोट पोट है हो जाता।
मधु प्रसनचय से गिरवर का दामन भरता जाता है।

हिम का सब घमंड पानी पानी हो झरता जाता है।"[23]

(घ) उपमान के रूप में

इस रूप में लेखक ने प्रकृति का विस्तृत वर्णन न कर उसके रूप की मोहकता को अप्रस्तुत बिम्ब विधानों द्वारा दर्शाया है। उपमान वण्रन के द्वारा किसी लेखक के भावों की अभिव्यंजना सजीव एवं सार्थक हो जाती है, द्विवेदी युग के रचनाकारों ने भी प्रकृति के विशाल स्वरूप, अद्‌भुत आयामों से अप्रस्तुतों का सटीक प्रयोग कर भावाभिव्यक्ति सौन्दर्य को निखारा है। घटनाओं और पात्रों के साथ तारतम्य बिठाकर, उनको गति प्रदान कर, उनके रूप और भावों को सामने लाने में प्रकृति का उपमान रूप पर्याप्त सहायक होता है। प्रकृति के विभिन्न क्षेत्रों से चुने गये अप्रस्तुत उपमानों के प्रयोग से भावाभिव्यक्ति का सौन्दर्य और भी निरख उठा है। प्रकृति के पूर्व विवेचित रूपों को– ऋतुओ, ऊषा, सन्ध्या, चन्द्रमा, तारों, नक्षत्रों, नदियों, झीलों, पेड़–पौधों आदि को अप्रस्तुत उपमानों के साथ प्रदर्शित कर प्राकृतिक सौन्दर्य की वृद्धि की है।

हरिऔध जी ने प्रिय प्रवास के षष्ट सर्ग में प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार किया है।

"भीनी भीनी सुरभि सरसे पुष्प की पोषिका सी।
मूलीभूता अवनितल में कीर्ति कस्तूरिका की।
तू प्यारे के नवलतन की वास ला दे निराली।
मेरे ऊबे व्यथित चित में शान्ति धारा बहा दे।"[24]

कवि ब्रज की शोभा का वर्णन करता हुआ कहता है।

परम–स्निग्ध मनोरम पत्र में

सु–विकसे जलजात समूह से।

सर अतीत अलंकृत थे हुए।

लसित थी दल पै कमलनासना।"[25]

साकेत में बिजली और घन मानव शरीर और बालों के परम्परा मुक्त उपमान है। क्रोधित कैकयी के लिए वह कहते हैं–

पड़ी थी बिजली सी विकराल,

लपेटे थे घन जसे बाला।

बिजली उपमान द्वारा कवि ने सौन्दर्य में अन्तर्निर्हित विकरालता का भी प्रकाशन किया है और कैकेयी की कुटिल भावना से भी साम्य प्रकट किया है, साथ ही मेघों के बीच मे लिपटी हुई बिजली द्वारा एक दृश्य भी उपस्थित कर दिया है। इस प्रकार रूप गुण और व्यापार तीनों में बाल खोलकर लेटी हुई कैकयी का चित्र प्रतिबिम्बित होता है। केवल रूप साम्य प्रकट करने में कवि ने सौन्दर्य के प्रति तो अपना उत्साह नहीं व्यक्त किया है, किन्तु अपने प्रकृति निरीक्षण का परिचय अवश्य दिया है। वल्कल वस्त्रों से युक्त श्री राम के श्याम शरीर की उपमा कमल से देते हुए वह कहते है–

चौंका वह इस बार देख कर राम को,

शैवाल परिवृत यथा सरोरूह श्याम को।

राम का मुख इस भांति प्रतीत होता है कि जिस भांति शैवाल समूह में विकसित श्याम सरोज। इस पूर्णोपमालंकार में श्रीराम के लिए यद्यपि श्याम कमल उपमान परम्परा युक्त है तथापि शवाल परिवृत्त होने के कारण उपमा अधिक

स्वाभाविक और सजीव हो गयी है। इस उपमा से अर्थ ग्रहण ही नहीं होता वरन बिम्ब ग्रहण भी होता है। बल्कल धारी राम का स्वाभाविक स्वरूप बोध हो जाता है।

इस प्रकार का उपमा द्वारा वर्ण साम्य इन्होंने प्रकृति का ही आरोप करते हुए भी प्रकट किया है। तीर्थराज प्रयाग में गंगा यमुना की धारा को देखकर कवि शुभ्र–श्याम मेघों से उपमा देते हैं–

"वर्षा से आ मिली शरद की सी घटा"

वर्षा के जलद श्याम वर्ण और शरद के मेघ श्वेत वर्ण होते हैं। यमुना गंगा के श्याम श्वेत वर्णों का पावस और शरद के मेघों से सादृश्य स्थापित हो जाता है।

गुरुभक्त सिंह ने नूरजहाँ के प्रथम सर्ग में प्रकृति का चित्रण कुशलता से किया है।

"क्यों मुरझाई हुई प्रिये हो, कैसा बुझा हुआ दिल?
है 'नौरोज आज हम दोनों भी करले विहार हिलमिल।
प्रेम पत्र जो भेज चुके थे, पवन दूत से माधव पास,
राह किसी की देख रहे थे, खड़े खड़े ही बने उदास।"[26]

प्रकृति का दूसरे सर्ग में नूरजहाँ के जन्म के चित्रण–

"अंकुरित बीज ने अंखुए की आंख खोल जब देखा।
थी शून्य बिन्दु पर मानों खींची आशा की रेखा।
अंडे से निकला पक्षी उसने दो पर फैलाये।
लसलसे सुकोमल पल्लव थे माणिक के ढलवाये।"[27]

(च) अन्य रूप

इसमें प्रकृति को मानव रूप दे दिया जाता है और उसकी भावानुकूल सजीव सत्ता हो जाती है। साकेत में प्रकृति का यह रूप अनेक स्थलों पर देखने को मिलता है। प्रथम सर्ग में रात्रि और उषा को नायिका रूप में प्रस्तुत किया है।

सूर्य का यद्यपि नहीं आना हुआ,
किन्तु समझो रात का जाना हुआ।
क्योंकि उसके अंग पीले पड़ चले,
रम्य रत्नाभरण ढीले पड़ चले।
वेशभूषा साज ऊषा आ गई,
मुख--कमल पर मुस्कराहट छा गई
पक्षियों की चहचहाहट हो उठी,
चेतना की अधिक आहट हो उठी।''[28]

× × ×

विमाता बन गई आंधी भयावह,
हुआ चंचल न तो श्याम घन वह।
पिता को देख तापित भूमि--तल--सा,
बरसने यों लगा वर वाक्य--जल सा।

साकेत में प्रकृति के विभिन्न रूप का प्राचुर्य है। लाल वस्त्र पहने हुए उर्मिला को मूर्तिमती उषा सी बताया गया है। प्रियके नेत्रों, अधरों के वर्णन के लिए

कवि ने रूपकातिशयोक्ति अलंकार के माध्यम से प्रकृति का जो रूप उपस्थित किया है वह प्रशंसनीय है। उर्मिला क वियोग वर्णन में इन्होंने सांगरूपक और उपमा द्वारा शरद और लक्ष्मण का साम्य प्रदर्शित किया है। प्रेमाधिक्य में उर्मिला प्रकृति में अपने प्रिय का प्रतिबिम्ब देखती है–

"निरख सखी ये खंजन आये,
फेरे उन मेरे रंजन ने, नयन इधर मन भाए!
फैला उनके तप का आतप, मन से सर सरसाए,
घूमें वे इस ओर वहाँ, वे हंस यहाँ उड़ छाये।
करके ध्यान आज इस जन का निश्चय वे मुसकाये।
फूल उठे हैं कमल, अधर से ये बधूक सुहाये।
स्वागत, स्वागत शरद, भाग्य के मैंने दर्शन पाये,
नभ के मोती वारे, लो ये अश्रु अर्घ्य भर लाये।"[29]

प्रियानुरागिनी उर्मिला खंजन, आतप, हंस, कमल और बंधूक में क्रमशः लक्ष्मण के नेत्र क्रांति, गति, मुख और अधर का प्रतिबिम्ब देखती है। प्रकृति उसके लिए प्रियतममय हो जाती है।

आठवें सर्ग में नूरजहाँ के विवाह का प्रकृति सौन्दर्य गुरुभक्त सिंह ने निम्न पंक्तियों के माध्यम से व्यक्त किया है।

"पियरी पहन खड़ी है सरसो आम खड़े है लेकर मौर।
वेद मंत्र से पढ़ते फिरते है फिर फिर भौरो के छौर।
स्वर्ण फूल कानों मे धारे धानी, 'तिनपतिया' बाला।
दूल्हा को पहिनाने को है, लिये शंखपुष्पी माला।"[30]

संदर्भ सूची

१. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' पंचम सर्ग, पृ0 36

2. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' षष्ठ सर्ग, पृ0 52

3. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' त्रयोदश सर्ग, पृ0 136

4. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' तृतीय सर्ग, पृ0 28

5. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 3, 4

6. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, अष्टम सर्ग, पृ0 141

7. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, द्वादश सर्ग, पृ0 265. 266

8. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, अष्टम सर्ग, पृ0 131

9. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, छठवाँ सर्ग, पृ0 47

10. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, दसवाँ सर्ग, पृ0 73

11. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' तृतीय सर्ग, पृ0 17

12. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' नवम सर्ग, पृ0 89

13. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, नवम् सर्ग, पृ0 172

14. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, नवम् सर्ग, पृ0 170

15. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, दसवाँ सर्ग, पृ0 77

16. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' षष्ट सर्ग, पृ0 52

17. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' षष्ठ सर्ग, पृ0 53

18. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, तृतीय सर्ग, पृ0 42

19. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, चतुर्थ सर्ग, पृ0 53

20. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, पंचम सर्ग, पृ0 63

21. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, पंचम सर्ग, पृ0 75

22. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, पंचम सर्ग, पृ0 78

23. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, पहला सर्ग, पृ0 2

24. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' षष्ठ सर्ग, पृ0 57

25. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' नवम सर्ग, पृ0 84

26. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, पहला सर्ग, पृ0 1

27. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, दूसरा सर्ग, पृ0 19

28. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 5

29. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, नवम सर्ग, पृ0 163

30. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, अठवाँ सर्ग; पृ0 65

पंचम

अध्याय

वस्तुगत सौन्दर्य

(क) भवन, मूर्ति, घाट, तथा परकोटादि

(ख) पात्र, पर्यंक एवं उपस्करणादि

(ग) परिधान, आभूषण तथा मुद्रादि

(घ) अस्त्र–शस्त्र और वाहनादि

(च) अन्य वस्तुएँ

पचंम अध्याय

वस्तुगत सौन्दर्य

प्रकृति प्रेमी मानव हमेशा से आनन्दोन्मुख रहा है। आनन्द की प्राप्ति मानव की आत्मा को उद्वेलित करती है। आत्मिक आनन्द की अभिव्यक्ति का माध्यम 'कला' होती है। मानव हृदय की अभिव्यक्ति, रंग–रूप, आकार, ध्वनि, हाव–भाव, के साथ मूर्तिकला, चित्रकला, स्थापत्य कला, नृत्य, संगीतादि के माध्यम से होती है। वह अपनी इन्हीं अभिव्यक्तियों में अपने सौन्दर्य बोध की तुष्टि भी करता हैं 'कला' मानव के भावों, विचारों, संस्कृति की परिचायिका होती है। मानव को ये विचार उसके आस–पास के वातावरण, प्राकृतिक जगत् से प्राप्त होते रहते हैं। सप्तवर्णी इन्द्रधनुष, कलकल करतीं नदियाँ, हरे–भरे खेत, मैदान रंग बिरगे फूल, इठलाती तितलियाँ, चहकते पंक्षियों के सौन्दर्य से अभिभूत मानव ने हमेशा अपनी कृतियों में सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है।

द्विवेदी युगीन काव्य के रचनाकारों ने विभिन्न स्थलों का भ्रमण करवाया है। इन स्थलों के सौन्दर्य से कला प्रेमी हृदय आनन्दित हो उठा। 'प्रिय प्रवास' 'साकेत', 'नूरजहाँ', में महलों, भवनों, मूर्तियों, नदियों, वस्त्रालंकारों, पात्रो आदि में सौन्दर्यपरक चित्रण मिले है। आलोच्य कृतियों में वस्तुगत सौन्दर्य को अलग–अलग वर्गों में विभाजित कर विश्लेषित किया गया है–

(क) भवन,मूर्ति, घाट तथा परकोटादि

(ख) पात्र, पर्यंक एवं उपस्करणादि

(ग) परिधान, आभूषण तथा मुद्रादि

(घ) अस्त्र–शस्त्र और वाहनादि

(च) अन्य वस्तुएँ

(क) भवन, मूर्ति, घाट तथा परकोटादि

द्विवेदी युगीन इंगित रचनाकारों के भीतर एक कलाकार की आत्मा का निवास था जो सौन्दर्यानुभूति से भी ओतप्रोत था। इसीलिए इंगित रचनाकारों ने अपनी कृतियों में कथाओ, घटनाओं आदि को गतिशीलता बनाये रखने में बड़ी ही सुन्दर कल्पनाशीलता का परिचय दिया है। भवनों, मूर्तियों आदि का सौन्दर्य का वर्णन बड़ी सटीकात्मकता के साथ किया है।

यमुना तट का सौन्दर्य वर्णन कवि ने प्रिय प्रवास के एकादश सर्ग में किया है।

"यक दिन छवि शाली अर्कजा कूल वाली।
नव–तरु–चय–शोभी कुंज के मध्य बैठे
कतिपय ब्रज–भू की भावुकों को विलोक
बहु–पुलकित ऊधो भी वही जा विराजे।"[1]

ब्रज के भवनों का हरिऔध जी ने सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है।

विपुल सुन्दर–बन्दनवार से।
सकल द्वार बने अभिराम थे।

विहँसते ब्रज--सद्म समूह के।

वदन में दसावलि थी लसी।

× × ×

नव रसाल सुपल्लव के बने।

अजिर में वर--तोरण थे बँधे।

विपुल--जीह विभूषित था हुआ।

वह मनो रस--लेहन के लिये।

× × ×

गृह गली मग मंदिर चौरहों।

तरुवरों पर थी लसती ध्वजा।

समुद सूचित थी करती मनो।

वह कथा ब्रज की सुरलोक को।"[2]

मथुरा के भवनों का सौन्दर्य वर्णन हरिऔध जी ने बड़े ही सुन्दर ढ़ग से किया है--

"कालिन्दी के तट पर घने रम्य उद्यान वाला।

ऊँचे ऊँचे धवल--गृह की पंक्तियों से प्रशोभी।

जो है न्यारा नगर मथुरा प्राण प्यारा वहीं है।

मेरा सूना सदन तज के तू वहाँ शीघ्र ही जा।"[3]

इसी प्रकार जब राधा पवन दूत के माध्यम से मथुरा धाम का वर्णन बड़े मार्मिम ढंग से करती है--

"जाते–जाते पहुँच मथुरा धाम में उत्सुका हो।

न्यारी शोभा वर नगर की देखना मुग्ध होना।

त होवेगी चकित लख के मेरू से मन्दिरों को।

आभा वाले कलश जिनके दूसरे अर्क से है।"[4]

कवि ने साकेत नगरी के सौन्दर्य और वैभव का वर्णन किया है। यहाँ पर कवि ने नगरी की तुलना किसी यौवन–सम्पन्न सुन्दरी से की है। जिसका सौन्दर्य–सम्पन्न सुन्दरी से की है जिसका सौन्दर्य सभी को आकर्षित कर रहा है–

"देख लो साकेत नगरी है यही,

स्वर्ग से मिलने गगन में जा रही।

केतु–पट अंचल सदृश हैं उड़ रहे

कनक–कलशों पर अमर–दृग जुड़ रहे।"[5]

साकेत नगरी में विशाल कीर्ति स्तम्भ बने हुए है कवि ने सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है–

"राघवों की इन्द्र मैत्री के बड़े,

वेदियों के साथ साक्षी–से खड़े।

मूर्तिमय, विवरण समेत, जुदे जुदे,

ऐतिहासिक वृत्त जिनमें है खुदे।"[6]

गोमती नदी पार कर श्री रामचन्द्र जी सीता, लक्ष्मण गंगा नदी के तट पर पहुँचे। गंगा नदी की शोभा इस प्रकार फैली हुई थी मानो स्वर्ग के कण्ठ से सुन्दर मोतियों की एक विशाल लड़ी पृथ्वी पर टूट कर आ गिरी हो–

"गोरस धारा--सदृश गोमती पार कर,

पहुँचे गंगा तीर धीर धृति धार कर।

यह थी एक विशाल मोतियों की लड़ी,

स्वर्ग कण्ठ से छट, धरा पर गिर पड़ी।"[7]

चित्रकूट पर्वत रत्न की भाँति सुशोभित हो रहा था। कवि ने इस सुन्दर रमणीय स्थल का सुन्दर चित्रण किया है–

"आये फिर सब चित्रकूट मोदितमना,

जो अटूट गढ़ गहन वन श्री का बना।

जहाँ गर्भगृह और अनेक सुरंग थे,

विविध धातु--पाषाण--पूर्ण सब अंग थे।"[8]

उर्मिला सरयू नदी से कहती है कि तुम मानव धर्म के प्रथम संस्थापक मनु की मंगलकीर्ति का यशगान करने वाली हो–

सरयू, रघुराज वंश की,

रवि के उज्जवल उच्च वंश की,

सुन, तू चिरकाल संगिनी,

अयि साकेत–निकेत अंगिनी।

रावण की सोने की नगरी नीले आकाश में सुनहरी आभा वाली शोभायमान थी--

"निरख शत्रु की स्वर्गपुरी वह

मुझे दिशा–सी भूली थी,

नील जलधि में लंका थी या

नभ में सन्ध्या फूली थी।"[9]

साकेत की यह सुन्दर शोभा ऐसी लग रही है मानों पृथ्वी के पुष्पों से आकर्षित होकर समस्त लोको में श्रेष्ठ देवलोक (स्वर्गलोक) चुपचाप पृथ्वीपर आ रहा हो–

"अनुज, देखो, आ गया साकेत,
दीखते हैं उच्च राज–निकेत।
काम्य, कर्बर, केतु–भूषित अट्ट।
गगन में ज्यों सान्ध्य घन–संघट्ट।"[10]

गुप्त जी ने सप्तम सर्ग में साकेत के भव्य वास्तुशिल्प का सजीव चित्रण किया है–

"ये गगन–चुम्बित महा प्रासाद,
मौन साधे हैं खड़े सविषाद।
शिल्प–कौशल के सजीव प्रमाण,
शाप से किसके हुए पाषाण।"[11]

नूरजहाँ में सलीम का महल संगमरम से बना वास्तुकला युक्त था जिसका सौन्दर्य वर्णन कवि ने किया है–

"उस सुदृढ किले के अन्दर था, महल बना अति सुन्दर।
हो, लिये अंक मं शोभित, ज्यों हिमगिर, मान सरोवर।
था वास्तु कला सीमा सा, वह महल संगमरमर का।
करता सलीम क्रीड़ा था बनकर मराल उस सर का।"[12]

सलीम की रंगशाला की सुन्दरता का वर्णन द्रष्टव्य है–

"थे फूल बनाये सुन्दर, कर मणि से पच्चीकारी।
मखमल का फर्श जरी कश, थी छतें सुनहली सारी।

लाल और जमुर्रद, हीरे, मोति, मूँगे औ नीलम।

थे जड़े केलिशाला में चारो दिशि करते चमचम।।

नूरजहाँ अपनी उदास बेटी का मन बहलाने के लिए जहाँगीर के महल का सौन्दर्य वर्णन कुछ इस प्रकार करती है–

"है पाषाण कोट मुंदरी में नग सा जड़ा महल वर।

दीवारों में परम दिव्य तस्वीरें कढी हुई हैं

स्तम्भो पर लहरें ले ले मणि बेलें चढ़ी हुई है।

प्रातम्बों पर लेट रही है स्वर्ण खचित छट डाटे।

झंझरीदार वेदिकाओं से घिरी हुई है बाटे।"[14]

(ख) पात्र पर्यंक एवं उपस्करणादि

द्विवेदी युगीन के इंगित रचनाकारों ने वस्तुगत विवरण पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया। उनकी कृतियों में पलंग, लोटे, कटोरे, थाली आदि का यदा कदा प्रयोग मिलता है।

साकेत में भरत की पत्नी मांडवी सोने की थाली में फलाहार सजाकर लाती है–

वह सोने का थाल लिये थी,

उस पर पत्तल छाई थी,

अपने प्रभु के लिए पुजारिन

फलाहार सज लाई थी"[15]

नूरजहाँ की बाल क्रीड़ाओं का वर्णन करते हुए समय कवि ने टूटे प्यालों का वर्णन किया है–

"गुड़ियो से ब्याह रचाये मिट्टी के बना घिरौंदे।
गढ़ गढ़ मूरतें बहुत सी नन्हे पैरों से रौदें।
टूटे प्यालों मं व्यंजनों रज तृण के बना बनाकर।
पात्रों में पत्रो ही के देती सबको ला ला कर।"[16]

इसी प्रकार कवि ने पंलग की सुन्दरता का वर्णन किया है–

मूँगे का था पलंग हमारा, सोनो चांदी के बरतन,
मोती की झालर के परदे, लाल जड़ी जरकश चिलमन।"[17]

(ग) परिधान, आभूषण मुद्रादि

परिधानों, आभूषणों आदि का मानव के व्यक्तित्व को, उसके सौन्दर्य को निखारने में विशेष महत्त्व है। परिधानों और अलंकृत आभूषणों के द्वारा नैसर्गिक सौन्दर्य की आभा को और बढ़ा दिया जाता है परन्तु इंगित रचनाकारों की रुचि इस ओर अधिक रही है। जिसका वर्णन प्रिय प्रवास, साकेत एवं नूरजहाँ में दृष्टिगोचर होता है।

प्रिय प्रवास में श्री कृष्ण के आभूषण एवं वस्त्रों का सौन्दर्यवर्णन कवि ने प्रथम सर्ग में किया है।

"विलसता कटि में पट पीत था।
रुचिर–वस्त्र विभूषित गात था।

लस रही उस में बनमाल थी।

कल–दुकूल–अलंकृत स्कंध था।''[18]

चतुर्थ सर्ग में राधा और कृष्ण के बीच उत्पन्न हुए प्रणय की पृष्ठभूमि तैयार करते समय वस्त्राभूषण का परम सौन्दर्य वर्णन किया है–

''जब कभी कल–क्रीड़न सूत्र से।

चरण–नूपुर और कटि किंर्कणी।

सदन में बजती अति मंजु थी।

किलकती तब थी कल वादिता।''[19]

चतुर्दश सर्ग में बालाओं की पायलों की ध्वनि का सुन्दर वर्णन हरिऔध जी ने किया है–

''बालाओं का यक दल इसी काल आता दिखाया।

आशाओं को ध्वनित करते मंजु–मंजीरकों से।

देखी जाती इस छविमयी मण्डली संग में थी।

भोली भाली कतिपय बड़ी सुन्दरी बलिकायें।''[20]

कृष्ण के मुकुट का सौन्दर्य वर्णन–

शिर पर उनके है राजता छत्र न्यारा।

सु–चमर दुलते हे, पाट है रत्न शोभी

परिकर शतशः है वस्त्र औ वेशवाले।

तरचित नभ चुम्बी सद्म है स्वर्ण द्वारा।''[21]

प्रिय प्रवास में कई स्थानों पर मुकुट के सौन्दर्य वर्णन का उल्लेख

किया गया है—

मुकुट मस्तक का शिखि पक्ष का।

मधुरिमामय था बहु मन्जु था।

अपित रत्न समान सुरजिता।

सतत थी जिसकी वर—चन्द्रिका।

अष्टम सर्ग में वस्त्रो का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है—

विविध भूषण वस्त्र विभूषिता।

बहु विनोदित ग्राम बधूटियाँ।

विहंसती नृप गेह— पधारती।

सुखद थी कितना जनवृन्द को।

श्री कृष्ण के पहने हुए आभूषणों का सौन्दर्य वर्णन

होते होवे पतित कण जो अंगरागादिकों के।

धीरे—धीरे वहन कर के तू उन्हीं को उड़ा ला।

कोई माला कलकुसुम की कंठ संलग्न जो हो।

तो यत्नों से विकच उसका पुष्प ही एक ला दे।''[23]

साकेत में श्री रामचन्द्र जी के वल्कल वस्त्रों एवं उनका शरीर ऐसा लग रहा है जैसे सुन्दर नील कमल जल की सेवार से ढका हो मुनिभेष उनका अति सुन्दर लग रहा है—

''ऐं ये वल्कल! दृष्टि कहाँ मेरी रही?

कौतुक, अब तक देख न पाई वह यही।

कहिए, ये किसलिए आज पहने गये?

कहाँ राजपरिधान और गहने गये?"[24]

गंगा के पार पहुँचने पर सीता जी गुहराज को अपनी सोने की अंगूठी देती है जो मिलन की स्मृति दिलाती रहेगी–

"मिलन--स्मृति सी रहे यहाँ तक क्षुद्रिका,
सीता देने लगीं स्वर्णमणि–मुद्रिका।
गुह बोला कर जोड़ कि–"यह कैसी कृपा।
न हो दास पर देवि, कभी ऐसी कृपा।
क्षमा करो, इस भाँति न तुम तज दो मुझे,
स्वर्ण नहीं, हे राम, चरण–रज दो मुझे।"[25]

नूरजहाँ की बाल क्रीड़ाओं का वर्णन जिससे टीका लगाकर सफेद कपड़े पहनाकर सौन्दर्य का चित्रण गुरुभक्त सिंह ने किया गया है–

"मुख चूम चूम सब लेते सुनकर प्यारा तुतलाना,
थे अभी--अभी पहनाये कपड़े सफेद नहलाकर,
मण्डित कर आभूषण से इक टीका श्याम लगाकर।"[26]

नूरजहाँ के निकाह के समय का वर्णन जिसमें सुन्दर जोड़ा पहनकर शेर अफगन आता है–

'पहिने सुरंग जोड़ा जामा नौशा घोड़े पर आता है।
मोती के सेहरे के चिलमन में मंद मंद मुसकाता हैं
ऊँटों पर बाजे बजते है जेवर से अश्व सजाये है।
है झूल लटकते कामदार हाथी पर हौदे छाये है।"[27]

(घ) अस्त्र–शस्त्र और वाहनादि

इंगित रचनाकारों ने अपने काव्य में अस्त्र–शस्त्र में तलवार, बर्छी, छुरी, भाला, खंग, धनुष बाण, त्रिशूल आदि का वर्णन कथा के अनुरूप ही किया है।

प्रिय प्रवास में अक्रूर के संकेत पर ही दोनों घोड़े श्री कृष्ण को लेकर चल दिये–

"दोनों तीखे तुरग उचके और उड़े यान को ले।
आशाओं में गगन तल में हो उठा शब्द हा हा।
राये प्राणी सकल ब्रज के चेतनाशून्य से हो।
संज्ञा खो के निपतित हुई मेदिनी में यशोदा।"[28]

माता यशोदा रथ को धीरे चलने के लिए कहती है।

युग तुरग सजीले वायु से वेग वाले।
अति अधिक न दौड़े यान धीरे चलाना।
बहु हिल कर हा हा कष्ट कोई न देवे।
परम मृदुल मेरे बालकों का कलेजा।"[29]

साकेत में शिवजी के धनुष का वर्णन गुप्त जी ने दशम सर्ग में किया हैं–

"बल–यौवन रूप वेश का,
अपने शिष्ट–विशिष्ट देश का,
दिखला कर लोभ लुब्ध था।

फिर भी राज समाज क्षुब्ध था।

नृप सम्मुख नम्र नाक था।

पर मध्यस्थ महापिनाक था।

सिह मार मरे नही हटा।''[30]

राम और रावण के युद्ध के समय पहाड़, भाले, तलवार, फरसा, गदा, धन, तोमर, भिन्दिपाल, वाण तथा चक्र आदि अस्त्र शस्त्र रक्त की धाराओं को बढ़ा रहे है–

''शेल–शूल असि–परशु, गदा–धन,

तोमर–भिन्दिपाल, शर–चक्र,

शोणित बहा रही है रण में

विविध सार–धाराएँ वक्र।''[31]

देवर शत्रुध्न के आने का आभास द्रुगति से दौड़ते हुए घोड़ो की टांपे सुदृढ मार्ग पर मंदृग की भाँति शोभित हो रही है–

''लो देवर आ गये, उन्ही के

घोड़े की ये टापें है,

सुदृढ़ मार्ग पर भी द्रुतलय में

यथा मुरज की थापें है।''[32]

मेघनाथ तथा लक्ष्मण के मध्य युद्ध के सम शस्त्र का वर्णन भी अवर्णनीय है–

'हुआ वहाँ सम समर अनोखा साज सजाकर,

देते थे पद–ताल उभय कर लौह बजाकर।

शब्द शब्द से, शस्त्र–शस्त्र से, घाव घाव से

स्पर्द्धा करने लगे परस्पर एक भाव से।"

साकेत में श्री राम के धनुष को इन्द्र धनुष के समान शोभायमान कर वर्णन किया है--

"इसके पीछे उस कुटीर पर,
घिरी युद्ध की घोर घटा,
निशाचरों का गर्जन तर्जन,
शस्त्रों की वह तड़िच्छटा।
अभय आर्य ने इन्द्रचाप सा
चाप चढ़ा कर छोड़े बाण।"[34]

'नूरजहाँ' में शेर अफगन को अपनी तलवार अत्यधिक प्रिय है जिसके कारण नूरजहाँ 'तलवार' को अपनी सौत मानकर कहत है--

"है प्रत्यक्ष! नहीं प्रमाण देने का फिर है कोई काम।
लिये बगल में है किसको? है कौन कमर से लटकी बाम।
"यह तो है तलवार" यही तो प्रिय भाजन है बनी हुई।
और लड़ाई इसके कारण रहती है ठनी हुई।
पड़ कर प्रेम जाल में इसके स्नेह सगाई छूट गई।
उदासीनता बढ़ी यहाँ तक तबियत मेरी टूट गई।
एक म्यान में दो तलवारें, कभी नहीं रह सकती है।
किसी और पर प्रेम, नारियाँ, पति का, क्या यह सकती है।"[35]

(च) अन्य वस्तुएँ

भवन, मूर्ति, परकोटादि, अस्त्र–शस्त्र, परिधान, आभूषण, वाहन, पात्र आदि की परिभाषा से भी बाहर की कुछ वस्तुएँ दर्शायीं गयी है।

प्रिय प्रवास में पृथ्वी को सुमेरु पर्वत का उपमा से अलंकृत करते हुए कवि ने सौन्दर्य वर्णन किया है–

यों थे कलाकर दिखा कहते बिहारी।
है स्वर्ण--मेरु यह मंजुलता–धरा का।
है कल्प--पादप मनोहर ताटवी का।
आनन्द--अंबुधि महामणि है मृगांक।"[36]

वीणा, मृदंग एवं बासुरी का अत्याधिक सुन्दर वर्णन प्रिय प्रवास में कवि ने अपनी मार्मिक अभिव्यंजनात्मक शैली में किया है–

जैसी बजी मधुर बीन मृदुंग--वंशी।
जैसा हुआ रुचिर नृत्य विचित्र गाना।
जैसा बंधा इस महा--निशि में समाँ था।
होगी न कोटि मुख से उसकी प्रशंसा।

पर्वतराज के ऊपर चन्द्रकान्त मणि से सुशोभित अपार कान्ति का मुकुट शोभायमान हो रहा है, सौन्दर्य की उक्त पंक्तियाँ द्रष्टव्य है--

आलोक--उज्वल दिखा गिरि शृंग माला।
थे यों मुकुन्द कहते छवि दर्शको से।
देखो गिरीन्द्र--शिर पै महती–प्रभा का।

हे चन्द्र कान्त मणि--मण्डित क्रीट कैसा।''[38]

ब्रज प्रदेश की शोभा का वर्णन उद्धव के माध्यम से इस प्रकार किया–

गर्तों में गिरि कन्दरा निचय में, जो वारि था दीखता।

सो निर्जीव, लीन, तेजहत था, उच्छवास से शून्य था।

पानी निर्झर का समुज्ज्वल तथा उल्लास की मूर्ति था।

देता था गति शील वस्तु गरिमा यों प्राणियों को बता।''[39]

साकेत में मिथिला नगरी में अयोध्या से बारात सजने पर विजय के नगाड़े का सुन्दर वर्णन किया है--

''सरयू जय--दुन्दु भी बजी,

वह बारात बड़ी यहाँ सजी।

भगिनी युग और थी वहाँ

वर भ्राता द्वय और थे वहाँ।''[40]

नूरजहाँ में गयासबेग की पत्नी अपने पूर्व के दिनों का स्मरण कर अपने अतीत का सौन्दर्य वर्णन करती है।

मैं जमीन पर पाँव न धरती, छिलते थे मखमल पर पैर,

आँखे बिछ जाती थी पथ में, मैं जब़ करने जाती सैर।''[41]

चट्टानों की सुन्दरता का वर्णन गुरुभक्त सिंह ने बड़े ही अनूठे ढंग से किया है-

''चट्टानों में बने हुए थे स्वाभाविक कितने आकार।

शिलाकार भी जिन्हे देखकर होता विस्मित बारम्बार।

कहीं कंदरागृह शोभित थे, जिनमे रहते पंचानन।

चिकने चिकने स्फटिक शिला के कही बिछे थे सिहासन।''[42]

संदर्भ सूची

1. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' एकादश सर्ग, पृ0 106
2. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' अष्टम सर्ग, पृ0 67
3. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' षष्ठ सर्ग, पृ0 51
4. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' षष्ठ सर्ग, पृ0 53
5. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 2
6. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 3
7. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, पंचम सर्ग, पृ0 68
8. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, पंचम सर्ग, पृ0 80
9. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, एकादश सर्ग, पृ0 245
10. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, सप्तम सर्ग, पृ0 94
11. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, सप्तम सर्ग, पृ0 99
12. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, तीसरा सर्ग, पृ0 23
13. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, तीसरा सर्ग, पृ0 23
14. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, सत्तरहवाँ सर्ग, पृ0 124
15. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, सप्तम सर्ग, पृ0 99
16. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, दूसरा सर्ग, पृ0 20
17. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, प्रथम सर्ग, पृ0 17
18. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' प्रथम सर्ग, पृ0 3
19. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' चतुर्थ सर्ग, पृ0 31

20. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' चतुदर्श सर्ग, पृ0 149

21. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' त्रयोदश सर्ग, पृ0 146

22. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' अष्टम सर्ग, पृ0 68

23. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' षष्ठ सर्ग, पृ0 57

24. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, पंचम सर्ग, पृ0 69

25. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, पंचम सर्ग, पृ0 73

26. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, दूसरा सर्ग, पृ0 20

27. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, आठवाँ सर्ग, पृ0 64

28. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' पंचम सर्ग, पृ0 70

29. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' पंचम सर्ग, पृ0 42

30. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, दशम सर्ग, पृ0 209

31. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, एकादश सर्ग, पृ0 251

32. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, एकादश सर्ग, पृ0 224

33. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, द्वादश सर्ग, पृ0 279

34. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, एकादश सर्ग, पृ0 233

35. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, ग्यारहवाँ सर्ग, पृ0 84

36. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' चतुर्दश सर्ग, पृ0 166

37. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' चतुर्दश सर्ग, पृ0 166

38. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' चतुर्दश सर्ग, पृ0 165

39. प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपध्याय 'हरिऔध' नवम सर्ग, पृ0 77

40. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, दशम सर्ग, पृ0 211

41. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, प्रथम सर्ग, पृ0 4

42. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, दूसरा सर्ग, पृ0 14

षष्ठ

अध्याय

अभिव्ंजनात्मक लालित्य

(क) भाषा शैली

(ख) शब्द शक्ति और शब्द भण्डार

(ग) गुण

(घ) रीति

(च) वक्रोक्ति

(छ) अलंकार

(ज) औचित्य

(झ) ध्वनि

षष्ठ अध्याय

अभिव्जंनात्मक लालित्य

कला के क्षेत्र में अभिव्यंजनात्मक लालित्य के द्वारा कलाकार की आन्तरिक भावना को मूर्त रूप प्राप्त होता है कला में जड़ से चेतन तक समस्त बौद्धिक अनुभूतियों का चित्रण आवश्यक होता है। किसी कला की सफलता का आधार उसकी अभिव्यंजनात्मक प्रस्तुति भी कही जा सकती है। कलाकार की सफलता भी उसके द्वारा चित्रित किये गये मानवीय गुणों, भावनाओं और अनुभूतियों आदि की कुशलता पर निर्भर करती है। अभिव्यंजनात्मक लालित्य द्वारा कला के सौन्दर्य को संवारा जा सकता है। 'इसके अन्तर्गत कला मानवीय भावनाओं को व्यक्त करने का साधन है।"[1]

मनुष्य एक संवेदनशील प्राणी है, जीवन से सम्बन्धित घटनायें उनके मन--मस्तिष्क को झंकृत करतीं है। यही झंकार मानव के भीतर मनोभावों को जाग्रत करती है और यही भावनात्मक अनुभूति उसके भीतर एक आकुलता पैदा करती है। मनुष्य को अपनी व्याकुलता, चचंल चित्त की अनुभूतियों को प्रदर्शित करने, अपने भावो को साकार करने के लिए भौतिक साधनों का सहारा लेना पड़ता है। इन्हीं भौतिक सहारों के द्वारा मनुष्य मूर्त रूप प्रदान कर आत्मिक संतुष्टि प्राप्त करता और कलात्मक सौन्दर्य को प्रस्तुत करता है। उसके द्वारा आत्मिक संतुष्टि के लिए किये जा रहे कार्यों से सफल कलाकृति का सृजन होता है, उसमें सौन्दर्य का परिपाक होता है। कलाकार द्वारा निर्मित कला में अभिव्यक्त सौन्दर्य सफल अभिव्यंजना पर

निर्भर करता है। यह अभिव्यंजनात्मक लालित्य प्रतिभा सम्पन्न कलाकार द्वारा ही सम्भव होता है।

(क) भाषा शैली

किसी काव्यकृति को काव्यत्व का रूप प्रदान करने में काव्य भाषा का योग कम महत्वपूर्ण नहीं होता। अनुकूल भाषा के अभाव में बड़े से बड़े कवि के भाव लिखित होकर भी अलिखित अथवा अपूर्ण लिखित ही रहेंगे। ऐसी स्थिति में काव्यभाषा की अपनी महत्ता है। वस्तुतः काव्य मार्मिक भावानुभूतिजन्य भाषा का एक विशिष्ट एवं कलात्मक रूप ही है। अतएव काव्य का संप्रेषणीयत्व (भाव) उसका वस्तुपक्ष है जो कि कवि के मानसिक व्यक्तित्व का अंग है और जिसे काव्य रूप में बाह्य–प्रकटीकरण के लिए शब्दिक स्वरूप (भाषा) का वरण करना होता है। कवि एक ऐसा भावुक प्राणी होता है जो जीवन और प्रकृति के व्यक्त स्वरूपों में निहित अनेक अवर्णनीय सौन्दर्यात्मक तत्त्वों का दर्शन करके उसे तदनुरूप ऐसे शब्दों में मुखर करने का प्रयास करता है जो स्वतः स्वाभाविक रूप मे दृश्यावलियों एवं भाव–संधियों को स्वयं तथा दूसरों के लिए अधिक स्पष्ट कर देता है।

काव्य भाषा किस विशेषता के कारण सामान्य भाषा से पृथक् है? इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि अति सूक्ष्म, मर्मस्पर्शी, मानव–संवेदनाओं, तीब्रतम अनुभूतियों, मर्मान्तक भावों अर्थात् साधारणीकरण की अपेक्षा रखने वाले जितने भी भावना–व्यापार है, उनकी अभिव्यक्ति में सामान्य भाषा असमर्थ हो जाती

है।

सामान्य विचारों का संवहन करती हुई भाषा सामाजिकता की पोषण होती है, वही भावसंवाहिका होकर काव्य में भी प्रयुक्त होती है। काव्य रस–स्निग्ध ा भावमूलक होने से उत्तम वस्तु है किन्तु उसे स्पष्ट, उत्कृष्ट एवं सौन्दर्य–संपन्न बनाने वाला उपादान भाषा शिल्प है। दूसरे शब्दों में कलात्मक, कल्पनात्मक, भावात्मक भाषा ही काव्य का प्रायोगिक अस्त्र है। कविता का प्राण भाव अवश्य है किन्तु उसकी कलात्मकता, आकर्षण–सम्पन्नता, प्रभविष्णुता उसके भाव–गांभीर्य की शक्ति तथा संप्रेषणीयता भाषा द्वारा ही सिद्ध होती है। अस्तु, अन्य विषयों की भाँति काव्य की भी अपनी भाषा होती है। अन्य मानवों की भाँति कवि भी लोक में जन्म लेकर जीवन के प्रथम चरण से ही तन, मन और वाक् शक्ति का निर्माण अपने–अपने लोक–संसर्ग में ही करता है, मातृभाषा के रूप में वह प्रथम शब्द लोक–सामान्य भाषा को ही सुनता एवं सीखता है। तात्पर्य यह कि कवि की काव्यकृतियों एवं उसकी काव्य–भाषा का मूल सामान्य भाषा में ही होता है, उसके पृथकत्व असंभव है।

प्रत्येक युग अत्यन्त ही श्रमपूर्वक अपनी काव्यभाषा और शैली का निर्माण करता है और पुनः उसे विनष्ट कर देता है। विनष्टता से तात्पर्य काव्यभाष के अप्रचलन एवं परिवर्तन से है। कारण यह है कि काव्य में प्रयुक्त होते–होते वही शब्द घिस–पिटकर इतने मलिन ओश्र प्रभावहीन तथा पुराने पड़ जाते है कि वे अप्रिय, विकृत, शिथिल, निकृष्ट, अपुष्ट लगने लगते है कि पाठक उससे बचना चाहता है। जब काव्य इस वृद्ध स्तर पर पहुँच जाता है तो काव्यभाषा का भी पतन अवश्यंभावी हो जाता है। और इसका मूल कारण प्रचलित भाषा का अव्याहत परिवर्तन–क्रम है। साहित्यिक युगों का यही.इतिहास है।

भाषा की यही प्रकृत परिवर्तनशील गति भाषा की उत्थान या पतन की दोनों ही विशेषताएँ निर्धारित करती हैं, उसमें शब्दों, उनके उच्चारणों, वाक्य—गठन, रूपाकारों आदि में देशीय अथवा प्रदेशीय स्तर पर अन्तर हुआ करता है। काव्यभाषा की महत्ता इसी में है कि वह इन परिवर्तनक्रमों से अवगत रहते हुए परिवर्तित उन्नत रूप को ही अपनाती हुई सामान्य भाषा का प्रतिनिधित्व करती रहे एवं लोकदृष्टि में अपने साहित्यिक स्तर को अवनत न होने दे।

काव्यगत भाषा—प्रयोग के एक रूप को हम शास्त्रीय भाषा कह सकते है। जिस प्रकार शास्त्रीय काव्य की प्रमुख विशेषता साधारतः ऊँचे पात्रों का चित्रण होती है, उसी प्रकार चित्रण शैली भी उच्च होती है। इसके बाह्य प्रकृति—सौन्दर्य की अपेक्षा न होकर उसका कृत्रिम बाह्य रूप ही प्रधान होता है। अतएव उसमें अनुरूपता, समतुल्यता, क्रम विभाग आदि की पारम्परिक शास्त्रीय सम्मति होती है। जिस प्रकार उसमें परम्परा—पालन का आग्रह होता है उसी प्रकार भाषा का भी शास्त्रीय परम्परा विहित क्लिष्ट, उच्च एवं परिष्कृत, अलकृत तथा काव्यानुमोदित प्रयोग होता है। शास्त्रीय अभिव्यक्ति के माध्यम में भी शिक्षित एवं दीक्षित शिष्टजनों के विपरीत सामान्य जनोपयुक्त तत्वों का एक प्रकार से अभाव रहता है। स्वच्छन्द स्वाभाविक प्रवाह के विपरीत भाषा प्रयोग के कृत्रिमता की गन्ध विशेष रहती है। सारांशतः इसमें असाधणता, प्रांजलता, आलोक—सामान्यता, अर्थगंभीरता, गूढ़ता, व्याकरण—सम्मतता आदि शास्त्रीय काव्यभाषा के लक्षण माने जा सकते है। आधुनिक हिन्दी काव्य में द्विवेदी युग तक काव्य भाषा का स्तर लगभग वैसा ही रहा है।

'प्रिय प्रवास' के आरम्भ में हरिओध जी की रचनाएँ ब्रजभाषा में ही लिखी गयी थी। ब्रजभाषा में ही वे कृष्ण विषयक कविता लिखा करते थे, किन्तु बाद

में वे खड़ी बोली की ओर झुके, 'प्रिय प्रवास' में उन्होंने राधा के रमणीय रूप को भुलाकर उन्हें धर्म–सेविका लोक सेविका रूप में देखा। उन्होंने नायिका भेद का क्रम भी बदल दिया। उन्होंने देश, जाति, परिवार, और पति के प्रेम के आधार पर नायिकाओं के विभिन्न रूपों का वर्णन किया। प्रिय प्रवास में कवि ने कृष्ण को भी रसिक रूप में ही चित्रित किया है।

'प्रिय प्रवास' की भाषा संस्कृत गर्भित है। उनमें हिन्दी के स्थान पर संस्कृत का प्रयोग अधिक किया है। जिस प्रकार संस्कृत गर्भित खड़ी बोली का तत्काल प्रयोग होता आ रहा था उसी धारा को आत्मसात करते हुए 'हरिऔध' ने भी संस्कृत निष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया। प्रिय प्रवास की कविता दुरूहता में सबसे आगे निकल गई है।

अत्यन्त सरल और ठेठ मुहावरेदा भाषा का तथा उर्दू के 'फाइलालून मफाइलुन फेलन के कैंड के छन्दों का व्यवहार हुआ है। संस्कृत बहुल सामाजिक भाषा और संस्कृत छन्द–

''सद्वस्त्रा सदलंकृता गुणयुता सर्वत्र सम्मानिता

रोगी–वृद्ध–जनोपकार–निरता सच्छास्त्रचिन्तापरा

ठेठ मुहावरेदार भाषा और उर्दू कैडे के छन्दः

''आँख उनकी राह में देवें बिछा,

प्यार वाली आँख से उनको लखें।

आँख जिससे जाति की ऊँची हुई।

आँख पर क्या आँख में उनको रखे।।

गणेश वन्दना आदि के लिए उन्होंने कवित्त शैली को स्वीकार किया

है। भाषा और शैली की दृष्टि से हरिऔध जी को द्विगुणात्मक कला का कवि कहा गया है। वे इस दृष्टि से दो शीर्ष बिन्दुओं को मिलाते रहे है। एक ओर उन्होंने संस्कृत के छन्दों को स्वीकार किया है दूसरी ओर उर्दू कैंडे लिखे है। उनकी आरम्भिक कविता ब्रजभाषा में है। तो परवर्ती कविता खड़ी बोली में। प्रिय प्रवास में यदि संस्कृत–निष्ठ सामासिक पदावली का व्यवहार है तो 'चोखे–चौपदे' में ठेठ मुहावरे दार भाषा का। उनकी इस कला पर ही मुग्ध होकर निराला ने उन्हें हिन्दी का सार्वभौम कवि कहा था।

साकेत की भाषा की जाँच के पूर्व मैथलीशरण गुप्त की भाषा–विषयक मान्यताओ को उद्धत करना अप्रासंगिन न होगा। गुप्त जी ने विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं एवं अपने काव्यों की भूमिका में भाषा सम्बन्धी अपने विचार प्रस्तुत किये है। "गुप्त जी ने पूर्ववर्ती कवियों की भाँति भाषा की सरलता की काव्य की निधि माना है, किन्तु सरलता से उनका अभिप्राय संस्कृत–शब्दों के बहिष्कार से नहीं है। इसीलिए उन्होंने 'काव्य स्वतंत्रता पर सम्मति' शीर्षक लेख में यह लिखा है– "मैं इस बात को मानता हूँ कि भाषा का सबसे बड़ा गुण सरलता है, पर कहीं–कहीं संस्कृत के शब्द लेने ही पड़ते हैं। बिना ऐसा किए मुझे जैसे अल्पज्ञ जनों का काम नहीं चलता। मेरी तो यह राय है कि अभी हिन्दी में संस्कृत के शब्द और भी सम्मिलित होंगे, बिना ऐसे उसका शब्द–संचय विपुल न होगा।"

काव्य–भाषा की समृद्धि के लिए कवि को बन्धनमुक्त और उदार दृष्टि से शब्द–संचय का परामर्श देकर गुप्त जी ने इसी मत का प्रतिपादन किया है कि भाषा की परिपक्वता इसी में है कि उसमें विविध मानवीय भावों की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त शब्द वर्तमान हों। उनके मतानुसार "किसी भी भाषा की योग्यता

उसकी शब्द–सम्पत्ति पर अवलम्बित हैं विपुल शब्द–भण्डार होना चाहिए।" कवि की भाँति अध्येता को भी शब्दबोध के प्रति सजग रहना चाहिए। गुप्त जी ने इस धारणा को प० बनारसी दास चतुर्वेदी के प्रति 29 जनवरी, सन् 1932 को लिखे गए एक पत्र में इस प्रकार व्यक्त किया है– "प्रसाद गुण को मैं सदैव पक्षपाती हूँ परन्तु लेखक भी पाठक से कुछ आशा रखता है। यों तो किसी भी लेखक की सभी कृतियाँ सबके लिए समान रूप से ग्रहणीय नहीं हो सकतीं।"

अतः यह स्पष्ट है कि कवि ने भाव–साधना की भाँति शब्द–साधना को भी कवि–कर्म का अंग मानकर भाषा की सहजता को काव्य का प्रधान गुण माना है। इस विषय में 'ब्रजभाषा और खड़ी बोली' शीर्षक कविता में खड़ी बोली के प्रति कथित ये पंक्तियाँ दृष्टव्य है–

कहना सब सुस्पष्ट, सरल शब्दों में खुलकर,
बन कर रहें सुवर्ण, वर्ण काँटे पर तुलकर।

इन पंक्तियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गुप्त जी ने भाषा की सुबोधता और स्वच्छन्दता को भी काव्य की सजीवता के लिए अनिवार्य माना है। इसीलिए उन्हें शब्द–वृतियों में अभिधा अधिक ग्राह्य रही है। लक्षणा–व्यंजना का तिरस्कार न करने पर भी उन्होंने अपनी कृतियों में अप्रत्यक्ष रूप से शब्द के वाच्य–वाचक व्यापक को ही गौरव दिया है। साकेत में उन्होंने लिखा है–

बैठीं नाव निहार लक्षणा–व्यंजना।
'गंगा में गृह' वाक्य सज वाचक बना।

इसी प्रकार उन्होंने शब्द की विशिष्ट अथवा वांछित अर्थ के लिए उपयुक्त शब्द व्यवहार को भाषा की शक्ति–कान्ति का संस्कार मानकर काव्य में श्रवण–सौख्य को उसका स्वाभाविक फल माना है। उनके मतानुसार– "सुश्राव्य

होना भी भाषा का एक बड़ा गुण है, किन्तु यह भी उनके शब्दों पर अवलम्बित रहता है। उपयुक्त अर्थ के लिए उपयुक्त शब्द होने से श्रुति–सुखदता आप ही आप उत्पन्न हो जाती है।'' सचमुच भावोपयुक्त पद–योजना से काव्य में अभिव्यंजना की सरसता का विधान काव्य का महत्वपूर्ण उपादान है। उससे काव्य का बहिरंग ही शोभान्वित नहीं होता, अपितु उसे भावक्षेत्र में भी सौन्दर्य की उपलब्धि होती है। गुप्त जी ने काव्य–पदावली का ऋजु–सरलता, सहज मधुरता और प्रभविष्णु सजीवता का उल्लेख कर काव्य–जगत के इसी मनोरम सत्य का उद्घाटन किया है।

भाषा की ऐसी सरलता वर्णन की ऐसी प्रांजलता और निरीक्षण की ऐसी सूक्ष्मता 'नूरजहाँ' के प्रत्येक पन्ने में देखकर वारम्बार मन में यही आता है कि हिन्दी में तो एक नई चीज है। अद्वितीय कुछ कवि के काव्य–चातुर्य्य से, कुछ अपनी सौन्दर्य–विस्मरिणी बुद्धि से, कुछ प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य का साक्षात्कार करके जी में कह सकते है कि यह कवि तो अपने ढंग का अकेला है।

'नूरजहाँ' के कुछ प्रसंग अपवाद के रूप में गिनाए जा सकते है जहाँ कथा का विकास वर्णन के द्वारा न होकर संवादों के बीच हुआ है परन्तु यह संवाद प्रायः निर्जीव है। कहीं–कहीं भाषा शैली में नाटकीयता है कुछ कुछ नौटंकी के ढंग की। अत्याचारी शेर अफगन और विरोधिनी मेहरूनिसा के बीच संवाद इस कथन की पुष्टि में उद्धत किया जा सकता है।

''ऐसी कठोरता लखकर यों बोली आँखें भर कर।
अपने को मिला दिया है जिसने उसकी हस्ती में।
अपने को मिला दिया जिसने उसकी मस्ती में।
है मस्त हुआ मौला में मत उस गरीब को मारो।

× × ×

तब कहा शेर अफगन ने, बस थाह अक्ल की पाई

सच है औरत के हिस्से में नहीं बुद्धि है आई।

× × ×

है क्षमा, दया, कमजोरी, दिखलाते उसे जनाने।

तुम आई हो क्या मुझको यह उल्टा पाठ पढ़ाने।

मैं हूँ इक मर्द सिपाही मैं खेल मौत से करता।

होवे खिलाफ दुनिया भी मैं नही जरा भी डरता।'[2]

'नूरजहाँ' के अधिकांश संवाद इसी विस्तृत वर्णन भाषा शैली में लिखे गये है, संक्षिप्त प्रभावात्मक भाषा शैली में नही। सवांद की सफलता उसकी संक्षिप्तता, चुस्ती, प्रत्युत्पन्नमति ओर सजीवता में होती है, केवल दो पात्रों के बीच कहे सुने जाने के कारण नहीं। नूरजहाँ के संवादों में यह गुण कही नहीं है। केवल कवि अपनी ओर से वर्णन न कर बीच में पात्र लाकर खड़े कर देता है। एक मात्र बहुत दूर तक अपनी बात कहता रहता है और फिर दूसरा पात्र उतनी ही दूर तक उसका उत्तर देता जाता है। ऐसे कथोपकथन मात्र को नाटकीय भाषा शैली का प्रयोग कहा जा सकता है।

(ख) शब्द शक्ति और शब्द भण्डार

१ शब्द शक्ति

शब्दविहीन अर्थ एवं अर्थविहीन शब्द की कल्पना साहित्य के काव्य प्रदीप के अन्तर्गत की ही नहीं जा सकती। व्यंग्यार्थ और वाच्यार्थ को समझने के लिए

शब्द शक्ति का ज्ञान होना आवश्यक है। वर्णों के समूह को शब्द कहते है, अतएव जिसके द्वारा अर्थ की प्रतीति या बोध हो उसे शब्द शक्ति कहते है। इसके तीन भेद माने गये है।

अ— अभिधा

आ— लक्षणा

ई— व्यंजना।

अ— अभिधा— शब्द को सुनते ही सबसे जिस अर्थ का बोध होता है उसके वाच्यार्थ कहते है और वाच्यार्थ को कहने वाला शब्द वाचक कहलाता है एवं जिस शब्द के द्वारा यह अर्थ बोधगम्य होता है उसे 'अभिधा' शक्ति कहते है। अभिधा वाक्य के अन्तर्गत किसी शब्द के केवल संकेतित अर्थ का बोध कराती है। अभिधा के द्वारा अर्थ निश्चित रहता तथापि उसमें कल्पना आदि का चमत्कार रहता है।

प्रमाणों में जो स्थिति प्रत्यक्ष की है, शक्तियों में वही अभिधा की है। गुप्त जी के काव्य का समग्र रूप में आकलन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि भाव सहज अभिव्यक्ति ही उनका उद्देश्य था, शिल्पविधान नहीं। उदाहरण—

"क्यों न अब मैं मत्त गज—सा झूम लूँ।
कर—कमल लाओं तुम्हारा चूम लूँ।
कर बढ़ाकर, जो कमल—सा था खिला,
मुस्कराई और बोली उर्मिला—
मत्त गज बनकर विवेक न छोड़ना,
कर—कमल कहकर न मेरा तोड़ना।

इसमें कवि ने लक्ष्मण और उर्मिला की बीच चल रहे परिहास को

शब्दों में बांधा है। लक्ष्मण जब अपने को गज़ सा समझने लगते हैं और उर्मिला के कर–कमल को चूमने का प्रयास करते हैं, तब कितने सरल शब्दों में उर्मिला कह उठती है कि मेरे कमल सदृश हाथ को सचमुच कमल समझकर तोड़ मत देना क्योंकि हाथी को कमल की सुन्दरता एवं कोमलता से उतना आनन्द नही आता जितना उसे तोड़ने और मसलने में होता है।

आ– लक्षणा– जिस शक्ति के द्वारा मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाला अन्य अर्थ लक्षित हो अर्थात् जिन शब्दों का मुख्यार्थ न लेकर उसी से सम्बन्धित कोई दूसरा अर्थ लक्षित हो जो कि रूढ़ अथवा प्रसिद्ध हो। लक्षणा शक्ति कहलाती है।

जब किसी पद या पद–समूह का साक्षात् संकेतित अर्थ अभिधा नामक शब्द शक्ति द्वारा नहीं खुल पाता है तो वहाँ एक दूसरा अर्थ भी होता है, जो मुख्य अर्थ से सम्बन्धित होता है। यह अभिप्रेत अर्थ रुढ़ि या प्रयोजन के कारण अन्तर्निहित होता है और जिस शब्द–शक्ति के द्वारा यह लक्षित हो जाता है, उसे ही लक्षणा कहते है। उदाहरण–

''शिशिर, न फिर तू गिरि वन में।

जितना मांगे, पतझड़ दूँगी मैं इस निज नन्दन में।

यहाँ उर्मिला ने स्वशरीर के लिए 'नन्दन' और विरहजनित क्षीणता के लिए 'पतझड़' शब्दों को प्रयोग किया है। अतः यहाँ मुख्यार्थ का बाध है और सादृश्य सम्बन्ण को सूचित करने के कारण गौणी लक्षणा है।

'श्रुतिपुट लेकर पूर्व–स्मृतियाँ खड़ी यहाँ पट खोल,

देख आप ही अरुण हुए हैं उनके पांडु कपोल।

इसमें मानवीकरण प्रधान है, पर उसमें लाक्षणिक चित्रोपमता के द्वारा सजीवता का

आरोप भी हुआ है।

जाग उठे हैं मेरे सौ–सौ स्वप्न स्वयं हिलडोल,

और सन्न हो रहे, सो रहे, ये भूगोल खगोल।

यहाँ लक्षणा के द्वारा उक्ति चमत्कार ही नहीं, अमूर्त्त व्यापार और विराट् वस्तु का मूर्त्त चित्र भी प्रस्तुत किया गया है।

बहू, बहू माँ चिल्लाई

आंखे दूनी भर आई।

हाथ हटा ये वल्कल हैं, मृदुतम तेरे करतल हैं।

यदि ये छू भी जावेंगे, तो छाले पड़ आवेंगे।

वल्कल वस्त्र छूने से छाले नहीं पड़ते, अतः मुख्यार्थ की बाधा है कौशल्या की उक्ति का प्रयोजन सीता की शारीरिक कोमलता व्यक्त करना है, अतः प्रयोजनवती लक्षणा है।

ई– व्यंजना– अभिधा और लक्षणा द्वारा जिस शब्द का अर्थ उपलब्ध नहीं होता, बल्कि एक दूसरा ही अप्रकट अर्थ लिया जाय उन्हें व्यंजक शब्द कहते है और जिस शक्ति द्वारा व्यंगार्थ का बोध होता है वह व्यंजना कहलाता है।

अपने अपने अर्थ का बोध कराकर अभिधा एवं लक्षणा नामक शब्द शक्तियों के वितर हो जाने पर जिस शब्दशक्ति के द्वारा व्यंगार्थ का बोध होता है, उसे व्यंजना शक्ति कहते है। भाषा की सबसे महत्वपूर्ण शक्ति है व्यंजना और साहित्य इसका अपना क्षेत्र है। उदाहरण–

साल रही सखि, माँ की

झाँकी वह चित्रकूट की मुझको,

बोली जब वे मुझसे–

मिला न वन ही न भवन ही तुझको।

इसमें भवन शब्द ध्यान देने योग्य है। यहाँ उर्मिला के लिए कहा गया है कि 'न तुम्हें भवन ही मिला और न वन ही। आप्त प्रमाण से जब हमें ज्ञात है कि उर्मिला को भवन मिला, तब बुद्धि सीधे यह स्वीकार नहीं कर सकती कि उर्मिला को भवन नहीं मिला। यहाँ 'भवन' शब्द का सामान्य रूप में जो अभिधेयार्थ है, उसकी उपादेयता बिल्कुल नहीं है। कवि ने अपने भावावेश में जिस 'भवन' के न मिलने का उल्लेख किया है, वह भवन सामान्य नहीं कुछ विशेष है, जिसकी प्रतीति में अभिधा अशक्त है। अभिधा के आशक्त होने पर व्यंजना शब्द के सामान्य अर्थ को अर्थान्तर में संक्रमित करने को जोर मारती है। यहाँ 'भवन' शब्द का वाच्यार्थ स्वयं आश्रय बनकर प्रासंगिक उपयोगिता केलिए 'सुखमयता' रूप धर्म को ग्रहण करता है। अतः यहाँ 'भवन' का अर्थ 'सुखमय भवन' हो गया है।

''चूमता था भूमि तल को अर्द्ध विधु सा भाल।
बिछ रहे थे प्रेम के दृग, जाल बनकर बाल।।''[3]

'चूमना' किया की कर्मता का सम्बन्ध मुख में ही प्रसिद्ध हैं चुम्बन की कर्मता चाहे अन्यत्र भी रह ले, पर चुम्बन क्रिया के कर्तृत्व का ठेका तो एकमात्र मुख ने ही ले रखा है। पर यहाँ 'चूमना' भाल की क्रिया बतायी गयी है। यह सर्वथा व्यवहार विरुद्ध जान पड़ती है। फलतः यथाश्रुत सम्बन्ध की अनुपपत्ति लक्षणा को उकसाती है और लक्षणा वृत्ति केवल 'संयोग' मात्र अर्थ प्राप्त कराती है। चुम्बन भी एक प्रकार का संयोग ही है, जिसका कर्त्ता नियत है। यहाँ विशेष संयोग वाच्य है और सामान्य संयोग लक्ष्य। अतः वाच्यार्थ का लक्ष्यार्थ से सामान्य–विशेष भाव संबंध भी हुआ। अब रही बात प्रयोजनांश की। यह विवक्षित अर्थ के वाचक शब्द के बावजूद भी जो अवाचक शब्द का प्रयोग किया गया, उसक एकमात्र प्रयोजन है क्रिया की मद्द

ुरता एवं रति भाव की झलक देना। वह माधुर्य एवं रतिभाव 'चुम्बन' शब्द के साहचर्यवश शीघ्र ही व्यंजित हो उठता है।

२ शब्द भण्डार

शब्द भण्डार की दृष्टि से हिन्दी के समस्त कवि संस्कृत के ऋणी है।

साकेत में संस्कृत शब्दों की अधिकता तो अवश्य है, परन्तु संस्कृत शब्दों में भी उनके तद्भव रूपों की ही प्रधानता है। यथा– अस्य, अरुन्तुद, अपत्य, वीक्ष्य, कीर्ण, जिष्णु, निगड़, त्वेष आदि। साकेतकार ने खड़ीबोली के शब्दों का भी प्रयोग किया है। यथा– लाक्ष्मण्य, अम्बुजता, मनोज्ञता, सारल्य, औदास्य, प्रकटित, राहित्य, उत्कर्षता, बल्गित, आरुण्य आदि। कवि ने प्रान्तीय शब्दों का भी प्रयोग किया है। यथा– धाड़, धड़ाम, डिडकार, तत्ती, नेंक पैठ, हेरना आदि।

प्रिय प्रवास में भी हरिऔध जी ने संस्कृत, तद्सम आदि शब्दों का प्रयोग किया है। यथा– अभावुकता, द्युतिमती, कलकिंकिर्णी, अवगाहता, जरठ, गोरज, तरणिजा, उपढौकन, मुरजादि, तृष्णावरतीय, लाडिला, दुरुहपन, पंतगोपमाना आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

'नूरजहाँ' के लेखन ने हिन्दी शब्दावली के साथ ही साथ उर्दू, फारसी, शब्दावली का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। यथा– दोतारे, मृगछौने, रुचिर, पंचानन, अश्वकान, बरबत, स्यापे, रकीब, कम्पा, चिकुर, अब्बा है खलाब, जौमाला, करधनी, जुन्नार, खेल तमाशा, खुदापरस्त, अल्ला पाक, रैयत, फानूस आदि।

(ग) गुण

रस के बिना काव्य उच्च कोटि का नहीं माना जाता। इसी से रस को

काव्य की आत्मा कहा जाता है। जिस प्रकार वीरता, उदारता, त्याग आदि गुण शरीर में चितस्वरूप विद्यमान आत्मासे अलग नहीं होते और उसका उत्कर्ष प्रकट करते हैं उसी प्रकार माधुर्य, ओज, प्रसाद, गुण काव्य के आत्मा के समान विराजमान आनन्दरूप रस से अलग नहीं है और उसका उत्कर्ष सिद्ध करते हैं। इसी से गुण को रस का धर्म माना जाता हैं यहाँ धर्म का तात्पर्य 'धारणकर्ता' समझना चाहिये। अतएव रस के उत्कर्ष के लिए उसके साथ गुणों का होना आवश्यक है। आचार्य दण्डी के अनुसार 'काव्य' की शोभा बढ़ाने वाले धर्म को 'अलंकार' कहा गया है। वह अलंकार में गुण का भी समावेश मानते हैं। यों शब्द और अर्थ के जिन धर्मों से काव्य की शोभा हो वे गुण कहे जाते है। गुणों की व्यंजना वर्णों या अक्षरों से होती है। इससे यह न समझना चाहिये कि गुण वर्णों में होते हैं– वीरता, दया आदि गुण चेतन आत्मा के हैं, शरीर के नहीं, वैसे ही गुण रस में रहते हैं, वर्णों में नहीं। ये गुण सरस काव्य में ही माने जाते हैं नीरस में नहीं। कारण, नीरस काव्य को तो वस्तुतः काव्य ही नहीं माना जाता। अतः गुण से युक्त काव्य सरस होगा ही। जिस भाँति किसी पुरुष के शरीर की सुडौल और पुष्ट गठन, उसकी मदमत्त चाल आदि देखते ही उसकी वीरता की झलक मिलने लगती है, उसी भाँति कठोर या मधुर शब्द से युक्त रचना को सुनते ही ओज और माधुर्य की प्रतीति तत्काल होने लगती है। इस प्रकार गुणों को तीन भागों में विभक्ति किया गया है।

अ– माधुर्य।

आ– ओज।

ई– प्रसाद।

अ– माधुर्य– जिस गुण के कारण किसी रचना को पढ़ या सुनकर चित्त आनन्द से द्रवित हो जाय, पिघल–सा जाय ओर उससे कठोरता, उमंग अथवा

बिरक्ति हट जाय या पैदा न हो, उसे मार्धुय कहते हैं। इस गुण के लिए आवश्यक है कि 1– रचना में ट वर्ग के सभी वर्ण, 2– र और पंचम वर्णों (ङ ञ ण न म) के संयोग से बने संयुक्त वर्णों के शब्द और 3– लम्बे–लम्बे समास वाले वाक्यांश न हो, अर्थात् ओज गुण के लिए जो बाते आवश्य हैं सभी इस गुण के लिए अनावश्यक है, शृंगार, करुण और शान्त में यह गुण होता है।

ऊर्मि हूँ मैं इस भवार्णव की नई।

पर विलीन नहीं, रहूँ गति हीन मैं,

दैन्य से न दबूँ कभी, वह दीन मैं।

अति अवश हूँ किन्तु आत्म अधीन मैं,

सखि, मिलन के पूर्व ही प्रिय लीन मैं।

आ– ओज– ओज से मन में उमंग, उत्साह आदि का संचार होता है, 1– किसी रचना में ट वर्ग (ट ठ ड ढ ण) की अधिकता, 2– अन्य (क च त प) वर्गों के पहले और तीसरे तथा चौथे वर्णों के योग से बने संयुक्त शब्दों जैसे (रिच्छ, जुद्ध आदि) की प्रचुरता, 3– र के संयोग से बने शब्दो (यथा– क्रुद्ध वक्र, आवर्त आदि) और 4 कई शब्दों के योग से बने लम्बे लम्बे समासों वाले पदों के प्रयोग से ओज उत्पन्न होता और बढ़ता है। वीर और रौद्र रस में इसका होना अनिवार्य है। वीभत्स और भयानक रस भी इस गुण से उत्कर्ष प्राप्त करते हैं।

अ– प्रिय प्रवास–

ब– साकेत–

"लग गई आग सी सौमित्र भड़के,

अधर फड़के प्रलय घन तुल्य तड़के।

'अरे मातृत्व तू अब भी जताती,

ठसक किसको भरत की है बताती।"[4]

ई– प्रसाद– जिस गुण के कारण किसी रचना का अर्थ तुरत समझ में आ जाय, उसका पूरा प्रभाव चित्त पर पड़ जाय, उसे प्रसाद गुण कहते है।

हो रहा है जो जहाँ, सो हो रहा,
यदि वह हमने कहा तो क्या कहा?
किन्तु होना चाहिये कब क्या, कहा?
व्यक्त करती है कला की यह यहाँ।

(घ) रीति

अंग संस्थान की भाँति पदों के संगठन को रीति कहते है। यह रीति पद संघठन के आधार पर मधुरता, सुकुमारता या कठोरता का उद्रेक करती है और रसों की उपकारण होती है। मन की इन वृत्तियों–उपनागिरका, परुषा और कोमला– के आधार पर तद्नुसार माधुर्य ओज और सम–वर्णों की रचनाएँ क्रमशः बैदर्भी, गौड़ी और पांचाली रीति कहलाती है।

अ– बैदभी।

आ– गौड़ी।

ई– पांचाली।

अ– बैदर्भी– (उपनागरिका वृत्ति) माधुर्य गुण की व्यंजना करने वाले वर्णों की रचना को उपनागरिका वृत्ति कहते है। इसमें माधुर्य व्यंजक वर्ण जैसे म, न, ज, आदि की योजना की जाती है। इन वर्णों द्वारा हुई समास रहत मनोहर रचना को बैदर्भी रीति करते है।

भ्रमरी, इस मोहन मानस के, सुन सुन्दर है रस भाव सभी,
मधु पीकर और मदान्ध न हो, जड़ जा बस है अब क्षेम तभी।
पड़ जाय न पंकज–बंधन में, निशि यद्यपि है कुछ दूर अभी।
दिन देख नही सकते सविशेष, किसी जन का सुख भोग कभी।

X X X

था निशीय, कालिन्दी कलकल शांत था
था मारुत हो श्रात कहीं पर सो रहा।
सुप्तधरा का रजनी तम से मलिन मुख।
जगमग नभ दीपों ही से है हो रहा।"[5]

आ– गौड़ी (परुषावृत्ति)– ओज गुण की व्यंजना करने वाले वर्णों की रचना को परुषावृत्ति कहते हैं। इसमें ओज व्यंजक वर्ण जैसे ट, ठ, ड, ढ आदि की योजना की जाती है। इन वर्णो द्वारा की गई अधिक समास–युक्त ओज को उद्दीप्त करने वाली रचना को गौड़ी रीति कहते हैं।

दल बादल भिड़ गये, धरा धँस चली धमक से,
भडत्रक उठा क्षय कड़क तडत्रक से, चमक दमक से।

X X X

आशा टिम टिम सी करती है, हुआ चाहती है वह गुल,
किस विदेश में पावेंगे हम अपना गुल, अपनी बुलबुल?
है फिर भी अनुरोध प्रिया का, हठ कैसे यह टालूँ मैं,
मैं ही डूब रहा हूँ, दुख में, कैसे उसे सम्हालूँ मैं?"[6]

ई– पांचाली (कोमलावृत्ति)– माधुर्य और ओज व्यंजक वर्णों के अतिरिक्त शेष वर्णों की रचना को कोमला वृत्ति कहते है। इसमें अधिकाशंतया ल, र,

य, ख, प, अ आदि वर्णों की योजना की ज़ाती है।

फल फूलों से हैं लदीं डालियाँ मेरी,
ये हरी पत्तलें, भरी थालियाँ मेरी,
मुनि बालायें हैं यहाँ आलियाँ मेरी,
तटिनी की लहरें और तालियाँ मेरी।
क्रीड़ा–सामग्री बनी स्वयं निज छाया।
मेरी कुटिया में राज–भवन मन भाया।
X X X
अब हाथ बढ़ा लतिका से वह फूल तोड़ लाती है।
हँस खेल खेलकर घुमड़ी, चक्कर खा गिर जाती है।
वह दौड़ बीच में जाती जो उठता कहीं बंवडर।
माता घबराई फिरती वह लोटी जाती हंस कर।
वर्षा में घन लख लख कर वह नाच नाच कर गाती।
फिर तड़प तड़ित की सुनकर अंचल में छिप छिप जाती।''[7]

(च) वक्रोक्ति

वक्रोक्ति का अर्थ है– वक्र (टेढ़ाद्व घुमाफिराकर) उक्ति (कथन) अर्थात् कही गई बात का अर्थ घुमाफिराकर दूसरा ही ग्रहण करना। जहाँ इस प्रकार का अर्थ ग्रहण किया जाता है, वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है। इसके दो भेद है।

1– श्लेष वक्रोक्ति– जहाँ किसी शब्द का अर्थ द्वारा भिन्न कर दिया जाय, वहाँ श्लेष वक्रोक्ति अलंकार होता है। यथा–

(श्री कृष्ण रुक्मिणी के यहाँ गये) उनसे उन्होंने कहा–

श्रीकृष्ण– "खालो जू किवाँर।"

रुक्मिणी– "तुम कौ हो एतीबार।"

श्रीकृष्ण– "हरि नाम है हमारो।"

(रुक्मिणी ने 'हरि' का अर्थ 'बन्दर' लगाकर कहा)

रुक्मिणी– "बसौ कानन–पहार में।

(अर्थात् घर में हरि (बन्दर) का क्या काम? जाओं किसी जंगल में या पहाड़ में निवास करो।)

2– काकु वक्रोक्ति– जहाँ वक्ता की कथितोक्ति का अर्थ श्रोता काकु (कंठ–विकार) से अन्य लगा लेता है, वहाँ 'काकु वक्रोक्ति होती है। यथा–

(रावण ने अंगद से अपनी भुजाओं की शक्ति की डींग मारी, इस पर अंगद ने कहा)

"सो भुज बल राख्यो उर घाली।

जीतेउ सहसबाहु, बलि, बाली।"

उपर्युक्त उदाहरण में 'जीतेउ' शब्द का अर्थ काकु से 'हारेउ' अर्थात् हारे थे कर दिया है। अतः यहाँ काकु वक्रोक्ति है।

(छ) अलंकार

जैसे रहन–सहन, खान पान, वेशभूषा आदि में सुन्दता सबको प्रिय है, वैसे ही उक्ति को भी सुन्दर कर्णप्रिय तथ अर्थसौष्ठव से युक्त शब्दों में सुन्दर ढंग

से कहना–सुनना सबको रुचिकर है। यदि कोई सहज सुन्दर वस्तु सजा दी जाय तो उसमें पहले से अधिक आकर्षण आ जाता है, वह पहले से अधिक आंखों या मन को भाने लगती है। इसलिए देह की सहज सुषमा को बढ़ाने के लिए प्रसाधन आभूषणों आदि अन्य वस्तुओं की आवश्यकता हुई। संस्कृत में 'अलंकृ' धातु का अर्थ है 'भूषित करना'। जो भूषित करे उसे 'अलंकार' कहते है। अपनी उक्ति को अलंकृत करने या सुन्दर ढंग से प्रकट करने की रुचि सब में होती है। ऐसा करने से अभिव्यक्ति विचार सुनने में अच्छे लगते हैं साथ ही अधिक प्रभावशाली भी होते है अर्थात् अलंकारों से उक्ति की शोभा बढ़ जाती है। तभी काव्य की शोभाकरने वाले धर्मों को अलंकार कहते है। मूलतः अलंकारो क दो भेद है।

1– शब्दालंकार

2– अर्थालंकार

इन दो अलंकारों के अतिरिक्त इनके भी अनेक भेद है।

हरिऔध ने प्रिय प्रवाह में बड़े ही स्वाभविक ढंग से अलंकारों का प्रयोग किया है। यथा–

1– अनुप्रास–

'कमल लोचन क्या कल आ गये।

पलट क्या कु–कपाल क्रिया गई।''

उपमा–

''नव प्रभा–परमोज्जल लीक सी,

गतिवती–कुटिला–फणिनी सभा।

रूपक–

''ब्रजधरा एक बार इन्हीं दिनों

पतित थी दुख वारिधि में हुई,
पर उसे अवलम्बन था मिला,
ब्रज–विभूषण के भुज–पोत का।''

उत्प्रेक्षा–

लस रही लहरें रस मूल थी
सब सरोवर के कल अंक में,
प्रकृति के कर थे लिखते मनो,
कल कथा कमनीय ललामता।''

यमक–

नित वह कलपाता है मुझे काल हो क्यों,
जिस बिन कल पाते हैं नहीं प्राण मेरे।

इसके अतिक्ति काव्यलिंग, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारो का भी प्रयोग हरिऔध जी ने किया है।

काव्य कला एक उत्कृष्ट रूप है। कला का उद्देश्य ही अपने को पूर्ण रूप से संसार के समक्ष प्रदर्शित करना है। यह पूर्णता अलंकार के क्षेत्र मं आसानी से सम्पन्न होती है, इसलिए अलंकार काव्य का आवश्यक साधन है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि अलंकार का अनावश्यक प्रयोग होता चले। अलंकार की योजना और उसके विधान पर ध्यान देने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि किसी वस्तु के रूप, गुण या व्यापार–जन्य भाव की तीव्रता की प्रतीति के लिए उसके निकट किसी अन्य वस्तु का अतिरिक्त चित्र उपस्थित किया जाता है जो वर्ण्ययुक्त के समान या उससे अधिक रूप–गुण व्यापार सम्पन्न हो। यही द्वैतचित्र कल्पना विधान है।

अलंकार केवल भावों के उन्मेष के लिए ही प्रयुक्त नहीं होता, बल्कि

भाषा के रूप–सौन्दर्य की वृद्धि के लिए भी उसका प्रयोग किया जाता है। भाषा की अभिधा शक्ति जहाँ मनोनुकूल भावभिव्यक्ति में असमर्थ–सी प्रतीत होती है, वहाँ अलंकार–विधान द्वारा भाषा को एक नवीन समर्थता दी जाती है। सुन्दरता का केवल बोध हमारी भाषात्मक सत्ता पर कोई प्रभाव नहीं डालता है। बोधावस्था में आनन्द की प्रतीति के लिए हमारा आत्मभाव सुरक्षित नहीं रहता है। किसी का मुख सुन्दर है, इसके लिए यदि हमारे मन में रति या अनुराग उत्पन्न होता है तो उक्त सौन्दर्यजन्य भाव के आस्वादन के लिए हम आत्मभाव को सुरक्षित रखना चाहते हैं। अलंकार उस भाव को आस्वादनीय होने में–उसका रस परिणत होने में–हमारी सहायता करता है। ऐसी सहायता के क्रम में द्वैतचित्र–कल्पना का विधान अपेक्षित है। उदाहणार्थ–

लिखकर लोहित लेख, डूब गया है दिन अहा।
व्योम–सिन्धु सखि, देह तारक बुद–बुद दे रहा।

समुद्र के साथ आकाश की अभेदता प्रतिपादित कर रूपक अलंकार द्वारा यहाँ एक चित्र व्योम का है, जिसमें सूर्य डूब चुका है और तारे निकल आये हैं। दूसरा चित्र सिन्धु का है, जिसमें बुदबुद निकले हुए है। यहाँ वर्ण्यवस्तु आकाश का रात्रिकालीन दृश्य है। उसी प्रतीति के लिए समुद्र का दृय उपस्थित किया गया है।

तारक–चिह्न दुकूलनी, पी–पीकर मधु मात्र।
उलठ गई श्यामा यहाँ, रिक्त सुधाधर पात्र।

इस समासोक्ति अलंकार के उदाहरण में रात्रि का एक चित्र, जिसमें चन्द्रमा उगा है, वर्ण्य वस्तु है। उसी प्रतीति के लिए मदपायिनी का दूसरा चित्र उपस्थित किया गया है, जिसने जी भर मधु पीकर पीने का बर्तन खाली छोड़ दिया है।

"नाक का मोती अधर की कान्ति से।

बीज दाड़िम का समझकर भ्रान्ति से

देखकर सहसा हुआ शुक मौन है

सोचता है, अन्य शुक यह कौन है?"[8]

प्रसंग है उर्मिला–लक्ष्मण के सानुराग वार्तालाप का। लक्ष्मण प्रवेश करते हैं, उधर उर्मिला सहसा चुप हो गये शुक से प्रश्न पूछ रहीं – 'तू मौन क्यों हो गया? इस पर लक्ष्मण का उपर्युक्त प्रत्युत्तर है। उर्मिला ने नाक में मोती पहन रखा है, जो श्वेत होकर भी रागारुण अधरों की कान्ति में भींगकर रक्तवर्ण हो गया है और अनार के दाने जैसा लग रहा है। फिर नासिका भी अपनी सुघरता और नुकीलेपन से शुक–चंचु का भ्रम पैदा कर रही है। चूँकि यहाँ शुक द्वारा एक वस्तु में किसी दूसरी वस्तु का ज्ञान कर लेना चित्रित किया गया है, अतः भ्रान्तिमान अलंकार है।

अरुण संध्या को आगे ठेले, देखने को कुछ नूतन खेल।

सजे विधु की बेंदी से भाल, भामिनी आ पहुँची तत्काल।

यहाँ संध्या के अस्त होते–होते रात्रि के आगमन का वर्णन किया गया है। दो सहेलियों में एक दूसरे द्वारा धकेली जाकर उसके स्थान पर खड़ी होने की प्रतीति होती है। विधु की बिन्दी से सजकर यामिनी के आगमन का 'मानवीकरण' बड़ा ही आकर्षक है।

मैं अपने लिए अधीर नहीं,

स्वार्थी यह लोचन–नीर नहीं।

भाव की तीव्रतर करने के लिए आधुनिक कवि विशेषण को अपनी वास्तविक जगह से हटाकर ऐसी जगह पर नियोजित करता है जहाँ पर वह एक लाक्षणिक अर्थ देने लगता है। लाक्षणिक अर्थ से रचना का अर्थ सौन्दर्य बढ़ जाता है।

श्री रामचन्द्र और सीता जी के साथ लक्ष्मण के वन जाने पर उर्मिला की सखी सुलक्षणा के प्रति यह उक्ति है। लोचन–नीर के स्वार्थी न होने की उक्ति द्वारा उर्मिला अपनी स्वार्थहीनता का परिचय ही यहाँ देती है। स्वार्थहीनता लोचन–नीर की नहीं, उसी की है। इसी को 'विशेषण–विपर्यय' अलंकार कहते है।

साकेत के कतिपय समीक्षकों यथा डा0 नगेन्द्र आदि ने अलंकार विध ाान को भी शैली के रूप विशेष के अन्तर्गत ही परिगणित किया है किन्तु मैं यहाँ उसकी चर्चा स्वतंत्र रूप से करूँगा। अलंकार भाषा के अस्थिर धर्म हैं। उनसे भावाभिव्यक्ति में उत्कर्ष आता है, कथ्य अधिक मनोज्ञ हो उठता है और विषय वस्तु नव्य मालूम होने लगती है। तात्पर्य यह है कि अभिव्यजंना अर्थात् कहने की शैली में बल आ जाता है। इस प्रकार सारी बात विशेष प्रभावक्षम हो जाती है। और पाठक को लक्ष्य तक पहुँचाने में सुकरता मिल जाती है।

साकेत में गुप्त जी ने कवि जीवन का पूर्ण वैभव मिलता है। अतः उसका कलेवर अलंकृत है उसका काव्य श्रीमंडित। उसमें शकुन्तला का वन्य सौन्दर्य नहीं, उर्वशी का नागरिक विलास हैं यहाँ उनकी प्रतिभा ने कविता को नई–नई शृंगार सामग्री से चित्र–विचित्र सजाया है। इसलिए अतिशय भावपूर्ण स्थलों को छोड़कर अन्यत्र वह शायद ही निरवरण मिले।

साकेत की रचना दीर्घकाल मे हुई है अतः इस बीच हिन्दी काव्य में अलंकारों का जितनी विविधता एवं नव–नूतनता के साथ ग्रहण किया गया उन सबका, किसी न किसी अंश में, साकेत पर प्रभाव अवश्य पड़ा है। सर्गों की दृष्टि ने नवम् सर्ग में सर्वाधिक अलंकार प्रयुक्त हुए हैं जिन पर प्रकाश डालते हुए श्री गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश ने लिखा है– गुप्त जी के समस्त ग्रंथों में साकेत अत्यन्त अलंकार युक्त है और साकेत के समस्त सर्गों की अपेक्षाा नवम् सर्ग सबसे अलंकृत

है। इसका क्या अर्थ है? क्या उर्मिला की वेदना का प्रवाह कुंठित हो गया है? क्या वह उन्मुक्त स्रोत की तरह प्रगतिशील नहीं होता? यह सत्य है कि कवि ने उर्मिला को प्रकृत वेदना नहीं प्रदान की। उर्मिला पति वियोग से दुखी है लेकिन लोक–मर्यादा के भावों में जकड़ी रहने के कारण वह अपनी प्राकृतिक व्यथा को प्राकृतिक ढंग से व्यक्त न कर ऐसे ढंग से व्यक्त करना चाहती है जिसमें वह समाज में कुटुम्ब में प्रविष्ट बनी रहे, उसके हृदय के वास्तविक उद्गारों की दिशा को कोई पहचान न सके। उसका विषाद किसलिए है, उसके आँसुओं की नदी किस पहाड़ से निकलकर किस समुद्र की ओर प्रवाहित होती है, इसमें थोड़ी सी दुविधा है, अनिश्चय है........ ....इसी अनिश्चय के कारण उर्मिला का दुःख उस केन्द्र को नहीं प्राप्त कर पाता जिसमें उसको प्रवाह प्रदान करने की शक्ति हो सकती है। केन्द्रिकता के अभाव की पूर्ति करने के लिए ही अलंकारिता का आगमन हुआ है।

श्री त्रिलोचन पाण्डेय ने साकेत मे प्रयुक्त अलंकारों को तीन दृष्टियों से देख है, जिसे हम नीचे साभार उद्धृत कर रहे हैः–

1– जहाँ केवल अलंकार पर ही कवि की दृष्टि रही है, अतः अर्थ क्लिष्ट हो गया है।

2– जहाँ पूरा वर्णन है तो अलंकारपूर्ण, पर स्पष्ट रूप से समझ मं आ जाता है।

3– जहाँ काव्य प्रवाह के बीच–बीच में स्फुट अलंकार आ गए हैं।

इन स्थलों पर शुद्ध अलंकारप्रियता है जिसने अर्थ को ढक दिया है–

गिरि हरि का हरिवेष देख वृष वन मिला
उनके पहले ही वृषारुढ़ का मन खिला
शिला कलश से छोड़ उत्स उद्रेक–सा,

करता है नग–नाग प्रकृति अभिषेक सा।

क्षिप्त सलिल कण किरण योग पाकर सदा,

बहा रहे हैं रुचिर रत्न मणि संपदा।

बन–मुद्रा में चित्रकूट का नग जड़ा,

किसे न होगा यहाँ हर्ष विस्मय बड़ा,

× × ×

"उस रुदन्ती विरहिणी के रुदन रस के लेप से,

और पाकर ताप उसके प्रिय विरह विक्षेप से।

वर्ण–वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के,

क्यों न बनते कवि जनों के ताम्र पत्र सुवर्ण के?"

कुछ स्थलों पर पूर्ण अलंकार होने पर भी अर्थ स्पष्ट रहता है–

'अरुण वह पहने हुए आह्लाद में,

कौन यह बाला खड़ी प्रासाद में?

प्रकट मूर्तिमती उषा ही तो नहीं?

कांति की किरणें उजेला कर रहीं।

यह सजीव सुवर्ण की प्रतिमा नई!

माप विधि के हाथ से ढाली गई!

और इसका हृदय किससे है बना?

वह हृदय ही है कि जिससे है बना।"

उपर्युक्त अवतरण में उत्प्रेक्षा, उपमा, संदेह, अनन्वय आदि अलंकार पहली पंक्ति से अन्तिम पंक्ति तक मिलते जायेगे फिर भी उनका निर्वाह बड़ी कुशलता से हुआ है, न तो प्रवाह मे बाधा है, न अर्थ बोध में।

जहाँ वर्णनों के बीच स्वतः अलंकार आते रहे हैं। पहले दो–तीन अलंकार लक्षण सहित देकर फिर कुछ का विवरण दिया जा रहा है–

'पद्मिनी के पास मत्त मराल से।

हो गए आकर खड़े स्थिर चाल से।

उपमेय हे लक्ष्मण उपमान है मराल, साधारण धर्म है चाल व शुभ्रता, वाचक शब्द है से–उपमा अलंकार हुआ।

'' आँखों में प्रिय मूर्ति थी, भूले थे सब भोग,

हुआ योग से भी अधिक उसका विषम वियोग।''

यहाँ उपमेय, उर्मिला के उत्कर्ष द्वारा उके गुणाधिक्य का वर्णन किया गया है, अतः व्यतिरेक अलंकार हुआ।

'पहले आँखों में थे मानस में कूद मग्न प्रिय अब थे,

छींटे वहीं उड़े थे, बड़े–बड़े अश्रु वे कब थे?

यहाँ उपमेय आँसुओ का निषेध करके उपमान बूँदों का आरोप किया गया है। साथ ही इस आरोप का कारण भी दिया गया है अतः हेत्वारह्नुति अलंकार हुआ।

'उसे बहुत थी विरह के एक दण्ड की चोट,

धन्य सखी देती रही निज यत्नों की ओट।''

यहाँ दण्ड शब्द के दो अर्थ निकलते हैं– साठ पल का समय औ डण्डा। श्लेष अलंकार हुआ।

'किंवा वे खड़ी हो घूम प्रभू के सहारे आह,

तलवे से कंटक निकालते हों ये कराह।''

यहाँ काँटा तो चुभा है सीता को, कराहते है, लक्ष्मण, अतः असंगति

अलंकार हुआ।

इसी प्रकार कुछ और अलंकार देखिए–

1– संदेह–

''क्या यही साकेत है जगदीश?

थी जिसे अलका झुकाती शीश,

सुन नहीं पड़ती कहीं कुछ बात?

सत्य ही क्या अब नहीं है तात,

आज क्या साकेत क सब लोग?

शांत हो बैठे सहज ही श्रांत?

दीखते हैं किन्तु क्यों उद्रभान्त?

2– सहोक्ति–

''याद है वह संवर–रण रंग,

विजय जब मिली वृणों के संग?''

3– उत्प्रेक्षा–

''सीता प्रभु–कर पकड़ चढ़ी निज भव पर,

ज्यों पुरेन पर फुल्ल पद्मिनी तर चली,

चले सहारा दिये हंस सम युग बली?

4–अनुप्रास–

''जनकर जननी ही जान न पाई जिसको।''

× × ×

''अबश अबला तुम? सकल बल वीरता,

विश्व की गम्भीरता ध्रुव धीरता।''

× × ×

"किन्तु मेरी कामना छोटी बड़ी,

है तुम्हारे पाद–पद्मों में पड़ी।"

5– यमक–

'अंगराज पुरांगनाओं के धुले,

रंग देकर नीर में जो हैं घुले!"

6– रूपक–

"तब प्रस्तुत रंगभूमि में, नृप भावाम्बु–तरंग–भूमि में,

निज मानस सद्म हंसिनी, पहुँची वे प्रभु–प्रेम–पद्मिनी,

वरमाल्य–पराग छोडत्रके, उनके ऊपर सैन्य जोड़ के।"

7– विरोधाभास–

"मैं वन जाकर हँसा किन्तु घर आकर आकर रोया,

खोकर रोए सभी भरत मैं पाकर रोया।"

× × ×

'तू कामद होकर आप अकाम।"

× × ×

'बचकर हाय पतंग मरे क्या?

प्रणय छोड़कर प्राण धरे क्या?

8– अन्योक्ति–

"नभ में आप विचरते हैं जो,

हरा धरा को कहते हैं जो।

जल में मोती भरते हैं जो,

अक्षय उनका कोष।''

× × ×

'सखी मै भव कानन में निकली वन के इसकी वह कली,

खिलते खिलते जिससे मिलने उड़ आ पहुँचा हिम हेम अली,

उसका कर आलि लिया उसको तब लौं यह कौन बयार चली,

'पथ देख जियो' कह गूंज यहाँ किस ओर गया वह छोड़ छली।''

इस प्रकार के परम्परागत अलंकारों के कुछ अन्य विशेष उदाहरण और देखिये–

17 सांगोपांग रूपक–

विमाता बन गई आंधी भयावह,

हुआ चंचल न तो भी श्याम घन वह।

पिता को देख तापित भूमि तल सा,

बरसने यों लगा वर वाक्य जल सा,

विमाता आँधी, राम श्याम घन, पिता तप्त भूमि तल, राम के वाक्य जल। इस प्रकार रूपक पूर्ण हो जाता है।

2– विशेषोक्ति–

बैठी हे तू षट–पदी निज सरसिज में लीन।

सप्तपदी देकर यहाँ बैठी मैं गति–हीन।

3–व्यतिरेक–

करके पहाड़ सा पाप मौन रह जाऊँ,

राई भर भी अनुताप न करे पाऊँ।

4–अतिशयोक्ति–

नाव चली या स्वयं पार ही आ गया।

×　　　×　　　×

बढ़ मानो कुछ दूर शून्य पथ भी मुड़ा।

5– विरोधाभास–

चंचल भी किरणों का चरित्र क्या ही पवित्र है भोला,

देकर साख उन्होंने उठा लिया लाल लाल वह गोला।

6–भ्रान्तपह्नुति–

त्रिविध पवन ही था, आ रहा जो उन्हीं सा,

यह घन–रव ही था, छा रहा जो उन्हीं सा।

प्रिय सदृश हँसा जो, नीप ही था, कहाँ वे?

प्रकृति सुकृत फैले, भा रहा जो उन्हीं सा।

7– हेतूत्प्रेक्षा–

सिकुडा सिकुडा दिन था सभीत–सा शीत के कसाले से,

सजनी यह रजनी तो जम बैठी विषम पाले से।

ऐसे ही ग्रन्थ में अनेक उदाहरण भरे पडे है जिन्हे विज्ञजन स्वयं देख सकते हैं अब हम नीचे वे अलंकार दे रहे हे जो पश्चिमी कविता के प्रभावस्वरूप छायावादी परिवेश मे साकेत तक पहुँचे हैं।

17 मानवीकरण–

'मेरे चपल यौवन बाल!

अचल अंचल में पड़ा सो मचलकर मन साल।"

×　　　×　　　×

श्रुति–पुट लेकर पूर्व स्मृतियाँ खड़ी यहाँ पट खोल,

देख आप ही अरुण हुए हैं उनके पाण्डु कपोल।

यहाँ पूर्व–स्मृतियों को नारी रूप में देखा गया है। वे श्रुति पुट लेकर (उत्कर्ण होकर) पट खोले (उत्सुक) खड़ी हुई हैं। उनके पाण्डु (विरह–कृश) कपोल आप ही आप एक साथ अरुण होने लगे हैं। वहाँ पूर्व–स्मृति का कवि के मन पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा है कि उसके सम्मुख साकार बन खड़ी हो गयी है। इसी प्रकार का मानवीकरण का एक और दृश्य देखे–

ये गगन–चुम्बित महा–प्रासाद,

मौन साधे हैं खड़े सविषाद।

शिल्प कौशल के सजीव प्रमाण,

शाप से किसके हुए पाषण।

आ खड़े हैं मेटने को आधि,

आत्मचिंतन–रत अचल स समाधि।

किरण चूड़ गवाक्ष–लोचन मींच,

प्राण से ब्रह्माण्ड में निज खींच।

2– विशेषण–विपर्यय

सहज मातृ गुण गन्ध था कर्णिकार का भाग।

× × ×

शशि खिसक गया, निश्चिंत हँसी हस बाँकी।

× × ×

कैसे हिलती डुलती अभिलाषा है

कली तुझे खिलने की।

जैसे भली मिलती–जुलती मुझे,

उच्चाशा है मिलने की।

3— शब्द ध्वनन—

घनन—घनन बज उठी गरज तत्क्षण रण भेरी।

× × ×

ओ निर्झर झर झर नाद सुना कर झड़ तू,

पथ के रोड़ो से उलझ—सुलझ, बढ़ अड़ तू।

ओ उत्तरीय उड़, मोद—पयोद घुमड़ तू,

हम पर गिरि गदगद भाव, सदैव उमड़ तू।

× × ×

सखि निरख नदी की धारा,

ढलमल ढलमल चंचल अंचल,

झलमल झलमल तारा।

4— विषादपूर्ण पीठिका—

थी सनक्षत्र शशि—निशा ओस टपकाती,

रोती थी नीरव—सभा हृदय थपकाती।

उल्का सी रानी दिशा दीप्त करती थी।

सबमें भय विस्मय और खेद भरती थी।

× × ×

बीता दिन रात हुई ज्यों ज्यों वह रात प्रभात हुई।

फिर सूनी सूनी साँझ हुई मानों सब मेला बाँझ हुई।

नूरजहाँ में भी अलंकारों की छटा बिखरी पड़ी है।

यमक

आज तुझे कहना होगा क्यों निठुराई है ठानी।

आज माननी होगी मेरी मेहर! मानिनी रानी।

उपमा

सोने की घड़ियाँ थी अपनी, चांदी की थी प्यार रात।

मैं जमीन पर पाँव न धरती, छिलते थे मखमल पर पैर।

श्लेष

वह भी पानी में उतरी पर 'वत' तक पहुँच न पाई

'बरबत' की स्वर लहरी सी लहरो को छेड़ उठाई

उपमा

एक बार दर्शन पाने की केवल बाकी है आशा।

वे है दिव्य प्रभाकर मैं हूँ बालू की छोटी कणिका।

अतिश्योक्ति

कन्धा देता, पैदल पदैल, आंसू से पृथ्वी करता तर।

लाहौर नगर में ले जाकर, बनवाई इक समाधि सुन्दर।

अनुप्रास

नव तरल तरंग तड़ित बहती तरनी के परिचित कूल विदा।

प्रतिकूल प्रवाह प्रगति नौका के पूर्व पवन अनुकूल विदा।

अतिशयोक्ति

वह सूखरही बैचारी धन लखती वारि न पाती।

वह आंखों से कर वर्षा धानों को सीचं जिलाती।

(ज) औचित्य

प्रमाणिक हिन्दी शब्द कोश लोकहित भारती, आचार्य रामचन्द्र वर्मा ने औचित्य का अर्थ– उचित या ठीक होने का भाव, उपुक्तता माना है। इसका तात्पर्य हेतु एवं प्रयोजन के लिए किया जा सकता है।

प्रिय प्रवास, साकेत, नूरजहाँ में क्रमशः राधा, उर्मिला और नूरजहाँ के विरह का वर्णन करना ही है।

'प्रिय प्रवास' में राधा का विरह वर्णन–

"सूखा जाता कमलमुख था , होठ नीला हुआ था
दोनों आंखें विपुल जल में डूबती जा रही थी।

मैथिली द्वारा रचित साकेत में उर्मिला का विरण वर्णन जरा देखिए–

"उस रुदन्ती विरहणी के रुदन–रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके प्रिय विरह विक्षेप से,

नूरजहाँ में नूरजहाँ के विरह पर भी द्रष्टिपात करते चले–

"विस्तृति सागर में डूबा रही है, हठ कर आती याद विदा।
यह लहरों सी उठ आती है इंगित से बुला सनाद विदा।

(झ) ध्वनि

जिस कविता में शब्दों के साधारण अर्थ की अपेक्षा उनके निकलने वाले व्यंग्य में अधिक चमत्कार हो, उसे 'ध्वनि काव्य कहते है। जैसे– प्राण

त्यागकर रहे जटायु से राम ने कहा कि–

सीता हरन तात जनि कहेउ पिता सन जाइ।

जो मैं राम तो कुल सहित कहिहि दसानन आइ।

इसमें व्यंग्य यह है कि मैं रावण और उसके समस्त कुल का शीघ्र ही अन्त कर दूँगा अर्थात् उसे अकेले को ही नहीं, उसके कुटुम्ब भर को मारूँगा। इस प्रकार मैं उससे सीता–हरण का बदला लेकर अपने स्वर्गस्थ पिता को दिखा दूँगा कि मैं उनका सपूत हूँ। तभी मेरा नाम (राम) सार्थक होगा। इस ध्वनि के कारण इस उक्ति में राम के शौर्य की पूरी झलक देखने को मिलती है। इससे आनन्द का असाधारण संचार होता है।

साकेत का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

"प्रस्तुत प्राण स्नेही,

चुप थीं अब भी वैदेही।

कहतीं क्या वे प्रिय जाया।

इसी प्रकाश वहीं छाया।

संदर्भ सूची

1. सौन्दर्य बोध एवं ललित कलाएँ डा0 सरोज भर्गव, वृ0 53

2. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, वरहवाँ सर्ग, पृ0 96

3. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 14

4. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, तृतीय सर्ग, पृ0 33, 34

5. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, तीसरा सर्ग, पृ0 22

6. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, प्रथम सर्ग सर्ग, 8

7. नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, दूसरा सर्ग, पृ0 20

8. साकेत, मैथिली शरण गुप्त, प्रथम सर्ग, पृ0 7

सप्तम्

अध्याय

उपसंहार

सप्तम् अध्याय

उपसंहार

सौन्दर्य, बोध का विषय है। इसकी प्रक्रिया चार बिन्दुओ दृश्य, द्रष्टा, उसकी दृष्टि और सौन्दर्य के दर्शन से गुंथी रहती है। यही बिन्दु मिलकर उसे पूर्णता की ओर ले जाते है। भारतीय और पाश्चात्य सौन्दर्य दृष्टि में मूल अन्तर रूप और अरूप को लेकर है। वहाँ रूप ही सब कुछ है हमारे यहाँ रूप से व्यंजित होने वाला अरूप। वहाँ सौन्दर्य सन्तुलन और समानुपात की वस्तु है और हमारे यहाँ आन्तरिक सामंजस्य की।

सौन्दर्य सहृदय सापेक्ष्य अनुभूति है। जिसे भी कलात्मक दृष्टि से देखा जा सके वही सुन्दर है। सौन्दर्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। उसमें ललित, रम्य, प्रिय चमत्कारक और उदात्त सब आ जाते है। सौन्दर्य आनन्द अवश्य देता है लेकिन जो भी आनन्द दे उसे सुन्दर नहीं कहा जा सकता।

सौन्दर्य का प्रधान गुण है उसका सन्तुलन, उसमें व्याप्त एक छन्दोधारा। सौन्दर्य रूपात्मक उपादानों से भिन्न किन्तु उनसे व्यंजित होता है। वस्तु की समग्रता के भावन से जो भावना उठती है उसे व्यक्त करने के लिए हम उस वस्तु को सुन्दर कहने लगते है। डॉ0 हरद्वारीलाल शर्मा ने सौन्दर्य का विवेचन वस्तु के रूप, भोग और अभिव्यक्ति के आधार पर किया है। सौन्दर्य के कुछ गुण रूपाकार से सम्बन्धित होते हैं, कुछ उसमें निहित वस्तु से। डा0 मीरा श्रीवास्तव ने सौन्दर्य के बाह्य और आन्तरिक गुणों पर विस्तार से विचार किया है। बाह्य गुण हैं, ऐक्य, समानुपात,

सन्तुलन, विविधता, औचित्य, संगति, प्रमाणबद्धता, संयम, व्यंजना, स्पष्टता, और आन्तरिक गुण है– सुरुचि उत्पन्न करने की क्षमता, आह्लाद देने का गुण, निःसंगता, विश्वसत्ता की परितृप्ति और आध्यात्मीकरण।

सौन्दर्य में सुन्दर, कुरूप, ललित और उदात्त सब आ जाते है। सौन्दर्य का वर्गीकरण अत्यन्त कठिन है, फिर भी रूप, भाव, विचार और कलात्मक सौन्दर्य के रूप में उसका विभाजन कर लिया जाता है।

सौन्दर्य की सर्जना ही कला है और समस्त कलाओ का उद्देश्य सौन्दर्यानुभूति कराना है। अस्तु, साहित्य भी अपने आप में एक कला है, जिसमें शब्दों द्वारा सौन्दर्यानुभूति होती है। साहित्यकार को सर्वाधिक संवेदनशील प्राणी समझा जाता है जो साधारणजन से ऊपर उठकर संवेदनाओं द्वारा उद्देलित रहता है। दया, ममता, करुणा, प्रेम आदि मंगल विधायक तत्त्वों, नवकुसुमों की मुस्कानों, विहंगो के मधुर कलरव, नदियों की कल–कल प्रातः की अरुणिमा, रात्रि की चांदनी, हरे भरे खेतों के द्वारा वह कला की मौन बेबसी को तोड़ता है। अतः साहित्य सौन्दर्य से प्रेरित होकर सौन्दर्य की ही अभिव्यक्ति है, जो सत्यं, शिवं, सुन्दरं स्वरूप होती है।

सत्यं, शिव, सुन्दर' का महामंत्र साहित्यकार को संस्कृति द्वारा प्राप्त होता है। संस्कृति सभ्यता का सूक्ष्म रूप है और सभ्यता समाज की बाह्य व्यक्तित्व है। सभ्यता के विकास के प्रत्येक चरण में वातावरण भले ही परिवर्तित हुआ हो, परिस्थितियाँ भले ही बदल गई हों परन्तु प्रेम और सौन्दर्य की भावनाएं प्रत्येक युग में मौजूद रहीं है। डा0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल ने कहा है– "संसार के सब देशों और सब कालों में साहित्य का मंथन करके यदि उसमें से कोई शाश्वत् तत्त्व निकाला जाये तो वह तत्व होगा प्रेम और सौन्दर्य की भावनाएं। साहित्य में यह विषय चिरनवीन है। आदिकाल से लेकर आधुनिक कवि तक के काव्य में यह स्थायी तत्त्व

है। काव्य हमें विश्व के सौन्दर्य स्वर्ग का अनुभव करा सकता है क्योंकि वह हमें लोकोत्तर आनन्द देता है। इसी लोकात्तर आनन्द के द्वारा पाठक रसमग्न होकर आनन्दानुभूति करते है। यही आनन्दानुभूति सौन्दर्य कहलाती है।

काव्य विषय में उस नई चेतना के उदय के साथ जिसमें स्थूल और वस्तुपरक के स्थान पर सूक्ष्म और आत्मपरक का महत्त्व बढ़ चला था, अमूर्त्त और सूक्ष्म को अभिव्यक्त करने के लिए काव्य–सामग्री में भी परिवर्तन हुआ। भाषा की अभिव्यंजना–शक्ति में विस्तार हुआ और कुछ सीमा तक अलंकरण–कला में बारीकी और नक्काशी का समावेश होता गया। चमत्मकार की अपेक्षा प्रभाव–व्यजना का महत्व कला में बढ़ चला।

इन कवियों ने परम्परागत अभिव्यंजना के साथ, भाव को उसकी समग्रता में प्रेषित करने के लिए नवीन प्रयोग किये, और काव्य–सामग्री के चयन में इस प्रयत्न का परिणाम शुभ हुआ। अमूर्त के स्वतंत्र वर्णन और उपमान रूप में प्रयोग तो स्थान स्थान पर इस काव्यों में मिलेगे–

पगडंडी थी गई मार्ग से ठीक यों
शास्त्र छोड़ बन जाय लोक की लीक ज्यों।

तथा

वीणांगुलि–सम सती उतरती सी चढ़ धाई,
तालपूर्ति–सी संग सखी भी खिंचती आई।

पहले उदाहरण में कवि ने नित्य व्यवहार–ज्ञान से उपमान का चयन किया है और दूसरे में संगीत के उपकरणों का अप्रस्तुत रूप में प्रयोग।

मानव के रूप वर्णन के लिए प्राकृतिक उपकरणों का प्रयोग अप्रस्तुत

के रूप में सामान्यतः प्रचलित रहा है।

नाथ सभी कुछ त्याग जानकर झूठ ही,

खड़े तपस्वी—तुल्य कहीं ये ठूंठ ही। .

गुप्त जी का अन्त्यानुप्रास मोह सर्व प्रसिद्ध है किन्तु जहाँ यह मोह दुराग्रह बन गया है वहाँ खटकता है—

अब आगंन भांय भाँय है,

करता मारुत साँय साँय है।

ऐसे प्रयोग केवल कला की दृष्टि से ही आपत्तिजनक नहीं, इनसे भाव के सौकुमार्य को आघात पहुँचा है। कहीं—कहीं विरह व्यंजना भी शारीरिक व्यापारों व स्थूल आंगिक चेष्टाओं के वर्णन द्वारा की गई है। प्रायः कला मे सीधी सादी स्वच्छता और प्रसादमयता प्राप्य है। तीसरे, चौथे, और छठे सर्ग में अनेक स्थलों पर निर्जीव, भरती के से वर्णन मिलत है।

'साकेत' के प्रथम सर्ग में जहाँ कवि ने अनेक रम्य और कोमल चित्र अंकित किए है, वहाँ अन्तिम सर्ग में अत्यन्त समर्थ और सक्षम शैली व अनुकूल शब्दावली में गुंफित ओजमय विराट चित्रों का विस्तार हुआ है। उनकी शैली में विलक्षण सामर्थ्य और अद्भुत माधुर्य है। कवि घटनाओं और वातावरण के विस्तृत चित्र ही अंकित नहीं करता, बल्कि मानव मुद्राओं के अपेक्षाकृत सीमित चित्र, और भाव एवं मनोदशा के सूक्ष्म चित्र भी अनेक स्थलों पर अंकित है।

आरम्भिक अंशों में विशेष लालित्य और रमणीयता है। नाटकीयता का प्रयोग कवि न संवादो में ही नहीं किया है। स्वागत का प्रयोग भी 'गुप्त' ने किया है। जहाँ वे एकांकी पात्र का परिचय कराते है, वहाँ भी उनकी शैली में यह गुण

बरबस चला आता है। पात्र परिचय की उनकी यह प्रिय पद्धति है–

अरुण पट पहने हुए आह्लाद में,

कौन यह बाला खड़ी प्रासाद में?

प्रश्न के उत्तर में किया गया रूप वर्णन, प्रसंग में अनायास मनोहारी नाटकीयता ला देता है। 'साकेत' की समस्त कथा संवादों और दृश्यों के द्वारा ही आगे बढ़ती है। इन संवादों की यथावसर उद्दीप्ति, सजीवता और रसमयता ही इनका प्राण है। कथा के ऐसे स्थलों पर जहाँ वे गम्भीर परिस्थिति या भाव–संकुल प्रसंगों का वर्णन करते है, वहाँ विस्तार न करके वे प्रायः वाक्–संयम या मौन से काम लेते है। ऐसे प्रसंगो से कथा में वैचित्य आ गया है। पात्रों की आत्माभिव्यक्ति के लिए गुप्तजी ने प्रगीत शैली का प्रयोग किया है। उर्मिला की विरह–व्यंजना में गीति शैली से अधिक मार्मिकता और स्वाभाविकता उत्पन्न हुई है। सम्पूर्ण काव्य में अतिशय सांकेतिकता या व्यंजना की प्रधानता कहीं नहीं मिलेगी। उसमें एक विशेष प्रकार की प्रसादमयता है। जिसका अपना आकर्षण है।

'प्रिय प्रवास' की चरम घटना जैसा नाम से स्पष्ट है ब्रजवासियों के प्रिय कृष्ण के मथुरा गमन का प्रसंग है। परन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थ के अवलोकन के उपरान्त प्रतीत होता है कि ब्रजवासियों का विरण वर्णन इस घटना की अपेक्षा अधिक प्रधान हो गया है। कृष्ण के मथुरा गमन की घटना काव्य के अर्द्धांश से बहुत पूर्व–पांचवे सर्ग के अन्त में ही सम्पन हो जाती है, और उसके वाद बारह सर्गों और लगभग दो सौ से अधिक पृष्ठों में ब्रजवासियों की विरहगाथा व्याप्त है। इस विरह का भोक्ता भी कोई पात्र विशेष नहीं। निकट सम्बन्धी, सखा–वृन्द, प्रेयसी राधिका, और इन चेतना प्राणियों के साथ जड़ प्रकृति, सभी इस दुख के सहभोक्ता है। कहा नहीं जा सकता कि कवि किसको सर्वाधिक महत्व प्रदान करना चाहता है। क्रमपूर्वक यशोदा, नंद,

गोप–वृंद, गोपियां सभी एक के बाद एक आकर विरह दुख की अभिव्यक्ति करते है–कौन इस दुखद अनुभूति से सर्वाधिक पीड़ित है, यह निर्णय करना कठिन है। इसी भावाभिव्यक्ति के मध्य पूर्व स्मृति के रूप में कृष्ण के जीवन की घटनाएं अन्य पात्रों द्वारा वर्णित है। इन घटनाओं द्वारा कथानक प्रवाह में जिस गत्यात्मकता और सक्रियता की सृष्टि संभव थी अप्रत्यक्ष वर्णन के कारण वह भी नष्ट हो गई है। यदि इन घटनाओं की प्रत्यक्ष प्रस्तुति की जाती, और कृष्ण इनके अभिकर्ता होते, तो प्रबंध निर्वाह में अधिक वेग और सजीवता आ जाती। घटना–चक्र की निष्क्रियता के कारण चरम घटना का निर्णय करना भी दुष्कर हो गया है। महाकाव्य की प्रमुख विशेषता–प्रबंध तत्व के समुचित निर्वाह का 'प्रिय प्रवास' में एकांत अभाव है, तो अनुचित न होगा। कथानक में नाटकीय गुण, घटनाओं की तर्क–सम्मत संबंध योजना, दूसरे शब्दों में सुगठित वस्तु–विन्यास और प्रबंध निर्वाह इस ग्रंथ में नहीं मिलता इसका प्रधान कारण है घटनाओं में महाकाव्योचित सघना का अभाव।

महाकाव्य के लिए अभिव्यंजना में जो गरिमा, महाप्राणता, भव्यता, अलंकरण, उदात्तता और प्रवाह आदि गुण अपेक्षित है, वे इन ग्रंथों में प्राप्त मात्रा है।' प्रिय प्रवास से एक उदाहरण देना समीचीन होगा–

समाप्त ज्योंही इस यूथ ने किया,
अतीव प्यारे अपने प्रसंग को
लगा सुनाने उस काल ही उन्हें,
स्वकीय बातें फिर अन्य गोप यों।

नूरजहाँ में सर्ग के मध्य में भी जहाँ–जहाँ कवि ने स्वच्छापूर्वक छन्द परिवर्तन किया है। 'नूरजहाँ' में छन्द अनेक परन्तु एक दो प्रसंगो के अतिरिक्त सभी

28 मात्रा के अधिक बड़े छन्द है। इनमें सार, ताटक, वीर आदि पूर्वप्रचलित छन्दों, और मणिबंधक, मत्तसैवया तथा मानवीय आदि नवीन छन्दों का प्रयोग हुआ है। जिन छन्दों के लिए हमने नवीन विशेषण का प्रयोग किया है, उनमें नवीनता इतनी ही है कि मात्राएं दंडक वृत्तों के समान होने पर भी उनकी गति और लय आदि का नियमन भिन्न पद्धति पर हुआ है। एक चरण में यति के बहुधा प्रयोग से प्रवाह–अवरोध उत्पन्न करने के स्थान पर पादाकुलक या मानव जैसे किसी छोटे छन्द की एक चरण में दो आवृत्तियां की गई है। अर्थात् इन छन्दों के एक चरण की दो बाद आव्त्ति से नवीन छंदों के एक चरण का निर्माण होता है।

द्विवेदी युगीन काव्य की इंगित कृतियों में एक ही समानता है। वह यह की यह कृतियां नायिका प्रधान प्रबन्ध काव्य है।

परिशिष्ट

उपजीव्य ग्रन्थ

उपस्कारक ग्रन्थ

शोध प्रबन्ध

लघु शोध प्रबन्ध

पत्र–पत्रिकाएँ

परिशिष्ट

उपजीव्य ग्रन्थ

१— **प्रिय प्रवास**, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

२— **साकेत,** मैथिलीशरण गुप्त

३— **नूरजहाँ,** गुरुभक्त सिंह 'भक्त'

उपस्कारक ग्रन्थ

अथातो सौन्दर्य—जिज्ञासा, रमेश कुन्तल मेघ, मैकमिलन, दिल्ली, १९७७

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'ग्रन्थ माला संख्या १०, डा० कन्हैया सिंह

अशोक के फूल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७६

आज का भारतीय साहित्य, साहित्य अकादमी नई दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली १९९०

आदिकालीन हिन्दी साहित्य, डॉ० शम्भूनाथ पाण्डेय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९७०

आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९५८

आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, डॉ० नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० बच्चन सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,

आधुनिक काव्य में सौन्दर्य के विविध आयाम, डॉ० छोटेलाल दीक्षित

आधुनिक हिन्दी काव्य, डॉ० भागीरथ मिश्र एवं डॉ० बलभद्र तिवारी

आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में प्रेम की परिकल्पना, डॉ० विजय मोहन सिंह

आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, डॉ० नामवर सिंह, लोकभारती, इलाहाबाद

आंसू, जयशंकर प्रसाद

आस्था और सौन्दर्य, डॉ० रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९७३

औचित्य विमर्श, डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, संवत् २०२१

कामायनी, जयशंकर प्रसाद

कामायनी का काव्यशास्त्रीय विश्लेषण, डॉ० स्नेहलता गुप्त, विद्या प्रकाशन, कानपुर, १९८८

कामायनी सौन्दर्य, डॉ० फतेह सिंह, भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद

काव्यशास्त्र, डॉ० भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९९९

चिन्तामणि भाग – १, रामचन्द्र शुक्ल, सरस्वती मंदिर, वाराणसी

चिन्तामणि भाग – २, रामचन्द्र शुक्ल, सरस्वती मंदिर, वाराणसी

छायावाद, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २००६

छायावाद का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन, डॉ० कुमार विमल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७८

छायावादी काव्य में सौन्दर्यचेतना, डॉ० कृष्णमुरारी मिश्र, प्रगति प्रकाशन, आगरा, १९७९

जयशंकर प्रसाद: वस्तु और कला, रामेश्वरलाल खण्डेलवाल

दृष्टि और दिशा: साहित्य निबन्ध, डॉ० चन्द्रभान रावत

दीपशिखा, महादेवी वर्मा

नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, गजानन माधव मुक्तिबोध, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९२

पल्लव, सुमित्रानन्दन पंत

प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन, डॉ० वीणा माथुर, बाफना प्रकाशन, जयपुर, १९७१

भारतीय काव्यशास्त्र, डॉ० रामानन्द शर्मा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९८३

भारतीय काव्यशास्त्र, डॉ० सत्यदेव चौधरी, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली

भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा, डॉ० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९५३

भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, डॉ० नगेन्द्र, ओरियण्टल बुक डिपो, दिल्ली, १९५५

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका, फतेह सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९७१

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका, नगेन्द्र, नेशनल पब्लिकेशन, नई दिल्ली

महादेवी की कविता में सौन्दर्य भावना, डॉ० सी० तुलसम्मा, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, १९८४

रामचरित मानस और साकेत, परमलाल गुप्त

वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों में सौन्दर्य चित्रण, डॉ० कुमारेन्द्र सिंह सेंगर, निशा प्रकाशन उरई (जालौन), २००५

विचार और वितर्क, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन, इलाहाबाद, १९६१

विद्यापति सूर बिहारी का काव्य सौन्दर्य, शरद कणबरकर, चिन्तन प्रकाशन कानपुर १९८९

सत्यं शिवं सुन्दरम्, शिवबालक राम

साकेत एक अध्ययन, डा० नगेन्द्र

साकेत विचार और विश्लेषण, वचनदेव कुमार

साहित्य और सौन्दर्य बोध, डॉ० रामशंकर द्विवेदी भावना प्रकाशन, दिल्ली, १९९०

साक्षी है सौन्दर्य प्राश्निक, रमेश कुन्तल मेघ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९८०

साहित्यिक निबन्ध, लक्ष्मीनारायण चातक, डॉ० राजकुमार पाण्डेय

सुमित्रानन्दन पन्त की सौन्दर्य चेतना का विकास, डॉ० राजकुमारी सैनी

सौन्दर्य शास्त्र, हरद्वारी लाल शर्मा, मधु प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७९

सौन्दर्य शास्त्र : स्वरूप एवं समस्याएँ, डॉ० लक्ष्मणप्रसाद शर्मा

सौन्दर्यशास्त्र के तत्त्व, डॉ० कुमार विमल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९८

सौन्दर्य तत्त्व निरूपण, एस.टी. नरसिंहाचारी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १९७७

सौन्दर्य का तात्पर्य, रामकीर्ति शुक्ल, उ० प्र० हिन्दी ग्रन्थ समिति, लखनऊ, १९७७

सौन्दर्य का तात्पर्य, प्रभाकर श्रोत्रिय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९८

सौन्दर्य बोध एवं ललित कलाएँ, डॉ० सरोज भार्गव, कला प्रकाशन, वाराणसी, १९९९

सौन्दर्य मीमांसा, रामकेवल सिंह, किताब महल, इलाहाबाद

हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग–१, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग–२, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काशीनागरी प्रचारिणी सभा, संवत्२००३

हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० नगेन्द्र, मयूर पेपर बैक्स, नई दिल्ली, १९९६

हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

हिन्दी साहित्य का आदिकाल, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, १९६१

हिन्दी साहित्य का आदिकाल, डॉ० हरिश्चन्द्र वर्मा, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, १९७०

हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, १९७१

हिन्दी का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ० वासुदेव सिंह, संजय बुक सेण्टर, २०००

हिन्दी में आधुनिकतावाद, दुर्गा प्रसाद गुप्ता, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, १९९८

हिन्दी का गद्य साहित्य, डॉ० रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९९२

हिन्दी साहित्य का इतिहास, युग और प्रवृत्तियाँ, शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली १९९१

(ग) शोध प्रबन्ध

कालिदास और प्रसाद के काव्य में सौन्दर्य भावना, अपर्णा रानी, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर, १९८२

देव के सौन्दर्य बोध का अनुशीलन, अंजू शर्मा, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर, १९९०

देवकाव्य में सौन्दर्य बोध, किरण अवस्थी, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर,

डॉ० वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों में अभिव्यक्त सौन्दर्य का अनुशीलन, कुमारेन्द्र सिंह सेंगर, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, २००२

वासवदत्ता में प्रेम और सौन्दर्य, सविता गहोई, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर, १९९३

हिन्दी के महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में अभिव्यक्त प्रेम सौन्दर्य और जीवनदृष्टि, कु० किरन सिंह, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर, १९८७

(घ) लघु शोध प्रबन्ध

कामायनी का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन, कु० अपर्णा खरे, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, १९९८

धर्मवीर भारती के उपन्यास 'गुनाहों का देवता' में जीवन मूल्य, कुमारेन्द्र सिंह सेंगर, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, १९९८

प्रसाद एवं अंचल के काव्य सौन्दर्य का तुलनात्मक अध्ययन, श्रीमती नूतन द्विवेदी, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, १९९५

प्रसाद की सौन्दर्य योजना, रीनू कोहली, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर,२०००

महादेवी वर्मा के काव्य में सौन्दर्य तत्त्व, मंगला शुक्ला, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर, २०००

(च) पत्र-पत्रिकाएँ

आजकल, नई दिल्ली

आलोचना, नई दिल्ली

उत्तर प्रदेश, लखनऊ

कथाक्रम, लखनऊ

समर लोक, भोपाल

साहित्य—अमृत, नई दिल्ली

हिन्दी अनुशीलन, इलाहाबाद